मार्च – अप्रैल, 2016 वर्ष–2, अंक–4

मूल्य – 30 रुपये

ISSN 2454-6879

देस हरियाणा

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच



इस अंक में विशेष

स्त्री-विमर्श • शहीद भगतसिंह • डॉ. भीमराव आंबेडकर

ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

मार्च-अप्रैल 2016 वर्ष 2 अंक 4

सम्पादक : सुभाष चंद्र

सम्पादन सहयोग : जयपाल, कृष्ण कुमार अमन वशिष्ठ, निर्मल

सलाहकार : प्रो. टी. आर. कुंडू, अजेय कुमार, परमानंद शास्त्री

व्यवस्था : इकबाल, सुनील, विपुला

पता : देस हरियाणा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

Email : haryanades@gmail.com desharyana@gmail.com

ISSN NO 2454 - 6879

चंदे की दरें :

व्यक्तिगत	एक वर्ष 175 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था	एक वर्ष 400 रुपए तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन	पांच हजार रुपए
संरक्षक	दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए
बैंक खाता : देस हरियाणा,
इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780
IFS Code: ALLA0211940

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा। सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। प्रकाशक, मुद्रक और सुभाष चंद्र की ओर से 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, हरियाणा से प्रकाशित

इस अंक में

सम्पादकीय के बहाने

इस जख्म को भरना ही होगा

पिछले सालों में टेलीविजन पर मिश्र, सीरिया में हथियार लेकर हुड़दंग करती भीड़ की खौफनाक तस्वीरें देखते थे, यदि वैसी ही तस्वीरें हरियाणा के अपने समाज में दिखने लगें तो विवेकवान व संवेदनशील लोगों का अंदर तक हिलना अस्वाभाविक नहीं होगा। इन दृश्यों को देखकर किसी को सन 1947 के समय की धाड़ की लूटपाट याद आई तो कोई 1984 में दिल्ली की रोंगटे खड़े कर देने वाली घटना याद करने लगा।

हिंसा की इन घटनाओं पर तरह-तरह के स्वर सुनाई दिए, किसी की जुबान ने साथ न दिया तो उत्तर आंखों की नमी ने दिया। कोई लाचार व असहाय महसूस कर रहा है। कोई घटना की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए खेती के संकट की ओर ध्यान खींच रहा है। कोई शासन-प्रशासन की सुस्ती व एक राजनीतिक साजिश भी देखता है। मीडिया पर नेताओं व अधिकारियों की ओर से हिंसा न करने की अपील जारी होती रही, परन्तु इतनी अपीलों के बावजूद हिंसा का ताडंव जारी रहा। मानो समाज के विवेक को काठ मार गया।

कैसा लगेगा जब आप छतों पर चढ़कर अपने शहर और अपने लोगों की बरबादी देखने पर विवश हों। आप सिर्फ अंदाजा लगा रहे हों कि ये धुआं कहां से उठ रहा है किस मोहल्ले-बाजार के किस हिस्से को स्वाहा किया गया है। नबर वन हरियाणा की जो तस्वीर गढ़ी गई थी, वो कहीं नजर नहीं आई। दिखाई दी तो केवल बर्बरता। लाठी-डंडे, कुल्हाड़े-पिस्तौल लेकर मोटरसाइकिलों, लक्जरी-गाड़ियों तथा ट्रालियों में भरी उन्मादी भीड़ शहरों में बहती रही। बाजारों-दुकानों को लूटा। एक लंपट नौजवान खुश है कि उसके हाथ एप्पल का मोबाइल लगा, तो दूसरा मायूस कि उसे सिर्फ दो देसी किस्म के मोबाइल ही मिल पाए। लूट के ब्रांडेड जूते डालकर युवा जब सड़क पर निकलेगा तो उसको अपनी हिम्मत व विजय की कितनी गर्माहट रहेगी कि ये वस्तु वह लूटकर लाया था। लूट की चमकती कमीज में वह कितना आधुनिक दिखाई देगा और उसका सीना कितने इंच का हो जाएगा। कितने मां-बाप अपने 'बहके हुए बच्चों' की लानत-मलामत करेंगे, लूट के इस सामान को वापस करेंगे, घर से बाहर फेंकेंगें, थाने में जमा करवायेंगे या फिर उनके इस कार्य पर गर्व करेंगें। इससे पता चलेगा कि हम कैसी पीढ़ी बनाना चाहते हैं। कैसे संस्कार दे रहे हैं। कैसी चेतना पैदा कर रहे हैं। इस लूट को एक सामाजिक बीमारी के तौर पर गंभीरता से लिया जाएगा या फिर इसे अनदेखा कर दिया जाएगा। 'करके खाणा और ले के देणा' व 'देसां म्हं देस हरियाणा, जित दूध दही का खाणा हरियाणवी माणस की पहचान रही है। क्या असामाजिक तत्व हरियाणा की नई पहचान गढ़ेंगे 'देसां म्हं देस हरियाणा, जित लूट-खसूट के गिरकाणा'।

इतने बड़े स्तर पर हिंसा यूं ही आकस्मिक घटित नहीं होती, उसकी पृष्ठभूमि तो जरूर ही होती है। कोई यूं ही किसी को मारने नहीं लगता, एक माहौल में ही व्यक्ति ऐसा अमानवीय व्यवहार कर पाता है। यदि हर नागरिक अधिकारों के दमन, अन्याय व नाजायज बात को परंपरा, धर्म, संस्कृति की रक्षा तथा जाति-समुदाय की इज्जत के नाम पर उचित ठहराया जाने लगे तो एक दिन आपराधिक कुकृत्यों को भी गौरवान्वित

किया जाने लगता है। ऐसे माहौल में समाज की बागडोर समाज के समझदार व विवेकवान लोगों के हाथ से निकल कर असामाजिक तत्वों के हाथ में चली जाती है। गुंडा तत्व ही नायक नजर आने लगता है और कृषि-संस्कृति की कर्मठता, खुद्दारी, पारदर्शिता, ईमानदारी, परस्पर-निर्भरता आदि मूल्य धरे-के-धरे रह जाते हैं और घृणा व हिंसा का ताडंव होने लगता है। आमतौर पर हंसी-ठट्ठों में मस्त व खिलखिलाते चेहरों पर घृणा की परत जम जाती है और कर्मठ हाथ व मानवीय दिल क्रूर पंजों में तब्दील हो जाता है। समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के पंडितों को अपने शोध को दुरुस्त करना होगा। कि भीड़ का दिमाग, चेहरा, व अपने पराए की पहचान नहीं होती, लेकिन लगता है अब भीड़ काफी सयानी हो गई है।

निजीकरण व उदारीकरण की नीतियों ने खेती को इस तरह तबाह किया है कि यह घाटे का धंधा बन गया है। निजी क्षेत्र में कामगार के शोषण व काम की असुरक्षा के चलते सरकारी नौकरी को रोजगार की सबसे आरामदायक व सुरक्षित जगह माना जा रहा है। निजीकरण-उदारीकरण के दौरान निजी-प्रतिष्ठान केवल शोषण के अड्डे ही नहीं बने, बल्कि इन नीतियों के कारण सरकारी क्षेत्र में रोजगार भी सिकुड़ता गया है। ज्यों-ज्यों सरकारी नौकरियां घट रही हैं त्यों-त्यों सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए उग्र संघर्ष बढ़ रहे हैं। समाज के कृषक समुदायों के नौकरियों में आरक्षण के आंदोलन को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। विडम्बना यही है कि सरकारी नौकरियों को बढ़ाने के लिए कोई संघर्ष नहीं किए गए। इतनी शक्ति यदि सरकारी नौकरियां बढ़ाने में लगती तो समाज के सभी वर्गों के हित में होता।

रोजगार की दृष्टि से असुरक्षित पीढ़ी को बार-बार छला जा रहा है। सपने दिखाए जा रहे हैं कि यदि येन केन प्रकारेण आरक्षण हासिल हो गया तो सब समस्याएं दूर हो जाएंगी। नौजवान को जैसी दिशा दिखाई जा रही है वो वैसा ही कर रहा है। व्यवस्था के शिकार ये लोग व्यवस्था को न बदलकर आपस में लड़ रहे हैं और व्यवस्था इनका मुंह चिड़ा रही है।

हिंसा ने समाज में जो बीज बोए हैं उनसे नफरत की जो फसल तैयार होगी उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। जिन लोगों के पूरे जीवन की मेहनत की कमाई राख में तब्दील हो गई उनके दिमाग से इसे मिटाया जा सकना बहुत मुश्किल तो है, हो सकता है कि उनको शांति व भाईचारा कायम करने की अपील खोखली नजर आए। लेकिन यह भी सत्य है कि सामाजिक सद्भाव के बिना कोई समाज तरक्की भी नहीं कर सकता।

हिंसा से सामाजिक भाईचारे पर हुए मानसिक आघात को दुरुस्त करने का काम संवेदनशील लोगों का है वे उदासीनता की टोपी ओढ़कर मूकदर्शक बनकर नहीं रह सकते। हरियाणा के साहित्यकारों, संस्कृतिकर्मियों, कलाकारों, विवेकशील बुद्धिजीवियों को अपना दायित्व निभाना ही होगा। भावी पीढ़ी पूछेगी कि जब हरियाणा का भाईचारा नफरत की आग में जल रहा था तो कलाकार-साहित्यकार क्या कर रहे थे। जलते रोम में जिस तरह नीरो को याद किया जाता है निश्चित तौर पर हरियाणा के संवेदनशील लोग स्वयं को इस रूप में याद करने नहीं देंगे। वे हरियाणा की भाईचारे की परंपराओं को पुख्ता करने के लिए तथा लोगों के दिलों से विद्वेष की भावना मिटाने के लिए साहित्य व कला का निर्माण करेंगे। सभी लोगों को इस काम में जुटना होगा, तभी नफरत के पहाड़ को ढहाया जा सकता है।

भारतीय सामाजिक जीवन में मार्च-अप्रैल के महीनों का विशेष महत्व है, विद्यार्थियों के लिए, किसानों के लिए, व्यापारियों के लिए। इन महीनों में समाज में भी सरगर्मी रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस, शहीदी दिवस मार्च में आते हैं तो आंबेडकर व जोतिबा फुले के जन्मदिन अप्रैल के महीने में आते हैं। ये अवसर चिन्तनशील-बौद्धिक समाज व परिवर्तनकामी शक्तियों को अपने समाज की दिशा, अपने काम व उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हैं। लैंगिक और जातिय उच्च-नीच अनुक्रम भारतीय समाज की संरचना की प्रमुख प्रवृति रही है। भारतीय समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों में इस मुद्दे पर तीखा टकराव रहा है। यद्यपि सामाजिक परिस्थिति के अनुसार इसकी धार बदलती रही है। कभी यह सांस्कृतिक स्तर पर मुख्यत: रहा है तो कभी राजनीतिक सवाल बनकर उभरा है। भारतीय समाज में बदलाव का अर्थ ही है लैंगिक व जातिगत ऊंच-नीच व भेदभाव की संरचनाओं की जगह बराबरी के मूल्यों को स्थापित करना।

समतामूलक समाज की स्थापना के संघर्ष की परंपरा में जोतिबा फुले, डा. आंबेडकर, शहीद भगतसिंह तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए संघर्षों की परंपरा व मूल्यों को आत्मसात करना आवश्यक है।

हरियाणा के संदर्भ में आधी आबादी की स्थिति को लेकर विभिन्न सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों तथा बुद्धिजीवियों ने चिंताएं प्रकट की हैं। सरकारों द्वारा इसके सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम भी आंरभ किए गए हैं। लेकिन यह भी सही है कि इन प्रयासों में बात सिर्फ कन्या भ्रूण-हत्या व लिंगानुपात के असंतुलन तक सिमटकर रह जाती है और इस समस्या की जननी पितृसत्ता की विचारधारा पर कुठाराघात नहीं होता।

यद्यपि कन्या-भ्रूण हत्या और लिंगानुपात के असंतुलन से कई सामाजिक समस्याएं जन्म लेती हैं, लेकिन ये स्वयं पितृसत्ता के परिणाम हैं। समाज में पुरुष-प्रधानता की ऊंच-नीच अनुक्रम को वैधता देने वाले रिवाजों, प्रथाओं, विचारों की जगह स्त्री-पुरुष बराबरी को अधिमान देने वाले रिवाजों, प्रथाओं व विचारों को बढ़ाना होगा या निर्माण करना होगा। विभेदकारी व असमान संरचनाओं के लाभार्थी आसानी से इनका परित्याग नहीं करते, इसलिए सामाजिक बदलाव की प्रक्रियाएं बहुत ही धीमी, पीड़ादायक और संघर्षपूर्ण होती हैं। परिवारों के लोकतांत्रिकरण व लोकतांत्रिक सामाजीकरण से ही आधी आबादी की क्षमताओं-संभावनाओं को फलने-फूलने का अवसर मिल सकता है। यहां महिलाओं के संघर्षों व योगदान को रेखांकित करते लेख दे रहे हैं।

हरियाणा के समाज में शहीद भगतसिंह के व्यक्तित्व का विशेष स्थान है इस बात का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यहां के लोकधारा में भगतसिंह पर ढेरों रागनियां उनके अलग-अलग पक्षों पर रची गई हैं। भगतसिंह के शहीदी दिवस व जन्म दिवस पर उनकी स्मृति को जिन्दा रखने के लिए गांव-कस्बों तक में तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित होते हैं। इन कार्यक्रमों के रूपों में विविधता है। भंडारों, सांस्कृतिक संध्याओं से लेकर गहन मंथन तक के कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। हरियाणवी समाज में शहीद भगतसिंह के प्रति आदरभाव की व्यापकता व गहराई का अनुमान आटो रिक्शा से लेकर नौजवानों की टी-शर्ट पर छपे भगतसिंह के चित्रों से सहज ही लगाया जा सकता है। लेकिन यह भी सही है कि अपने इस नायक के विचारों से अपरिचय की सी स्थिति है। शहीद भगतसिंह का जीवन और विचार व्यक्ति में जीवन के प्रति भरोसा, मानवीय गरिमा व साहस के साथ आलोचनात्मक विवेक पैदा करते हैं। इसलिए उनके विचारों के लिए उनके लेखों व पत्रों को यहां दे रहे हैं।

डा. आंबेडकर आधुनिक भारत के ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे व्यक्ति के रूप में डविश्वस्तर पर ख्याति अर्जित की। वे पूरे जीवन भारतीय समाज से अस्पृश्यता और भेदभाव की संरचनाओं को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना का संघर्ष करते रहे। बौद्धिक-विमर्श में डा. आंबेडकर के बहुआयामी व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं की ही चर्चा होती है। आंबेडकर पर चर्चा की विडम्बना ये है कि यह विमर्श तुरन्त ही आरक्षण की पालेबंदी में तब्दील हो जाता है। अकादमिक दायरों में और लोकप्रिय विमर्शों में उनको दलितों का मसीहा, संविधान-निर्माता, बौद्ध धर्मी और दलित-सत्ता की स्थापना के पक्षधर, हिन्दू धर्म के उद्धारक के तौर पर ही देखा जाता है। डा. आम्बेडकर के समतामूलक क्रांतिकारी दर्शन को समग्रता में समझने की बजाए उनके एकांगी पक्षों पर ही अधिकांश चर्चा होती है। उत्पीड़ित वर्गों में सामाजिक न्याय व बराबरी की बढ़ती चाह व संघर्षों के कारण डा. आम्बेडकर का जीवन व विचार उत्तरोत्तर प्रासंगिक होता जा रहा है। बदलते परिप्रेक्ष्य व नए संदर्भों में उनके जीवन व विचारों से प्रेरणा लेते हुए उनकी लगातार नई नई व्याख्याओं की आवश्यकता है।

हरियाणा प्रांत में पिछले कुछ वर्षों में उत्पीड़न के जघन्य कांड हो चुके हैं, ऐसी घटनाओं की पुनर्आवृति न हो इसके लिए समाज में मौजूद भेदभाव व शोषण प्रणालियों को समझने व समाप्त करने में उनका दर्शन मदद करता है। डा. आंबेडकर पर लेखों के साथ विभिन्न अवसर पर दिए उनके वक्तव्यों और लेखों से प्रेरणादायी विचारों को दे रहे हैं, हमारा मानना है कि ये निश्चित तौर पर पाठकों के विवेक बोध को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण होंगे। पितृसत्ता तथा वर्ण-व्यवस्था की गैर-बराबरी प्रणालियों के स्थान पर लैंगिक व सामाजिक समानता के मूल्यों को स्थापित करती कहानी, रागनियों, कविताओं को दिया गया है।

सामाजिक न्याय, लैंगिक संवेदनशीलता व बराबरी के मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा है सामाजिक भाईचारे को स्थापित करना। उम्मीद है कि समाज के सभी वर्ग अपनी संकीर्णताओं को त्यागकर भाईचारा स्थापित करने के काम में जुटेंगे।

-डा. सुभाष चंद्र

■

आठ मार्च की कहानी

आशु वर्मा

आज की पीढ़ी जो टी.वी. विज्ञापनों को देखते हुए बड़ी हुई है उसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 'मदर्स डे' या 'वेलेन्टाईन डे' से अलग कुछ नहीं है। उनसे पूछो तो जवाब मिलेगा लेडिज का दिन है..। ब्यूटी पार्लर से लेकर शॉपिंग मॉल तक महिलाओं के लिए इस दिन विशेष छूट रहती है। कहीं ब्यूटी प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं तो कहीं 'लैक्मे गिफ्ट' हैम्पर से बाजार भर जाते हैं। सरकार के नारी सशक्तिकरण कार्यक्रमों के पोस्टर से शहर चमकने लगते हैं। कुल मिलाकर महिला दिवस के महत्त्व को इतना छोटा कर दिया गया है कि लोग महिला मजदूरों के लम्बे जुझारु संघर्ष को भूल जाते हैं जिसने औरतों को तमाम अधिकार दिए हैं और बराबरी के लिए लड़ना सिखाया है।

आज महिलाओं को समान काम के लिए समान वेतन, वोट का अधिकार, चुनाव में खड़ा होने का अधिकार, काम की बेहतर स्थितियां, आपातकालीन अवकाश, सम्पति में हिस्सा जैसे मूलभूत अधिकार मिले हैं तो इसलिए क्योंकि अतीत में महिलाओं ने, विशेषकर मजदूर महिलाओं ने इन अधिकारों के लिए संघर्ष किया है और खून बहाया है। उनके संघर्ष की याद में ही 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रुप में मनाया जाने लगा।

मध्ययुग तक तो महिलाएं घर की चार-दिवारी में जकड़ी हुई थीं लेकिन 1740-50 के आसपास ब्रिटेन में शुरु हुई औद्योगिक क्रान्ति जल्दी ही पूरे यूरोप में फैल गई। औरतों को घर की चार-दिवारी से निकलकर उन्हें कल-कारखानों और उद्योगों तक पंहुचा दिया। यहाँ तक कि वे रात की पाली में भी काम करने लगीं। इन कारखानों में कड़ी मेहनत और बेहद कम मजदूरी ने उन पर भयंकर बोझ डाला। औरतों पर घर और बाहर दोनों जगह के काम का दोहरा बोझ तो था ही, बेहद कम मजदूरी ने घर का खर्च चलाना भी असम्भव बना दिया।

औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भिक दौर मजदूरों के भयंकर शोषण का दौर था। मिल मालिक औरतों और बच्चों को मजदूर के रुप में प्राथमिकता देते थे ताकि कम से कम मजदूरी देनी पड़े। कोई श्रम कानून नहीं थे। औरतों को 16 घंटे तक रुकना पड़ता, कम रोशनी, दमघोटू वातावरण, कम भोजन, उन्हें जल्दी ही जानलेवा बीमारियों से ग्रस्त कर देते थे। उनकी औसत आयु 32 और किसी-किसी शहर में तो 29 वर्ष ही हो गई थी। काम की इन एक समान अमानवीय स्थितियों ने उन्हें एकता कायम करने के लिए और काम की बेहतर स्थितियों, बेहतर वेतन और श्रम कानूनों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया।

1820 से महिलाओं के स्वत:स्फूर्त आन्दोलन होने लगे और उसकी शुरुआत कपड़ा मिल की महिला मजदूरों ने की। 1845 में मजदूरों की पहली बड़ी हड़ताल हुई जिसमें 5000 महिला मजदूर शामिल हुई। उन्होंने काम के घंटे 16 से घटाकर 10 घंटे करने की मांग की। कड़े संघर्ष के बाद यह माँग मान ली गई। 1888-89 में माचिस बनाने वाली लड़कियों ने आन्दोलन की शुरुआत की। यह आग धीरे-धीरे पूरे असंगठित क्षेत्र में फैल गई। इस आन्दोलन से प्रभावित होकर एनी बिसेन्ट ने लंदन में 'श्वेत गुलामी' शीर्षक से लेख लिखा। जब इन लड़कियों को काम से निकाल दिया गया तब शहर के बुद्धिजीवियों और मध्यवर्गीय लोगों ने उनका समर्थन किया। अत्यधिक दबाव में मालिकों को उन्हें वापस लेना पड़ा। जल्दी ही सूती कपड़ा, जूट, सिगार, अचार, बिस्कुट, लेस बनाने वाली औरतों ने भी संगठन बनाने शुरु किए और अपनी मांगें रखीं।

इंग्लैड की महिलाओं की तरह अमरीका की महिलाओं के जुझारु संघर्ष का इतिहास अत्यन्त रोचक रहा। उन्हें जब अमरीकन फैडरेशन ऑफ लेबर की सदस्यता नहीं दी गई तब उन्होंने पेशेवर महिलाओं के साथ मिलकर 'द विमन्स ट्रेड यूनियन लीग' बनाई। उन्होंने मांग की कि काम के घन्टे 8 किए जाएं, उनके

बच्चों के स्कूलों को सुधारा जाये, बेहतर आवास की सुविधा दी जाए। इस संगठन ने 1909 में अपराइजिंग आफ द 20,000 और 1912 में लारेन्स हड़ताल का आयोजन किया। इन हड़तालों में पहली बार मजदूरों की पत्नियों ने भी शिरकत की।

महिलाओं की शर्ट बनाने वाली मजदूरिनों ने 22 नवम्बर 1909 को अपने आन्दोलन की शुरुआत की। महिला मजदूरों की यूनियन बनाने की माँग को लेकर चले इस संघर्ष में जबरदस्त ठण्ड और पुलिस की लाठियाँ भी उनके उत्साह, जोश और हिम्मत को तोड़ नहीं सके। यह पहली हड़ताल थी जिसमें औरतों ने केन्द्रीय भूमिका निभाई।

इसी तरह लारेन्स हड़ताल के दौरान पोशाक बनाने वाली 23,000 महिला मजदूरों की हड़ताल ने अमरीकी कपड़ा उद्योग को 1912 की जनवरी से मार्च तक बिल्कुल ठप्प कर दिया। आन्दोलन के दबाव की वजह से जब स्थानीय प्रशासन ने काम के घन्टे कम करवाए तो मालिकों ने वेतन इतना कम कर दिया कि मजदूरों में भूखमरी की नौबत आ गई। मालिकों की इस धूर्तता और अमानवीयता के विरोध में हजारों औरतों ने नारेबाजी, जुलूस और प्रदर्शन कर पुलिस से टक्कर ली। पुलिस के डण्डों से दो गर्भवती महिलाओं का गर्भपात हुआ और अन्ना लपेझा नामक एक महिला मजदूर शहीद हो गई। 600 महिलाओं को जेल भेजा गया। बच्चों को अनाथालय में रखने की नौबत आ गई। अत्याधिक दबाव में मालिकों को महिला मजदूरों की सभी मांगें माननी पड़ी। यह दो ऐसे आन्दोलन थे जिनमें सम्भ्रान्त से लेकर समाजवादी महिला तक शामिल हुई।

उस समय यूरोप में उच्च मध्यमवर्गीय औरतें सिर्फ अपने तबके के लिए मताधिकार की माँग कर रही थीं। मजदूर महिलाओं ने सीमित मताधिकार की माँग को खारिज कर सार्विक मताधिकार की माँग रखी। 1907 में जर्मनी के स्टुटगार्ड में हुए पहले अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी महिलाओं के सम्मेलन में मशहूर श्रमिक और कम्यूनिस्ट नेता क्लारा जेटकिन ने भी सीमित मताधिकार के बजाय सार्विक मताधिकार की माँग रखी जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा।



श्रमिक नेता क्लारा जेटकिन

पहला आठ मार्च

8 मार्च 1908 को न्यूयार्क के कपड़ा उद्योग की हजारों महिला मजदूरों ने रटगर्स स्कवेयर पर एकत्रित होकर जबरदस्त प्रदर्शन किया। उन्होंने काम के घन्टे 10 करने, काम की स्थितियों में सुधार, लिंग, नस्ल, सम्पत्ति या शैक्षिक योग्यता के आधार के बिना सार्विक मताधिकार की माँग की, जिसे व्यापक समर्थन मिला। इन्हीं मांगों के आधार पर 1910 में वेज अर्नर्स सफ्रेज लीग का गठन किया गया। अमरीकी महिला मजदूरों के आन्दोलन से ही प्रभावित होकर क्लारा जेटकिन ने 1910 में कोपेनहेगेन (डेनमार्क) में चल रहे समाजवादी महिलाओं के दूसरे सम्मेलन में प्रस्ताव रखा कि 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रुप में मनाया जाए। इस सम्मेलन में यह स्वीकार किया गया कि 8 मार्च को सार्विक मताधिकार एवं महिला मजदूरों के जुझारु संघर्ष और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला आन्दोलन को आगे बढ़ाने के प्रतीक के रुप में मनाया जाए।

महिला मजदूरों और महिला आन्दोलन की लड़ाई को 1917 की रूसी क्रान्ति ने नई रोशनी में आगे बढ़ाने का काम किया। रूसी क्रान्ति के बाद सोवियत संघ की महिलाओं को तमाम अधिकारों के साथ ही सभी को सार्विक मताधिकार दिया। क्रान्तिकारी सरकार ने महिलाओं को न सिर्फ आर्थिक-राजनैतिक-सामाजिक अधिकार दिए बल्कि उन्हें तलाक का भी अधिकार दिया। शादी को स्वैच्छिक सम्बन्ध घोषित किया गया और औरतों को तलाक का अधिकार भी दिया। जायज और नाजायज बच्चों के बीच के भेद को मिटा दिया गया। यह रूसी क्रान्ति और महिला आन्दोलन का प्रभाव था कि 1918 में इंग्लैंड में और 1919 में अमरीका में सार्विक मताधिकार दिया गया।

भारत में आठ मार्च

भारत में आजादी की लड़ाई में औरतों ने जमकर हिस्सेदारी की। मुबंई में सोवियत संघ की मित्र नामक संस्था ने 8 मार्च 1943 को भारत में पहले अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस का आयोजन किया। उसके

बाद 1950 के दशक से नेशनल फैडरेशन ऑफ विमेन द्वारा हर साल 8 मार्च को महिला आन्दोलन के प्रतीक और उसे सुदृढ़ करने के लिए मनाया जाने लगा। 8 मार्च 1971 को पुणे नगरपालिका की कामगार महिलाओं ने पूरे शहर में जुलूस निकाला। 8 मार्च 1980 को भारत के विभिन्न शहरों में मनाया गया 8 मार्च महिला आन्दोलन को आगे बढ़ाने और जागरुकता पैदा करने की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। मशहूर मथुरा बलात्कार काण्ड की पुनः जाँच की मांग को लेकर हजारों-हजार महिलाएं शहर की सड़कों पर उतर आयीं। पुलिस और न्यायपालिका की संदिग्ध भूमिका पर महिला संगठनों ने सवाल उठाया और जबरदस्त विरोध प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन के बाद से महिला आन्दोलन का सिलसिला थमा नहीं। महिलाओं की चेतना में जबरदस्त इजाफा हुआ। महिलाओं के पक्ष में बने कानूनों में महिला आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है और आज भी है। आज वैश्वीकरण के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियां समाज की हर छोटी-बड़ी चीज को अपनी गिरफ्त में लेने की कोशिश कर रही हैं। सचेत तौर पर महिला मजदूरों के जुझारु संघर्ष को भुलाकर 8 मार्च को एक कॉस्मेटिक दिवस के रुप में सीमित कर देने की कोशिश हो रही है। आज जब मजदूरों के अधिकार ही छीने जा रहे हैं, हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि मजदूर महिलाओं के संघर्ष के प्रतीक दिवस को उसी रूप में याद करने दिया जायेगा। आज जरुरत इस बात की है कि आठ मार्च के पीछे की लम्बी संघर्षशील परम्परा को फिर से याद किया जाये और महिला आन्दोलन को मजबूत किया जाये।

सम्पर्क - 9729486502

■

रागिनी

मुकेश यादव

प्रथम शिक्षिका होणे का, दें गौरव सम्मान तनै
सावित्री बाई फूले याद यो, कररया हिन्दुस्तान तनै

1. ज्योतिबा तै पढ़कै नै, मन म्हें यो अहसास हुआ
पीड़ित शोषित जनता का यो, अनपढ़ता तै नाश हुया
सबका पढ़णा घणा जरुरी, यो पक्का विश्वास हुया
बालिका स्कूल पुणे म्हें खोल्या, यो पहला प्रयास हुआ
भरे तालाब म्हं फैंकी कांकर, हथेली पै राक्खी जान तनै
सावित्री बाई फूले.........

2. छोरियां नै पढ़ावण खातर, घार-घर म्हं तू जाण लगी
बिना पढ़ाई कुछ भी ना, यू जन-जन नै समझाण लगी
समाज के ठेकेदार सजग हुये, निशाने पै तू आण लगी
गोबर कीचड़ पत्थर फैंके, जिस रस्ते पै जाण लगी
चरित्रहीन करैगी छोरियां नै, न्यू करण लगे बदनाम तनै
सावित्री बाई फूले.........

3. बाल विवाह की म्हारे देश म्हं, सबतै बड़ी बीमारी थी
बचपन म्हं विधवा घणी होरी, दर-दर ठोकर खारी थी
इनक शादी घणी जरुरी, या तनै मन म्हं धारी थी
केश मुण्डन को बंद करने की, मिल-जुल करी तैयारी थी
नाइयों की हड़ताल कराकै, विरोध का करया एलान तनै
सावित्री बाई फूले.........

4. विधवा प्रसूति गृह खोल कै, करया सबतै बड़ा काम तनै
पहला बच्चा ले कै गोद, यशवंत धरया था नाम तनै
अपणे पति की मौत पे छोड़े, सारे ताम रै झाम तनै
खुद मुखाग्नि दे कै नै, कर दिये काम तमाम तनै
'मुकेश' कह ज्यब प्लेग फैलग्या, खुद की झोंकी जान तनै
सावित्री बाई फूले.........

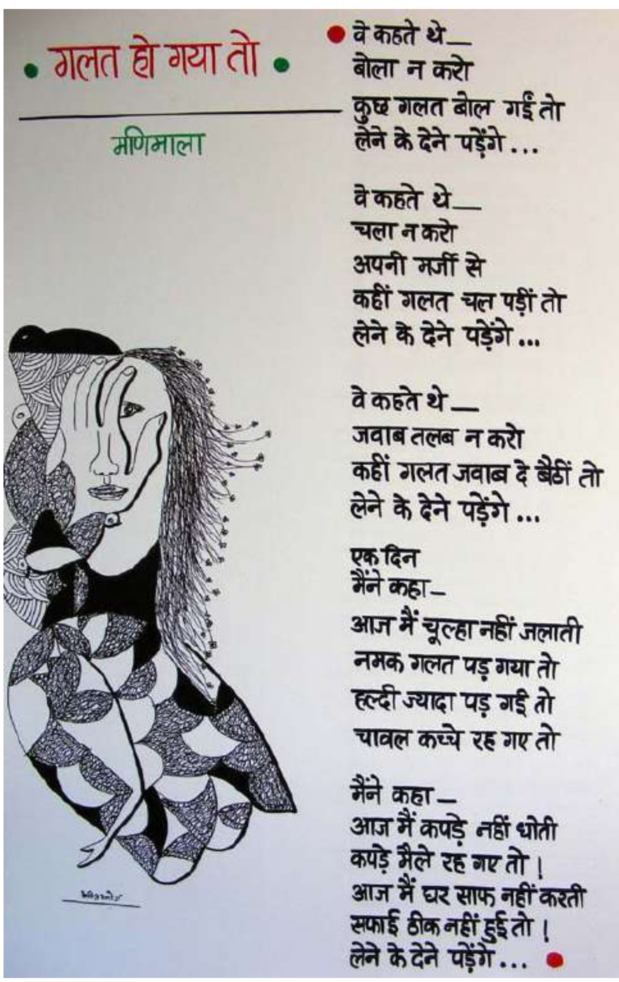
सम्पर्क : - 9416916596

■

सावित्री बाई फुले की कविताएं

1.

जाओ जाकर पढ़ो-लिखो
बनो आत्मनिर्भर, बनो मेहनती
काम करो-ज्ञान और धन इकट्ठा करो
ज्ञान के बिना सब खो जाता है
ज्ञान के बिना हम जानवर बन जाते हैं
इसलिए, खाली ना बैठो,जाओ, जाकर शिक्षा लो
दमितों और त्याग दिए गयों के दुखों का अंत करो
तुम्हारे पास सीखने का सुनहरा मौका है
इसलिए सीखो और जाति के बंधन तोड़ दो
ब्राह्मणों के ग्रंथ जल्दी से जल्दी फेंक दो



2.

जो वाणी से उच्चार करे
वैसा ही बर्ताव करे
वे ही नर नारी पूजनीय
सेवा परमार्थ
पालन करे व्रत यथार्थ
और होवे कृतार्थ
वे सब वंदनीय।
सुख हो दुख
कुछ स्वार्थ नही
जो जतन से कर अन्यों का हित
वे ही ऊँचे,
मानवता का रिश्ता जो जानते है वे सब
सावित्री कहे सच्चे संत ।

3.

ज्ञान नहीं विद्या नहीं उसे अर्जित करने की जिज्ञासा नहीं
बुद्धि होकर भी उस पर जो चले नहीं उसे इंसान कहे क्या ?

दे दो ईश्वर बिना काम किए बैठे बिठाए खाट पर
ढोर डंगर भी ऐसा कभी करता नहीं
जिसका कोई विचार - अस्वार नही, उसे इंसान कहें क्या ?

पत्नी बिचारी काम करती रहे और पति फोकट में मौज उड़ाए
पशु पंछी में यह बात होती नही ऐसों को इंसान कहें क्या ?

दूसरों की मदद ना करे सेवा त्याग दया माया ममता आदि
जिसके पास यह सदगुण नहीं उसे इंसान कहें क्या ?

पशु पंछी, बंदर आदमी जन्म मृत्यु सब को ही
इस बात का ज्ञान जिसे नहीं उसे इंसान कहें क्या ?

4.

स्वाबलंबन का उद्योग, ज्ञान धन का संचय करो निरंतर
विद्या के बिना व्यर्थ जीवन पशु जैसा, आलसी बन चुप ना बैठो।

विद्या प्राप्त करें शूद्रों-अतिशूद्रों के दु:ख निवारण हेतु
अंग्रेजी का ज्ञान हासिल करने का शुभ अवसर हाथ आया।

अंग्रेजी पढ़ लिखकर जात-पात की दीवारों को ढहा दो।
भट ब्राम्हणों के षडयंत्रों के पिटारों को दूर फेंक दो।

(सावित्रीबाई फुले की यह कविताएं मराठी भाषा के प्रसिद्ध कवि शेखर पवार द्वारा मराठी से हिन्दी में अनुदित हैं)

हरियाणा में महिला आंदोलन: अतीत एवं वर्तमान

सविता बेरवाल

हरियाणा के महिला आंदोलन ने यहां के समाज की आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं की विशिष्टता की वजह से विभिन्न चुनौतियों से जूझते हुए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष पहचान बनाई है।

अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय महिला आंदोलन

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के संघर्षों का इतिहास बहुत लंबा और गौरवपूर्ण रहा है। 18वीं सदी के आखिरी दो दशकों में युरोपीय समाज में हुई उथल-पुथल व क्रांतियों ने महिलाओं की स्थिति और उनके सवालों पर गहरा असर डाला। कई विचारकों व लेखकों ने महिला समानता, स्वतंत्रता और अधिकारों के प्रश्नों को अपने भाषणों व लेखों में उठाया।19वीं सदी तक आते-आते महिलाओं के लिए समान अधिकारों की मांग जोर पकड़ने लगी थी। स्थानीय मांगों, कानूनी अधिकारों, समान काम समान वेतन, काम के घन्टे निश्चित करने, मताधिकार और नागरिक अधिकारों को लेकर धरने-प्रदर्शन, भूख हड़ताल विभिन्न देशों में हुए। पुलिस की लाठियां व गोलियां खाई, जेलों में गई जिसकी बदौलत महिला अधिकारों की दिशा में कुछ कदम आगे बढ़ पाए। 20वीं सदी में महिला सशक्तिकरण का सवाल महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरा।

भारत में आजादी के आंदोलन में महिलाओं ने भागीदारी करते हुए महिलाओं की स्थिति में सुधार से जुड़े मुद्दों को भी उठाया। इसी का परिणाम था कि देश को आजादी मिलने के बाद संविधान में महिलाओं को बराबर का दर्जा मिला। लेकिन संविधान में इस महत्वपूर्ण प्रावधान के बावजूद महिलाएं गैर बराबरी और भेदभाव का शिकार रहीं क्योंकि हमारे पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक ढ़ांचे जस के तस बने रहे। 1971 में पहली बार महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कमेटी बनी, जिसने 1974 में अपनी रिपोर्ट में अन्य सिफारिशों के साथ महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी पर बल दिया। सत्तर के दशक में नाबालिग आदिवासी लड़की मथुरा के साथ पुलिस हिरासत में सामूहिक बलात्कार के मामले ने देश भर में महिलाओं को आंदोलित कर दिया और बलात्कार विषयक कानून में सुधार की मांग ने जोर पकड़ा। 1983 में आंदोलनों की बदौलत दहेज विरोधी कानून में महत्वपूर्ण संशोधन हो पाए। 1990 में महिला आयोग का गठन और पंचायतों व स्थानीय निकायों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण हासिल हो पाया। सन् 2000 में हिंसा व गरीबी के खिलाफ विश्वव्यापी अभियान में भारत के महिला आंदोलन ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। 2012 में निर्भया केस में देश भर में फैले आक्रोश ने महिला सुरक्षा के प्रश्न को फिर से केन्द्र में ला दिया व बलात्कार कानून में संशोधन करना पड़ा। आज महिलाओं के संघर्षों में अहम बात यह है कि वे केवल सुधार नहीं चाहती बल्कि सामाजिक और आर्थिक ढांचों में मूलभूत परिवर्तन चाहती हैं।

हरियाणा में महिलाओं की स्थिति

आजादी के आंदोलन और समाज-सुधार आंदोलन का हरियाणा में प्रभाव बेहद सीमित रहा है। हरित क्रांति का क्षेत्र रहा यह राज्य आर्थिक रूप से तो सशक्त हुआ परन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा ही रहा। सामाजिक विकास के मापदंडों शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और संपत्ति पर अधिकार के मामले में महिलाएं आज भी पुरुषों से कहीं पीछे हैं। लिंग अनुपात के मामले में हरियाणा पूरे देश में सबसे निचले पायदान पर है। महिला शिक्षा, महिला-पुरुष शिक्षा स्तर में अन्तर, शिशु

लिंगानुपात	
भारत	हरियाणा
940	877
स्रोत : सेन्सस ऑफ इंडिया -2011	

मृत्यु दर में लिंग अनुपात, महिला रोजगार आदि मामलों में भी हरियाणा देश के पिछड़े राज्यों में आता है। घर और बाहर उत्पादन में भरपूर योगदान देने के बावजूद हरियाणा में महिलाओं के काम की कोई गिनती नहीं है। संपत्ति पर अधिकार केवल कागजों तक सीमित हैं। पिछले

कार्य क्षेत्र में भागीदारी दर

कुल	पुरुष	स्त्री	
भारत	39.79	53.26	25.51
हरियाणा	35.17	50.44	17.79

स्रोत : सेन्सस ऑफ इंडिया -2011

दिनों पिता की संपत्ति में अधिकार मांगने पर जींद जिले में महिला को मौत के घाट उतार दिया गया। यहां के पितृ सतात्मक समाज, उसके चुने हुए प्रतिनिधियों, राजनेताओं और राजनीतिक पार्टियों की महिला प्रश्नों पर संवेदनशीलता व प्रतिबद्धता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हरियाणा विधानसभा में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन करके महिलाओं को पिता की संपति में अधिकार से वंचित करने की कोशिश की गई। परन्तु राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदन न करने पर यह प्रस्ताव वापिस लेना पड़ा।

हरियाणा की महिलाओं की छवि दबी-कुचली, दीन-हीन और कमजोर महिलाओं की नहीं है। वे शिक्षा, खेल, सेना, अंतरिक्ष आदि कई क्षेत्रों में अपने राज्य का नाम रोशन कर रही हैं। उनमें सामाजिक भागीदारी की प्रबल इच्छा नजर आती है हालांकि इस सब के लिए उन्हें बेहद कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ रहा है। महिलाओं में विशेषकर ग्रामीण, गरीब और दलित महिलाओं में अत्याचारों और आर्थिक संकट के विरूद्ध आवाज उठाने की आकांक्षा बढ़ रही है। महिलाओं में आत्मचेतना बढ़ने के साथ-साथ उन पर हमले भी तेजी से बढ़े हैं। पिछले दिनों सामूहिक बलात्कार की घटनाओं भारी बढ़ोतरी हुई है। हिंसा का स्वरूप भी विकराल हुआ है।

हरियाणा में महिला आंदोलन का निर्माण

हरियाणा में महिला आंदोलन की शुरूआत 1970 के दशक के अन्त में व 1980 के दशक के शुरू में हुई। छात्राओं और महिलाओं ने विभिन्न आंदोलनों में शिरकत करना शुरू किया। हिसार कृषि विश्वविद्यालय और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के छात्र आंदोलनों में हिस्सा लेने के कारण अनेक छात्राएं महिलाओं की सामाजिक समस्याओं के बारे में जागरूक हुई। इसी दौरान रोहतक मैडिकल कॉलेज में एक नर्स के साथ मारपीट के मामले में नर्सों ने तीन दिन की हड़ताल की। कई जिलों में छेड़खानी के विरूद्ध विरोध प्रदर्शन हुए। 1980 के दशक के शुरू में फैक्ट्रियों विशेषकर कपड़ा मिलों में काम करने वाली महिला मजदूरों ने हिसार-हांसी, रोहतक और सोनीपत सहित कई जिलों के आंदोलनों में हिस्सा लिया।

जन सांस्कृतिक मंच और डैमोक्रेटिक फोरम जैसे विचार-विमर्श के मंचों के माध्यम से महिलाओं की स्थिति व सामाजिक समस्याएं विचार-विमर्श के केन्द्र में आई। प्रयास व जतन नाम की पत्रिकाओं में महिलाओं की स्थिति से संबंधित विभिन्न लेखों, कविताओं, कहानियों व समीक्षाओं ने भी महिलाओं की समस्याओं पर व्यापक बहस छेड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महिलाओं की असमान सामाजिक स्थिति के खिलाफ बढ़ते आक्रोश ने यहां संगठित महिला आंदोलन को जन्म दिया। जनवादी महिला समिति, महिला सांस्कृतिक संघ, एन.एफआई.डब्लयू. जैसे स्वतंत्र संगठनों के अलावा अखिल भारतीय महिला परिषद् जैसे महिला संगठन बने। आज सरकारी सहयोग से चलने वाले संगठन भी महिलाओं के मुद्दों पर काम कर रहे हैं। दलित महिला संगठन भी दलित महिलाओं के मुद्दों पर कभी-कभी नजर आते हैं। राजनीतिक पार्टियों के महिला विंग भी कभी-कभार कुछ मुद्दों पर प्रदर्शन करते हैं परन्तु महिलाओं के मुद्दों पर किसी तरह की प्रतिबद्धता और निरंतरता नजर नहीं आती।

महिला आंदोलन के हस्तक्षेप व उपलब्धियां

हरियाणा के समाज में लिंग, जाति, धर्म, भाषा, नस्ल आधारित भेदभाव को खत्म कर समतामूलक समाज बनाने के लिए महिला आंदोलन ने सघंर्ष किए हैं। सामाजिक व महिला उत्पीड़न के हजारों मामलों में हस्तक्षेप करते हुए पीड़ित लोगों को न्याय दिलवाने में अग्रणी भूमिका निभाई है। हिसार का सुशीला अपहरण केस, पड़ाना का सामूहिक बलात्कार केस,

शहरी कार्य बल में भागीदारी दर

	कुल	पुरुष	स्त्री
भारत	35.31	53.76	15.4
हरियाणा	32.95	51.15	12.1

स्रोत : सेन्सस ऑफ इंडिया -2011

समालखा में नाबालिग बच्ची के साथ बलात्कार और थाने में पिटाई का केस, बिचपड़ी में निर्मला बलात्कार केस, रोहतक में पुलिस कर्मियों द्वारा सरिता बलात्कार व आत्महत्या केस, करनाल के निसिंग थाने में एस. एच. ओ. द्वारा बलात्कार केस, डी.आई.जी. द्वारा रूचिका छेड़छाड़ व आत्महत्या केस, बहादुरगढ़ में छोटी बच्चियों के बलात्कार व हत्याओं के केस, सरकारी स्कूलों में अध्यापकों द्वारा अबोध बच्चियों के साथ यौन शौषण के केस, रोहतक में तीन छात्राओं पर तेजाब फैंकने का केस, रोहतक में नेपाली लड़की बलात्कार व हत्या केस, साल 2012 में सामने आए दर्जनों बलात्कार के मामलों में महिला आंदोलन के हस्तक्षेप से जांच आयोग बैठे, मुकद्मे बने अपराधियों को सजाएं हुई और पीड़ित महिलाओं को न्याय दिलवाने और पुनर्वास करवाने में कामयाबियां मिली। इसके साथ-साथ जात गोत्र आधारित स्वंयभू खाप पंचायतों के असंवैधानिक फतवों के खिलाफ पीड़ित लोगों के पक्ष में माहौल बनाने के स्तर पर महिला आंदोलन ने अभूतपूर्व काम किया है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऑनर किलिंग बड़ा मुद्दा बनकर उभरा है।

इसके अलावा महिला आंदोलन द्वारा कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, नशाखोरी आदि के खिलाफगांवों, शहरों, मोहल्लों, शिक्षण संस्थानों में अभियान चलाए गए हैं।

महिला संरक्षण के कानून

हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधित) अधिनियम 2005
बाल विवाह अधिनियम 2006
घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005
सती विरोधी (निषेध) अधिनियम 1987
महिलाओं के साथ अभद्र प्रस्तुति (निषेध) अधिनियम 1986
मुस्लिम महिला तलाक संबंधी अधिकार अधिनियम 1986
अनैतिक अवैध व्यापार (निषेध) अधिनियम 1986
दहेज निरोधक अधिनियम 1961
मातृत्व लाभ अधिनियम 1961

महिला आंदोलन ने महिलाओं की आवाज को संसद तक पहुंचाने और कई महत्वपूर्ण कानून बनवाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कन्या भ्रूण हत्या, दहेज-प्रथा, बलात्कार व बच्चियों के यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा के खिलाफ महिलाओं को संपत्ति में अधिकार देने वाले कानून आदि इसी आंदोलन की देन हैं।

इज्जत के नाम पर होने वाले अपराधों के खिलाफ कानून बनवाने, कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ कमेटियां गठित करवाने, विधानसभाओं और संसद में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण के लिए और पंचायती राज कानून में संशोधन के खिलाफ संघर्ष जारी है।

हरियाणा में महिलाओं की स्थिति को जानने समझने के व्यापक प्रयास भी महिला आंदोलन ने किए हैं। राज्य सरकारों ने महिलाओं की असमान सामाजिक स्थितियों का आकलन करने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किए। एक समय पर राज्य में महिलाओं के मुद्दों पर इतनी अधिक असंवेदनशीलता थी कि इन मुद्दों पर बात करना भी गैरजरूरी समझा जाता था। महिलाओं पर होने वाले अपराधों को अपराध ही नहीं माना जाता था। आज महिला आंदोलन की बदौलत ये मुद्दे समाज के केन्द्रीय मुद्दे बने हैं और हरियाणा के समाज का एक विश्लेषण महिलाओं के हितों की दृष्टि से उपलब्ध हो पाया है।

ग्रामीण कार्य बल में भागीदारी दर

	कुल	पुरुष	स्त्री
भारत	41.8	53.8	30.0
हरियाणा	36.4	50.1	20.8

स्रोत : सेन्सस ऑफ इंडिया -2011

महिला आंदोलन के समक्ष चुनौतियां व सम्भावनाएं

हरियाणा का महिला आंदोलन शुरू से ही जातिवादी व साम्प्रदायिक ताकतों से टकराते हुए आगे बढ़ा है। सामूहिक बलात्कार, इज्जत के नाम पर होने वाले अपराधों, महिलाओं का सम्पति में अधिकार आदि मामलों में जातिवादी समूहों का महिला विरोधी रूख स्पष्ट नजर आता है। आए दिन ये समूह लड़कियों के लिए ड्रैस कोड, मोबाइल इस्तेमाल पर पांबदी, बलात्कार की घटनाओं को रोकने के लिए लड़कियों की शादी 15 साल की उम्र से पहले करने, महिलाओं व दलितों के खिलाफ फरमान देते रहते

हैं।

जाति व धर्म के आधार पर महिलाओं को संगठित करने के प्रयास हो रहे हैं और उन्हें हिंसात्मक गतिविधियों से भी जोड़ा जा रहा है। भारतीय संस्कृति के नाम पर पितृसत्ता के ढांचों को मजबूत करके महिलाओं पर पाबंदियां बढ़ाने की कोशिशें हो रही हैं दूसरी तरफ नव-उदारवाद के इस दौर में मंहगाई, बेरोजगारी और गरीबी की वजह से महिलाओं को कम-से-कम पैसे में ज्यादा-से-ज्यादा काम करने पर मजबूर होना पड़ रहा है।

जनविरोधी नीतियों और सामाजिक ढांचों के महिला विरोधी रूख के खिलाफ महिलाओं में रोष निरन्तर बढ़ रहा है। इस बढ़ते आक्रोश की अभिव्यक्ति समय-समय पर स्वत: स्फूर्त ढंग से भी होती रहती है और संगठित आंदोलनों में भी महिलाओं की हाजिरी बढ़ रही है। मीडिया का एक हिस्सा भी महिलाओं के मुद्दों को प्रमुखता से उठा रहा है। विश्वविद्यालयों में महिला अध्ययन केन्द्रों की सक्रियता की वजह से महिलाओं से संबधित अध्ययन व विश्लेषण हो रहे हैं। प्रगतिशील लोग महिलाओं और समाज-सुधार के मुद्दों पर महिला आंदोलन के साथ एकजुट हैं। आगामी दिनों में महिला आंदोलन को और ज्यादा मजबूती मिलने की सम्भावना है। **सम्पर्क : 94169-74185**

रागनी

मुकेश यादव

नींद रात नै आई कोन्या, गात उचाटी छाई
हे डंग-डंग पै बैरी, मान्नै सैं मन्नै हे पराई

गर्भ पड़ी ज्यब रोणा पड़ग्या, अल्ट्रासाउंड कराया हे
क्यूकर पीछा छूटैगा, यो घर म्हं मातम छाया हे
इस कुणबे नै मिलकै नै, मेरा नाम मिटाणा चाह्या हे-2
मात मेरी नै जिद्द लाली-2 मैं पैदा करणी चाही

हांसण-बोळण पै पाबंदी, के जीणे म्हं जीणा हो
बात-बात पै टोका-टाकी, घूंट सबर का पीणा हो
ऊपर तैं फेर न्यू कह दें ये, बेटी का धन हीणा हो-2
म्हारे बिना ना दुनिया चाल्लै- 2, ये नाम धरैं अणचाही

बलात्कार और छेड़छाड़ की, दिन-दिन घटना बढ़ती जां
जहर खा कोए आग लगा कै, भेंट दहेज की चढ़ती जां
इज्जत की खातर कितणी मारी, इसकी कोए गिणती ना-2
ार की बात सै माटी गेरो - 2, न्यू कह पंचायत बैठाई

सबतै ज्यादा बोझ म्हारे पै, सबतै पाछै खाणा हे
गात तोड़ कै काम करां और फिर भी मिलै उलाहणा हे
अपणी मुक्ति खातर बेबे, एक्का पड़ै बणाणा हे
कह 'मुकेश' या जिसी-जिसी होरी, बात उसी मन्नै गाई

सम्पर्क : - 9416916596

-अपील-

देस हरियाणा सामाजिक-सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णतः अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णतः पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।

रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।

रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी

रागनी

पं. लखमी चंद

सोनीपत जिले के जाटी गांव के साधारण किसान उदमीराम के घर सन् 1901 में जन्म। कला के क्षेत्र में आने के लिए परिवार का विरोध सहन करना पड़ा। अपनी गायन कला के दम पर न केवल हरियाणा में बल्कि आसपास के राज्यों में भी रागनी को लोकप्रिय किया। बीस से अधिक सांगों की रचना की। नौटंकी की और शाही लकड़हारा विशेषतौर पर प्रसिद्ध। हरियाणा के समाज और संस्कृति को बहुत गहरे से प्रभावित किया। सन् 1945 में देहांत।

कर जोड़ खड़ी सूं प्रभु लाज राखियो मेरी

मर्यादा को भूल गए दरबारां मैं शोर होग्या
दादा भीष्म द्रोणाचारी का हिरदा क्यूं कठोर होग्या
दुर्योधन दुशासन शकुनी कौरवों का जोर होग्या
अधर्मी राजा की प्रजा गैल दुख पाया करै
पाप की कमाई पैसा काम नहीं आया करै
सताए जां आप जो कोए ओरां नै सताया करै
हे कृष्ण हे कृष्ण कहकै ऊंचे सुर तै टेरी

सभा के मैं प्रश्न किया धीरे-धीरे फिरण लागी
कांपता शरीर रोई कौरवों से डरण लागी
भीष्म की तरफ कुछ इशारा सा करण लागी
नीति को बिसारा पिता क्यूं बैठे चुपचाप कहो
हारी सूं अक ना हारी सूं खोल कै नै साफ कहो
ये भी काम आपका है तोल कै इंसाफ कहो
मेरे प्रश्न का उत्तर दो थारी इतनी दया भतेरी

धर्म के विषय की बात समझकै बताई जा सै
धन की भरी थैली के अपणे हाथ से रिताई जा सै
दूसरे की चीज के जूए मैं जिताई जा सै
धर्मसुत बैठे जहां मैं के बेईमान हूंगी
आदि शक्ति फैसले पै बोलती जबान हूंगी
बीर का शरीर चीर मैं भी तो इंसान हूंगी
ये कौरव चीर तारणा चाहवैं करकै हेरा फेरी

लंका पै चढ़ाई करी सीता से मिलाए राम
जरत्कारु फेर मिले छोड़ गए घर गाम
अनसूइया अहिल्या तारा प्रेम से रटैं थी नाम
दमयन्ती की टेर सुणी नल को मिलाया फेर
देवयानी नै रट्या सखी कुए मैं गई थी गेर
सावित्री की बिनती सुणी पल की ना लगाई देर
कहै लखमीचन्द भजन बिन यो तन माटी की ढेरी

■

देखे मर्द नकारे हों सैं गरज-गरज के प्यारे हों सैं
भीड़ पड़ी मैं न्यारे हों सैं तज के दीन ईमान नैं

जानकी छेड़ी दशकन्धर नै, गौतम कै गया के सोची इन्द्र नै
रामचन्द्र नै सीता ताहदी, गौरां शिवजी नै जड़ तै ठादी
हरिश्चन्द्र नै भी डायण बतादी के सोची अज्ञान नै

मर्द किस किस की ओड घालदे, डबो दरिया केसी झाल दे
निहालदे मेनपाल नै छोड़ी, जळग्यी घाल धर्म पै गोड़ी
अनसूइया का पति था कोढ़ी वा डाट बैठग्यी ध्यान नै

मर्द झूठी पटकैं सैं रीस, मिले जैसे कुब्जा से जगदीश
महतो नै शीश बुराई धरदी, गौतम नै होकै बेदर्दी
बिना खोट पात्थर की करदी खोकै बैठग्यी प्राण नै

कहैं सैं जल शुद्ध पात्र मैं घलता लखमीचन्द कवियों मैं रळता
मिलता जो कुछ कर्‌या हुआ सै, छन्द कांटे पै धर्‌या हुआ सै
लय दारी मैं भर्‌या हुआ सै, देखो तो मिजान नै

हरियाणा की महिलाएं और स्वतन्त्रता संग्राम

डॉ. महेन्द्र सिंह

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरूद्ध 1857 से लेकर 1947 तक लड़ा गया। इस स्वतंत्रता संग्राम में विभिन्न विचारधाराओं, वर्गों, क्षेत्रों तथा व्यक्तियों की भूमिका थी। सम्पूर्ण भारत की जनता द्वारा भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र, अमीर-गरीब व स्त्री-पुरुष का भेद भुलाकर तथा एकजुट होकर दुनियां की सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति को चुनौती दी। इस लम्बे संघर्ष में अनेक व्यक्तियों ने शहादत दी व यातनाएँ सही तथा फिर हम स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त करने में सफल रहे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न पक्षों पर निरन्तर शोधकार्य जारी है। जिन क्षेत्रों व घटनाओं पर व्यापक ढंग से शोध कार्य हुआ है वहां के व्यक्तियों, शहीदों तथा स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में काफी मात्रा में जानकारी उपलब्ध हो रही है। इसके विपरीत अभी भी कई क्षेत्र व वर्ग ऐसे हैं जो अभी ठीक से उभर नहीं सके हैं। इनमें वर्तमान हरियाणा क्षेत्र भी एक है क्योंकि यहां पर समग्र रूप से स्वतन्त्रता संग्राम पर शोध नहीं हो पाया है। ऐसे में हरियाणा क्षेत्र की महिलाओं की भूमिका को स्वतंत्रता संग्राम के सन्दर्भ में समझना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। प्रस्तुत लेख इसी कड़ी में एक प्रयास है।

हरियाणा क्षेत्र में जन विद्रोह की शुरूआत के साथ ही अंग्रेजों ने दमन-चक्र चलाया। पश्चिमी हरियाणा क्षेत्र में दमन के लिए जनरल वान कोर्टलैण्ड फिरोजपुर से चला। 15-17 जून तक सिरसा में ओढ़ां नामक स्थान पर युद्ध में उसे सफलता मिली जहां 530 क्रान्तिकारी मारे गए। 17 जून को कोर्टलैण्ड ने खारेकां गांव को आग लगा दी। जिसमें महिलाएं व बच्चे शामिल थे। इस तरह छतरिया व खारेकां में कोर्टलैण्ड ने महिलाओं व बच्चों को आग लगाकर शिकार बनाया। सिरसा से हिसार के मार्ग पर बीघड़, गोरखपुर व अग्रोहा भौड़िया में भी कोर्टलैण्ड ने यही कार्यवाही की। 17 जुलाई को कोर्टलैण्ड ने मौहम्मद आजम की पत्नी को गिरफ्तार कर लिया तथा घर को आग लगा दी। हिसार व हांसी क्षेत्र के गांव मंगाली, हाजिमपुर, जमालपुर, पुठठी मंगलखां, भाटोल, खरड़ अलीपुर, सुलखनी, खारा बरवाला इत्यादि गांवों में आग लगाकर प्रताड़ित करने से महिलाओं की स्थिति बेहद दयनीय हो गई। रोहनात गांव को जब आग के हवाले किया गया तथा भागने वालों पर तोपों से वार किया गया तो 25 महिलाएं बच्चों सहित कुएं में कूद गई। लिबासपुर के उद्यमीराम की पत्नी लक्ष्मी देवी को बेरी के पेड़ से बांध कर उसके शरीर में कीलें गाड़ दी वह 23वें दिन तड़पते हुए मरी।

कैथल रियासत की रानी महताब कौर से अंग्रेजों ने उसका आवास छीनकर उसे समीपवर्ती गांव प्योदा में रहने को मजबूर किया। इसी तरह रानियां के नवाब नूर मुहमद खान को फांसी देने के उपरान्त उसकी पत्नी व बच्चों को रानियां से बेदखल कर दिया तथा उसकी माता (जाबिता खान की पत्नी) की पेंशन 400 रूपए मासिक से घटाकर मात्र 50 रूपए मासिक कर दी। झज्जर के नवाब को 23 दिसम्बर 1857 को फांसी देने के बाद सरकार ने उसकी सम्पति जब्त की तथा उसकी चारों बेगमों से अंग्रेज सरकार ने 25,000 प्रत्येक से कर्ज लिया हुआ था उसे भी सरकार ने नहीं लौटाया, बल्कि उनको भी आजीवन जेल में डाल दिया। इसी तरह की नीति सरकार ने 9 जनवरी 1858 में नाहर सिंह को फांसी देने के उपरान्त तथा फरूखनगर के नवाब अहमद अली 15 की फांसी 23 जनवरी 1858 के बाद अपनाई गई।

29 जुलाई 1857 को दिल्ली मोर्चे से कप्तान हड्सन का अम्बाला में डिप्टी कमिशनर फौरसिथ को लिखा गया पत्र भी हरियाणा की एक वीरांगना की जानकारी देता है। जिसमें उस महिला के बादली के मोर्चे पर लड़ने तथा अंग्रेजों के लिए भंयकर खतरा बनने का वर्णन है। इसी पत्र में उस वीरांगना को माफ न किए जाने की बात भी हड्सन ने की है क्योंकि उनका मानना था कि वह महिला यदि जीवित रही तथा वापिस घर आ गई तो 'जान ऑफ आर्क'' का स्थान प्राप्त कर लेगी।

1857 के जन-विद्रोह के बाद

सरकार ने जिस तरह की दमन की नीति अपनाई, उसके परिणाम स्वरूप लोगों के मन में शासन के प्रति डर बैठ गया, जिसका परिणाम यह रहा कि इस क्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियां सीमित रही।

कांग्रेस की स्थापना के समय लाला मुरलीधर तथा लाला लाजपत राय इत्यादि नेताओं ने कांग्रेस की गतिविधियों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में इन नेताओं की पत्नियों ने भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन विशिष्ट लोगों से निकलकर जनता के समक्ष गांधी जी के नेतृत्व में आया। जिसके बाद ही भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन जन-आन्दोलन का रूप ले सका। इसी काल में हमें हरियाणा की महिलाओं की भूमिका स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है।

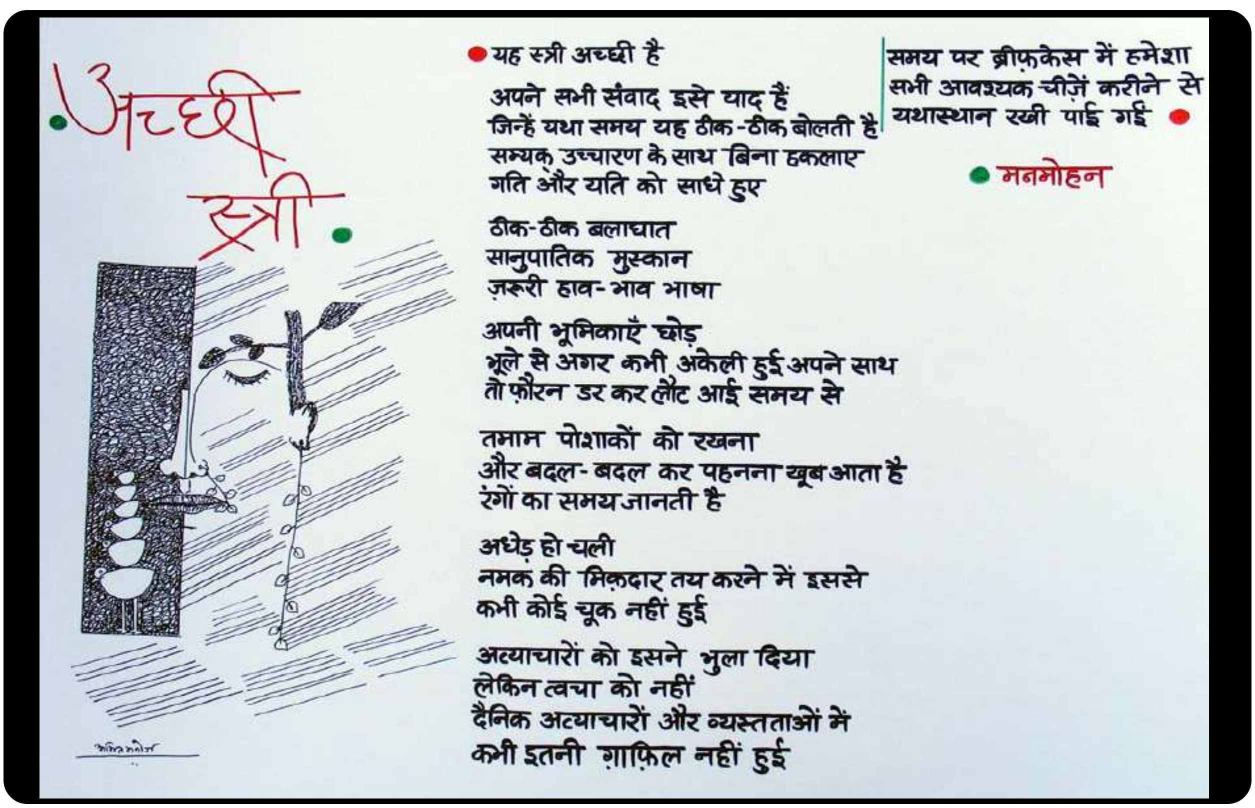
गांधी जी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर चलाया गया पहला आन्दोलन असहयोग आन्दोलन था। यह आन्दोलन अगस्त 1920ई. में प्रारम्भ हुआ। इसके प्रारम्भ होने के साथ हरियाणा क्षेत्र में भी गतिविधियां प्रारम्भ हो गई। इस आन्दोलन के दौरान गांधी जी हरियाणा क्षेत्र के भिवानी नगर में दो बार आए। पहली बार आगमन 22-24 अक्तूबर 1920 में हुआ। इस अवसर पर वे 'अम्बाला डिवीजनल पॉलिटिकल कांफ्रेस' में आए। इस कांफ्रैंस में 10 हजार से अधिक लोग उपस्थित थे जिनमें महिलाओं की संख्या 500 से अधिक थी। दूसरी बार गांधी जी ने भिवानी में 15 फरवरी 1921 ई. को 'डिवीजन रुरल कांफ्रेंस' को सम्बोधित किया। इस कांफ्रेंस में उपस्थित लोगों की संख्या 20 हजार के लगभग थी। जिनमें महिलाओं की संख्या लगभग 5,000 थी। इस अवसर पर गांधी जी ने अपने सम्बोधन में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने, हिंसा से दूर रहने, सूत कातने तथा तिलक स्वराज फण्ड में सहयोग देने का अनुरोध किया। इस कांफ्रेंस की महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस कांफ्रेंस के आयोजन स्थल पर पूर्ण पण्डाल खादी का था, स्वयं सेवकों की कमीज, पायजामा व टोपी भी खादी की थी। इस कांफ्रेंस में खादी वस्त्रों की एक प्रदर्शनी भी लगाई गई, जिसमें से तीन नमूने गांधी जी अपने साथ भी लेकर गए। गांधी जी ने पण्डाल, सभा स्थल व मंच की सज्जा के लिए महिलाओं को विशेष मुबारकबाद दी।

इसके बाद महिलाओं ने असहयोग आन्दोलन में खूब बढ़ चढ़ कर भाग लिया। हिसार में चाँद बाई ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। उसने सर्वप्रथम अपने परिवार के सदस्यों के विदेशी वस्त्र जलाए, तथा फिर वह नगर में बहुत से घरों में अन्य महिलाओं के साथ गई, चाँद बाई के नेतृत्व में तिलक स्वराज फण्ड के लिए 600 रुपए एकत्रित हुए तथा 120 चरखे भी एकत्रित हुए जिन्हें महिलाओं ने सूत कातते हुए वितरित किया। इसी कड़ी में स्वदेशी को बढ़ावा देने के लिए 17 दिसम्बर 1921 ई. को हिसार में एक सभा का आयोजन किया। जिसे पंजाब प्रान्त की नेत्री लज्जावती ने विशेष रूप से सम्बोधित किया। लज्जावती ने सभा को खादी पहनने का संकल्प भी दिलवाया। इसी आन्दोलन के दौरान कमला देवी व चुलादेवी के नेतृत्व में भिवानी 'महिला व वालिंटियर कोर' की स्थापना भी की । इस संगठन की महिलाओं ने रोहतक, अम्बाला, करनाल, हिसार व गुडगांव क्षेत्रों का दौरा किया। विदेशी वस्त्रों को जलाने तथा स्वदेशी का प्रचार करने में ये काफी सक्रिय रही। सरकार ने व्यापारियों को इसके विरूद्ध मुकद्में दर्ज करवाने के लिए उकसाया, इस आन्दोलन के दौरान चाँद बाई (हिसार) को 6 महीने, भाग्यदेवी (अम्बाला) को 8 महीने, कमला देवी (भिवानी) को 6 महीने की जेल मिली। चाँद बाई ने तो 1923, 1924 व 1925 के कांग्रेस अधिवेशन में भी भागीदारी की। उनके बन्दी बनाये जाने से आन्दोलन कमजोर नहीं हुआ बल्कि लोकप्रिय हुआ। महिलाओं ने इसमें यथासम्भव धन ही नहीं दिया बल्कि तिलक स्वराज फण्ड के लिए अपने आभूषण भी दिए। 5 फरवरी की चोरा-चोरी की घटना के बाद असहयोग आन्दोलन वापिस ले लिया। जिसके बाद स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए बना माहौल कुछ कमजोर हुआ लेकिन इसके बाद चरखा कार्यक्रम तथा स्वदेशी का प्रचार महिलाएं करती रहीं।

असहयोग आन्दोलन के पश्चात कुछ समय के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन कमजोर रहा लेकिन साईमन कमीशन की घोषणा के पश्चात धीरे-धीरे इसने बल पकड़ लिया। लाला लाजपत राय पर लाहौर में लाठीचार्ज तथा 17 नवम्बर 1928 में उनकी मृत्यु के पश्चात इस क्षेत्र में आन्दोलन की गतिविधियां तेज हो गई। हांसी क्षेत्र में स्कीनर राज्य के विरूद्ध पं. नेकी राम शर्मा के नेतृत्व में कृषक आन्दोलन चला, जिसमें अन्ततः कृषकों को सफलता मिली। 7-9 फरवरी 1929 को रोहतक में पंजाब प्रान्त की राजनैतिक कांफ्रेंस हुई, जिसमें इस क्षेत्र के लोगों में जोश भर दिया। इस कांफ्रेंस में पास किए गए प्रस्ताव के अनुरूप हरियाणा में 2000 से अधिक स्वयंसेवक तथा 51716 कांग्रेस के सदस्य बने। जिनमें लगभग

250 महिला स्वयं सेवक तथा 4500 सदस्य थी। 29 दिसम्बर 1929 को लाहौर में कांग्रेस का 44वां अधिवेशन हुआ। जिसमें 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वतंत्रता दिवस मनाने तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का प्रस्ताव पास हुआ। हरियाणा क्षेत्र में रोहतक, हिसार, अम्बाला, करनाल, गुड़गांव, पानीपत, सोनीपत, कैथल व जगाधरी में 26 जनवरी 1930 को प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया जिसमें हजारों की संख्या में महिलाओं ने भागीदारी ली। 27 फरवरी 1930 को गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की विस्तृत रूपरेखा रखी, जिसके अनुरूप 12 मार्च से 5 अप्रैल तक दाण्डी मार्च के कार्यक्रम तथा 6 अप्रैल को नमक कानून तोड़ने के बारे में बताया गया। हरियाणा क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर की गतिविधियों के साथ-साथ गतिविधियां हुई। नमक सत्याग्रह, स्वदेशी, बहिष्कार, शराब की दुकानों के समक्ष धरने लगातार चलते गए। आन्दोलन के प्रारम्भ में श्रीमती सूरज भान, श्रीमती दुनीचन्द इत्यादि की गिरफ्तारी हुई। नमक सत्याग्रह में कस्तुरा बाई ने रोहतक में जेल के समक्ष धरना दिया। लाठी चार्ज के बाद उसे गिरफ्तार कर लिया तथा उसे चार महीने की कैद हुई। 18 सितम्बर 1930 को उसे फिर एक वर्ष की कैद हुई। वह 1931 ई. में रोहतक कांग्रेस की उप-प्रधान तथा पंजाब महिला शाखा की प्रभारी बनी। 1932 में भी वह दो बार गिरफ्तार हुई। रेवाड़ी में ही एक 12 वर्षीय कन्या ने सत्याग्रहियों द्वारा बनाए गए नमक के एक पैकेट को 60 रूपये में खरीदा उसने ये 60 रूपये 2 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से जमा किए थे।

झज्जर के गांव डीघल की मन्नी देवी 18 सितम्बर 1930 को रोहतक में धरने के लिए पहुंची, पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर होने की चेतावनी दी लेकिन वह वहीं खड़ी रही इस अवसर वह 12 सत्याग्रहियों के साथ गिरफ्तार हुई तथा 1 वर्ष की जेल काटी। लाहौर की सोहागरानी रोहतक में रह रही थी उसे इस आन्दोलन के दौरान नौ महीने की सजा हुई। रोहतक के रोहण गांव की लक्ष्मी बाई आर्य रोहतक में विदेशी कपड़े की दुकानों के समक्ष धरना देने के कारण बन्दी बना ली गई तथा उसे यरवदा जेल में 6 महीने बन्दी रखा गया। अम्बाला में श्रीमती एल.आर. जुरूथी, कुमारी विद्यावती, श्रीमती सूरज भान व श्रीमती पार्वती देवी को भी नमक सत्याग्रह तथा धरने के कारण बंदी बनाया गया। अम्बाला में श्रीमती सूरजभान व श्रीमती दुनीचन्द ने खद्दर को लोकप्रिय बनाने के लिए निरन्तर कार्य किया। 1930 ई. में जन्माष्टमी के दिन वे 30 अन्य



महिलाओं के साथ मन्दिर में गेट पर बैठ गई तथा उन्हीं महिला व पुरुषों को मन्दिर के अन्दर जाने दिया जो खद्दर पहने थे। इसी तरह की घटना अम्बाला में ही जन्माष्टमी के दो दिन बाद जैन मन्दिर में भी हुई। इस कार्यवाही में उनके अतिरिक्त गिरफ्तार होने वाली महिलाओं में स्वदेश कुमारी तथा जुरूथी बहनें भी थी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान कांग्रेस द्वारा हरियाणा क्षेत्र में समानान्तर सरकारें भी बनाई गई। इस कड़ी में रोहतक में डिप्टी कमीश्नर लाला श्यामलाल व पुलिस अधीक्षक पं. श्री राम शर्मा को बनाया गया। इसी तरह हिसार में प्रशासन प्रमुख भूमिका के लिए मोहनी देवी को विशेष जिम्मेदारी दी गई। उसे बाद में 2 वर्ष की जेल हुई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन की गतिविधियों में जेल जाने वाली महिलाओं में अम्बाला की आशा देवी को तीन महीने, रामप्यारी को 4 महीने, विद्यावती को 2 महीने, रोहतक की चित्रा देवी को 1930 में नौ महीने 1932-33 में 1 वर्ष, कस्तुरा बाई को पहले 1932 में 4 महीने तथा 1933 में 1 वर्ष, धापा देवी को 6 महीने भिवानी की मोहनी देवी को 6 महीने व सोनीपत की धनकौर को 2 वर्ष व लीलावती को साढ़े सात महीने की जेल हुई। इस आन्दोलन में अपने पतियों के साथ एक सप्ताह से एक महीने की जेल जाने वाली महिलाओं की संख्या 200 से भी अधिक थी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा बदली। सरकार द्वारा 1935 का अधिनियम पास किया गया तथा 1937 के चुनावों का आयोजन किया गया। जिससे राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस को सफलता मिली। लेकिन 1939 ई. में कांग्रेस मन्त्री मण्डल के त्याग पत्र के बाद कांग्रेस फिर आन्दोलन की राह पर चली। स्वतन्त्राता-आन्दोलन के अन्तिम दौर में व्यक्तिगत सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन तथा प्रजामण्डल आन्दोलन में भी महिलाओं की भूमिका काफी थी।

गांधी जी ने 1940 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसमें राष्ट्रीय स्तर पर पहले सत्याग्रही आचार्य विनोबा भावे थे जबकि हरियाणा के पहले सत्याग्रही पं. नेकी राम शर्मा थे। राष्ट्रीय स्तर पर इस आन्दोलन में 25,000 के लगभग सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दी। इसमें कुछ हरियाणा की महिलाएं भी थी।

लक्ष्मीबाई आर्य ने दिल्ली सत्याग्रह में हिस्सा लिया उन्होंने एक वर्ष की कैद दिल्ली व लाहौर में काटी तथा 100 रुपए जुर्माना लगाया गया। रोहतक जिले की कस्तुरा बाई ने नौ महीने तथा मन्नी देवी ने 6 महीने की जेल तथा 100 रुपए जुर्माना दिया। हिसार की चाँद बाई को 24 फरवरी 1941 में युद्ध विरोधी नारे लगाते गिरफ्तार किया तथा उन्हें 6 महीने लाहौर जेल में रखा गया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के चलते हुए 6-13 अप्रैल 1941 को राष्ट्रीय सप्ताह के दौरान हिसार के कटला रामलीला में चरखा प्रतियोगिता का आयोजन किया इसमें 200 से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। ये महिलाएं सामुहिक रूप से गीत गाती थी। बलवन्त राय तायल की पत्नी लक्ष्मी बाई का गीत इस दौरान अधिक चर्चा में रहा जिसके बोल थे:-

चरखे की टूटे ना तार, चरखा चलता रहे
यही है हमारा हथियार, चरखा चलता रहे
इसी से लेंगे स्वराज, चरखा चलता रहे

चाँदबाई ने इस चरखा प्रतियोगिता में शामिल होने वाली महिलाओं को पुरस्कार दिए। विशेष रूप से कताई के लिए 10 महिलाओं को पुरस्कार दिया गया। इस दौरान कताई की गई खादी को महिलाओं द्वारा बेचा गया। सैंकड़ो की संख्या में खादी के झण्डे भी इस सप्ताह के दौरान बिके।

1942 ई. में क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद कांग्रेस ने गांधी जी के नेतृत्व में अगस्त 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया। जिसमें गांधी

रामफल जख्मी की रागनी

पाड़ बगा द्यो बहणा चुप की चुनरिया..

इस चुंदडी नै गले को घोट्या,जुल्म करे बोलण तै रोक्या
जकड़े राक्खी मैं, पिया की अटरिया
पाड़ बगा द्यो बहणा चुप की चुनरिया

इस चुनरी नै जुल्म गुजार्‌या, चुनरी म्हं दुबक्या हाथ हमारा
खूब पिटाया हमें सारी हे उमरिया
पाड़ बगा द्यो बहणा, चुप की चुनरिया

चुनरी पती परमेश्वर बोल्है, जिंदा जळी चुनरी के औल्हे
खड़ी-खड़ी हँस रही, सारी ऐ नगरिया
पाड़ बगा द्यो बहणा, चुप की चुनरिया

एक दिन चुनरी पड़ैगी बगाणी,मिल कै पड़ैगी तस्वीर मिटाणी
'जख्मी' की होगी, पूरी ऐ उमरिया
पाड़ बगा द्यो बहणा, चुप की चुनरिया

जी ने करो या मरो तथा अंग्रेजो भारत छोड़ो का नारा दिया। इस आन्दोलन के दौरान भी हरियाणा क्षेत्र सक्रिय रहा। इस आन्दोलन के दौरान रोहतक की कस्तुरा बाई को 15 महीने की जेल मिली जबकि मन्नी देवी ने एक वर्ष की जेल काटी। रोहतक जिले के भालौट गांव के हरि राम ने देश भक्ति का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने अपने घर का सारा सामान व पशु इत्यादि बेचकर घर को ताला लगा दिया। उनके साथ उनकी पत्नी नाहरी देवी बच्चे तथा बूढ़ी माता भी सत्याग्रही बनी। वे सभी लगभग एक वर्ष जेल में रहे। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान अम्बाला की सत्यबाला व आशा देवी ने तीन महीने, भिवानी की राधा देवी, मोहनी देवी, परमेश्वरी व फुला देवी ने 6 महीने की जेल काटी उसके साथ जेल में उसकी दो पुत्री रूकमणी व मालती भी थी। इसी तरह हिसार की भगवानी देवी व तारावती को 6 महीने, रोहतक की कलावती देवी को 6 महीने कैद व 500 रुपए जुर्माना, नान्ही देवी को 6 महीने, फूल देवी को 4 महीने, सोनीपत थाना खुर्द की धनकौर को 1 वर्ष, लीलावती सिंहल को दो वर्ष (रोहतक व लाहौर) सरती, शान्ती, सुखदेई, सुमन, दड़का तथा दाक्खाया देवी ने तीन महीने की जेल काटी।

स्वतंत्रता आन्दोलन की मुख्य धारा के अतिरिक्त कुछ घटनाएं ऐसी हैं, जो स्वतंत्रता आंदोलन से प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़ी हैं, लेकिन उनसे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल व शक्ति अवश्य मिली है।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान जीन्द एक रियासत थी। इस रियासत की प्रजा ने शासक के विरूद्ध विगुल बजाया तथा अन्तत: शासक को झुकना पड़ा। धोगी देवी जीन्द के समीपवर्ती गांव रामराय की निवासी तथा भगवानी देवी रामपुरा की निवासी ने शासक के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाई। उन्हें 6-6 महीने की जेल की सजा दी गई। जीन्द की तरह महेन्द्रगढ़ क्षेत्र में भी रियासत थी। यह क्षेत्र पटियाला राजा के अधीन था। यहां भी शासक के विरूद्ध अत्याचार व शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई। कमला देवी नामक एक महिला समाजवादी चिन्तक थी। वह हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी की जानकार एवं एक कुशल वक्ता थी। उसे तीन बार गिरफ्तार किया गया। उसने लगभग एक वर्ष का समय जेल में बिताया। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान हैदराबाद सत्याग्रह एक काफी महत्वपूर्ण घटना थी। सोनीपत जिले के बुटाणा गांव की सुमन ने इसमें हिस्सा लिया। उसे काफी समय तक कारावास में रहना पड़ा।

अन्त में हम निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन (1857-1947) शहादत, त्याग व सघंर्ष की गाथा है। इसमें महिलाओं की भागीदारी भी काफी अधिक थी। इसमें हरियाणा की महिलाएं भी सक्रिय थी। जिन-जिन परिवारों से पुरुषों की सहभागिता राष्ट्रीय आन्दोलन में रही। उनमें महिलाएं भी पीछे नहीं थी। कुछ शिक्षित महिलाएं ऐसी भी थी जो स्वतंत्र रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी। सरकार द्वारा 1857 के समय ही दमन चक्र प्रयोग में लाया गया जो स्वतंत्रता प्राप्ति तक चलता रहा। महिलाओं पर इसकी दोहरी मार पड़ी पहली परिवार के सदस्य पिता, भाई या पति के खोने के रूप में तथा दूसरी स्वयं की हिस्सेदारी होने पर कारावास की सजा के रूप में।

सम्पर्क : इतिहास विभाग, दयानन्द कॉलेज, हिसार-मो. 9466329281

■

टेक चंद की कविता

बहन

हम चार भाई
दो बहनें थी
छोटी मर गई अठमासी
उसे ले जाना पड़ता था
दिन में तीन बार दूध पिलाने
जहां भी मां कर रही होती काम
बस यूं ही लाने ले जाने में
एक दिन मर गई वो
बड़ी पढ़ ना पाई एक दिन से ज्यादा
जिस दिन वो पहली बार स्कूल गई
लौटी तो देखा घर में छोटा भाई हुआ है
उसी दिन से वो भी
मां बन गई छोटे भाई की
गांव-घर में जहां भी
काम कर रही होती मां
बहन छोटे भाई को
खिला-बहला, नहला-धुला सुला रही होती
ये पिछली सदी की बात है
आज बहन दादी बन गई है
दिन भर खिलाती है पोते को
और मौहल्ले भर से लड़ झगड़कर
पढ़ने भेजती है बेटी और बहू को।

पुरुष

एक लम्बी बहस के बाद
पति ने
स्वीकार कर लिया
कि स्त्री व पुरुष के
अधिकार व दायित्व
समान होने चाहिएं
और फिर
आराम कुर्सी पर
अधलेटे पुरुष ने
हुक्म दिया
कि बस बहुत हुआ
अब जरा
एक कप
चाय तो बना कर लाओ

पछतावा

मीनू प्रजापत

एक खुशहाल परिवार था। परिवार में एक लड़की थी। नाम था सुमिता। सुमिता बहुत ही सुंदर, सुशील और समझदार थी। उसका एक बड़ा भाई था, जिसका नाम था आलोक। माता-पिता अपने बच्चों से बहुत प्यार करते थे। जब सुमित पांच साल का हुआ तो माता-पिता ने सोचा कि अब उसे स्कूल भेज देना चाहिए। उसे पढ़ने को स्कूल भेज दिया गया। लड़की की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। पिता ने एक दिन कहा कि सुमिता सात साल की हो गई है, उसे भी स्कूल भेजना चाहिए। इस पर माँ ने साफ इन्कार कर दिया। पिता ने कैसे भी करके बेटी को भी स्कूल में दाखिला दिलवा दिया।

लड़की पढ़ने में बहुत होशियार थी और लड़का बिल्कुल ही नालायक। केवल आठवीं कक्षा तक ही उसने बहुत जोर-जबरदस्ती से पढ़ाई की। आठवीं में फेल हो गया। स्कूल से हटने के बाद वह गांव की आवारा टोली में बैठने लगा। एक भी नशा ऐसा नहीं था, जो उसने नहीं किया हो। कहते हैं ना-जैसी संगत-वैसी रंगत।

सुमिता अपने भाई से बिल्कुल विपरीत थी। वह अपने माता-पिता का बहुत आदर करती थी। उनके हरेक काम में हाथ बंटाती थी। हमेशा यही कोशिश करती थी कि वह ऐसा क्या काम करे, जिससे माता-पिता को खुशी मिले। ऐसे किसी काम के बारे में तो वह सोचती भी नहीं थी, जिससे उन्हें तकलीफ पहुंचे। कहने को तो वह उनकी बेटी थी, लेकिन बेटे से कम नहीं थी। कक्षा में भी वह प्रथम स्थान प्राप्त करती थी। स्कूल में पढ़ाई के साथ वह हर खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी आगे थी। ऐसे ही दिन गुजर गए। समय के साथ सुमिता जवान दिखने लगी। स्कूल में सबसे ज्यादा अंक लेकर उसने दसवीं कक्षा की परीक्षा पास की थी।

सुमिता ने पिता के सामने याचना की-पिता जी मुझे 11वीं कक्षा में दाखिला दिला दो।

पिता ने कहा-मैं तुमसे बहुत स्नेह करता हूँ। लेकिन आगे पढ़ने की इजाजत नहीं दे सकता।

सुमिता के पढ़ने की बात सुनकर आलोक अंदर से बाहर आ गया और तरह-तरह की बातें करनी शुरू कर दी। कहने लगा- अरे आगे पढ़कर क्या करेगी। थोड़े ही तुम्हें कलक्टर बनना है। तुम चिट्ठी-पत्र पढ़ने लायक तो हो ही गई हो। अब घर में रह कर रोटियां पकाना सीखो। आखिर काम तो रोटियाँ ही आएंगी। तुम्हें नहीं पता कि अगर तुमने घर की दहलीज को पार किया तो समाज के लोग ना जाने कैसी-कैसी बातें बनाएंगे। इससे तो घर में ही भला।

बेचारी सुमिता की एक ना चली। मानो एक पल के लिए तो उसकी सारी दुनिया ही उजड़ गई हो। उसके सारे सपने धरे के धरे रह गए। वह एक जिंदा लाश बन कर रह गई।

कुछ दिन बीते और सगे-संबंधी, रिश्तेदारों ने कहना शुरू कर दिया कि लड़की जवान हो चली है। शादी नहीं करनी क्या। घर वालों ने भी रिश्ता ढूंढना शुरू कर दिया। आखिर में, एक वर सुमिता के लिए ढूंढा और उसका विवाह कर दिया गया। ना चाहते हुए भी सुमिता ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। शुरू-शुरू के थोड़े से दिन सुख से बीते तो उसने सोचा कि वह अपने पति सुशील से अपनी पढ़ाई के बारे में बात करेगी।

ससुराल में उसे पता चला कि उसका पति एक नंबर का अय्याश और शराबी है। उसके मन में जो उम्मीद जगी थी, वह भी दब गई। घर में खाने के लाले पड़ गए। उधर मायके में उसका भाई भी अपने माता-पिता को रोटी देने के लिए तैयार नहीं था। उसने अपने माता-पिता को मार-पीटकर घर से बाहर निकाल दिया। चाहती तो वह यह थी कि अपने माता-पिता को अपने साथ अपने ससुराल ले आए पर उसका शराबी पति इस बात के लिए कहां तैयार होने वाला था। यह बात वह भली-भांति जानती थी। उसने अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़ दिया। समय-समय पर उनकी खबर लेती रहती। इधर नशे की वजह से उसका पति बहुत बीमार रहने लगा और जल्द ही मृत्यु का शिकार हो गया।

अब सुमिता को अपने बच्चों का पालन-पोषण करना था। इसलिए वह काम की तलाश में इधर-उधर भटकने लगी। वह घर से सुबह निकलती थी और थकी-हारी शाम को आती। वह यही सोचती रहती थी कि अगर कहीं कोई काम नहीं मिला तो क्या होगा। काम मिल जाए तो वह अपने माँ-बाप को अपने घर ले आएगी और अपने दोनों बच्चों को किसी अच्छे स्कूल में पढ़ाएगी।

आखिर वह एक साहुकार के यहां काम करने लगी। तो लोगों की बुरी नज़र ने उसका जीना हराम कर दिया। उसने सोचा कि किसी सुरक्षित जगह पर काम करना अच्छा होगा। एक कार्यालय में नौकरियां निकली, लेकिन उसके लिए बारहवीं जरूरी थी। यह मौका भी हाथ से निकल गया। उसे कोई काम नहीं मिल रहा था। जब उसके माता-पिता को ये सब पता चला तो वे सुमिता को आगे नहीं पढ़ाने के फैसले पर पछतावा कर रहे थे।

(कक्षा-बारहवीं, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, पटहेड़ा ज़िला-करनाल।)

रंगकर्म व सिनेमा में महिलाएं

दुष्यन्त

रंगकर्म व सिनेमा में महिलाएं विषय पर शोध का मतलब रंगकर्म व सिनेमा को महिलावादी नजरिये से देखना या दिखाना कदापि नहीं है। इसका मतलब महिला एवं पुरूष के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी नहीं है। महिला, सदियों से एक आसान शिकार की तरह शोषित की जाती रही है। घर परिवार से लेकर समाज एवं राष्ट्र तक के संसाधन उसकी पहुंच से दूर हैं। निम्नजातिय, निम्नवर्णीय एवं कमजोर समझी जाने वाली महिला को केवल काम और 'काम' का पर्याय माना गया है। उसका पूरा व्यक्तित्व पूरे फलक में देखा ही नहीं गया है। किंवदन्तियों, कथाओं, कहानियों, भोग-विलासिता एवं सौन्दर्य में ढाला गया है। जिसे चतुर नारी, अर्धांगिनी, त्रिया चरित्र, धर्मयुक्त पत्नी, सौभाग्यवती, पुत्र जननी, गृहणी, ममतामयी, देवी, शक्ति के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

सदियों से पितृसत्ता, लिंग, जाति, वर्ण, धर्म, वर्ग से शोषित होते हुए असमानता ने महिला की देखने, सोचने, समझने, परखने वाली इन्द्रियों को काफी प्रभावित किया है। वंशानुगत हीन एवं अभावग्रस्त जीवन जीने वाली महिलाओं का कला, संस्कृति, समाज के साथ अलग तरह का संबध बना। इसी अभाव एवं हाशिए पर बिताए समय से महिला ने विश्लेषण, परिपक्वता एवं संवेदनशीलता का गुण अर्जित किया है। जिस कारण चीजों को देखने व उन्हें परिभाषित करने की भिन्न दृष्टि ही उसे रंगकर्म व सिनेमा में नई भाषा दिलाती है। उसके मौलिक एवं व्यवसायिक स्वभाव को, काम करने के तरीके को, प्रणाली को, टैक्स्ट की अन्तर्वस्तु एवं अनलिखे, अनकहे वाक्यों की गहराई को नई जुबान देता है।

इसलिए ऐतिहासिक संदर्भो में महिलाओं की रंगकर्म व सिनेमा में संघर्षमय यात्रा, उसकी धीरे-धीरे बनती बिगड़ती जगह, सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पहलुओं का विश्लेषण। विभिन्न महिला रंगकर्मियों की रंग भाषा पर चर्चा, विश्लेषण इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

फर्स्ट एक्ट-रंगकर्म व सिनेमा में महिलाएं

महिलाओं का रंगकर्म में आना ही कई तरह के सवाल, अनेकों पक्ष-विपक्ष और आलोचनाएं पैदा करता रहा है। मसलन थियेटर व सिनेमा में महिला की जरूरत, उसका आगमन, उसकी स्थिति, ऐसे किसी भी बिन्दु पर बात करें तो कई पक्ष सामने आ खड़े होंगे। एक पक्ष तो ऐसा होगा कि जो महिला एवं पुरुष को आमने-सामने लाकर उनके बीच तुलनात्मक अध्ययन करने लगेगा तो वहीं दूसरा पक्ष समाज एवं नैतिकता की दुहाई देने लगेगा तो वहीं अन्य महिलावादिता का पक्षधर होगा। ऐसे में महिला द्वारा साक्षात रंगकर्म तो कहीं पीछे छूट जाता है और केवल महिला अकेली कटघरे में खड़ी नजर आती है। रंगकर्म में महिला का आना और फिर तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी बने रहने पर बात किये बगैर मात्र कलात्मक पक्ष पर बात करना उनके संघर्षों को सामने नहीं ला पाना ही होगा। ऐसे में रगंकर्म में महिलाओं के सामाजिक, राजनैतिक पहलुओं पर भी चर्चा होनी स्वाभाविक है।

नई भाषा की खोज में

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते महिला रंगकर्मियों ने रगंकर्म को नए अर्थ देने शुरू कर दिए। ये वो वक्त था जब रंगबाजार में एक बड़ी बहस के तौर पर वीमेन थियेटर ने अपने कई आलोचक पैदा कर लिए थे। बहुत सी महिला रंगकर्मियों ने रंगकर्म की नई भाषा, नई शैली, नए फोर्म अपने अनुभव से अख्तियार किए। उन्होंने नई जगह व नई जमीन से नये विषय उठाए और वो भी पूरे के साथ। महिला से जुड़ा यथार्थ, बड़े फलक के साथ उठा हुआ नजर आता जिसमें महिला चरित्र एवं महिला अभिनेत्री दोनों अपने पीछे व अपने अन्दर पूरे जीवन की यात्राओं को समेटे हुए दिखते। उदाहरणत: आषाढ़ का एक दिन, आधे-अधूरे नाटक को हजारों बार खेला गया है। सभी निर्देशकों ने बारम्बार नया करने की तो कोशिश की है लेकिन जब महिला निर्देशकों ने इसे उठाया तो इन्हीं नाटकों का टैक्सचर, ट्रीटमैन्ट, नाटक

को उठाने की जगह बिलकुल बदल गई। अन्धा युग जैसा नाटक जिसमें केवल एक ही महिला पात्र 'द्रोपदी' के कारण पूरे नाटक की रंगत बदल जाती है। नाटक युद्ध, विभीषिका से बदलकर मानवीय संवेदना एवं ईश्वर को ललकारने के रूप में प्रतिभाषित हो जाता है और दर्शकों का पक्ष विपक्ष में बदलने लग जाता है।

तीन-चार दशकों में अनेकों महिला रंगकर्मियों ने अपनी-अपनी रंगभाषाएं तो अर्जित की ही हैं बल्कि रंगकर्म के अर्थ ही बदल डाले हैं। इन महिलाओं में बड़ी संख्या ऐसी है जो स्वयं अपने संघर्षों के बल पर अपनी जगह बना पाई। पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक माहौल में महिलाओं द्वारा रंगकर्म को चुनना ही एक बड़ी चीज है। ये इस बात से चिन्हित हो जाता है कि रंगकर्म को चुनने वाली महिलाओं को ओच्छी नजरों से देखा जाता था। जिसकी तुलना वेश्यावृति से कर दी जाती थी। शुरूआती बंगाल थियेटर की महिला रंगकर्मियों ने ये कड़वे स्वाद ज्यादा चखे हैं। बंगाल का भद्र समाज और महाराष्ट्र का मराठी मानुख दोनों ने खूब अग्नि परीक्षाएं ली हैं और ये परीक्षाएं आज पूरा भारत ले रहा है।

नौटंकी की गुलाबबाई यूं ही प्रकट नहीं हो गई थी, पारसी रंगमंच की कन्याएं यूं ही हाशिए पर नहीं चली गई। आज जो फसल सामने खड़ी है उससे पूर्व यहां कभी बंजर जमीन हुआ करती थी और उस जमीन को निखारने का काम हजारों नामी-बेनामी महिलाएं अपने कला संघर्षों के बल पर कर पाई है। और ये अन्तहीन संघर्ष अब भी चालू है।

हालांकि 20वीं सदी के इण्डियन थियेटर में अभिनेता एवं निर्देशक के तौर पर महिलाओं का आगमन काफी तेजी से बढ़ा है लेकिन रंग लेखिका के तौर पर देखें तो अभी खालीपन दिखाई देता है। इस क्षेत्र में अभी भी पुरुष लेखकों का ही वर्चस्व है। हालांकि महिलाओं ने कवियित्री, उपन्यासकार, साहित्यिक आलोचक, कहानीकार के तौर पर भी जगह बनाई है। ब्रिटिश समय में तो एक तरह से तमाम रंगकर्मीय क्रियाकलापों अभिनय, निर्देशन, मैनेजमैंट, संचालन सभी में पुरुषों का शासन रहा है। उस वक्त अभिनेत्रियों के स्थान पर फीमेल इम्परसोनेटर (महिला पात्र निभाने वाले पुरुषों) ने अपनी भूमिका अदा की।

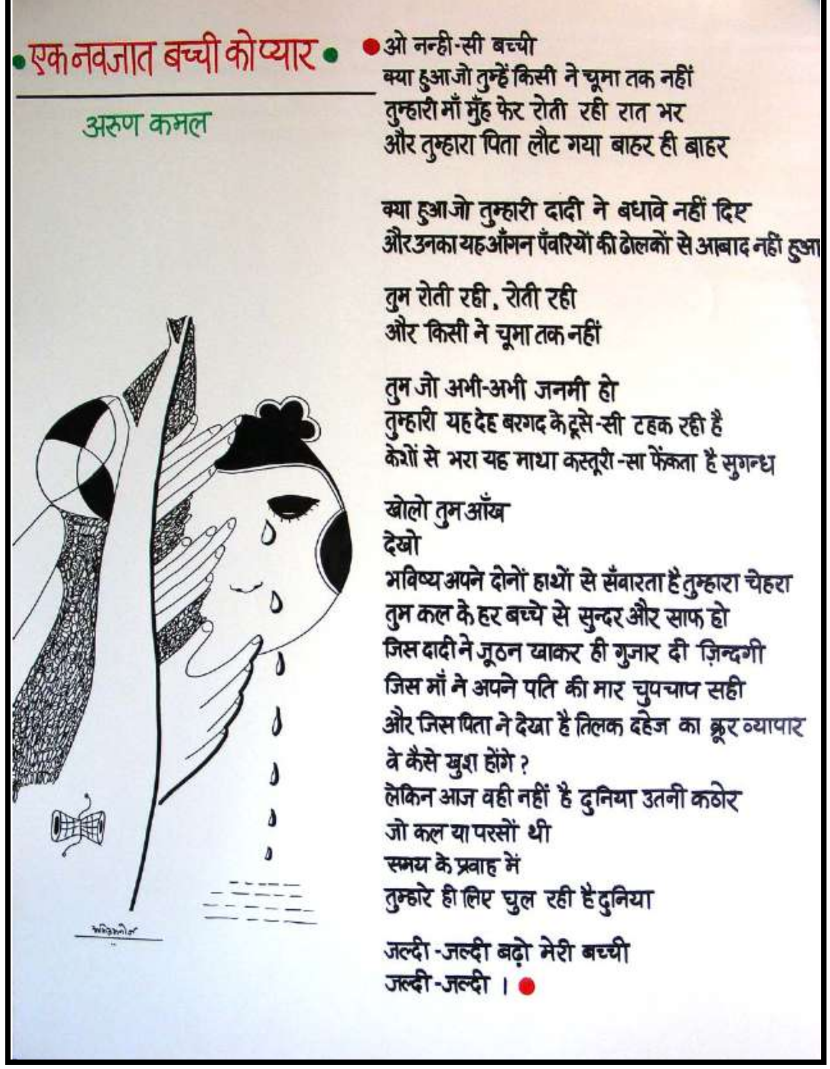
फीमेल इम्परसोनेटर का योगदान सांग, स्वांग, ख्याल, पारसी, बंगाली, मराठी शैलियों में बेजोड़ रहा। हालांकि एक हिस्सा फीमेल एक्ट को अश्लीलता व ओछेपन के साथ केवल मार्केट डिमांड पर निर्माताओं- मालिकों के लिए पूंजी कमाने का माध्यम बनते हुए महिला की भ्रमित छवि फैलाने का वाहक बन गया। ऐसा चाहकर उन्होंने किया होगा ऐसा कहना उचित नहीं लेकिन स्क्रिप्ट से लेकर पूरी प्रस्तुति में ऐसा होने लगा था। दूसरी तरफ चूंकि महिला पात्र को निभाना उनका पेशा बन चुका था सो जब महिला कलाकारों का आगमन हुआ तो उसे और उसकी कला के वास्तविक एवं सहज सौंदर्यात्मक पक्ष को स्वीकार भी नहीं कर पा रहे थे ऐसे में महिला कलाकारों को वो अपने पेशे का शत्रु भी मानने लगे थे।

नौटंकी शैली इसका आधुनिक उदाहरण है इस शैली में पूर्व में जहां फीमेल इम्परसोनेटर काम करते थे धीरे-धीरे मंडलियों- कम्पनियों में प्रतियोगिता स्वरूप महिला कलाकारों का आगमन नौटंकी में हुआ। लेकिन उनके स्वाभाविक नृत्य , संवाद अदायगी, रहन-सहन पर पूर्ववत छवि को ओढ़ने पर ही उन्हें दर्शकों के द्वारा स्वीकार किया गया। आखिर एक वास्तविक महिला कलाकार को अवास्तविक एवं ऑबजैक्टिव ईमेज से सत्यापित होना पड़ा था।

आधुनिक रंगमंच के बनते हुए स्वरूप में महिलाओं के विभिन्न वर्ग से जुड़े होना भी मायने रखता था। निम्न वर्ग की महिला अथवा उच्चवर्गीय महिला या फिर मध्यमवर्गीय। इन सबके लिए संघर्ष के मायने बिलकुल भिन्न थे। चूंकि पितृसत्ता एवं पूंजी का मुख्य वाहक उच्चवर्ग होता है ऐसे में उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए आधुनिक एवं अधिक शिक्षित होने के बावजूद भी रंगकर्म के द्वार अपेक्षाकृत निम्न एवं मध्यम वर्ग के लिए ज्यादा बंद कर दिए गए । लेकिन ऐसा न था कि मध्यम वर्ग के भद्र समाज ने अपने रास्ते रंगकर्म के लिए खोल दिए बल्कि उनके सेठ, साहुकार, ब्राहमणवादी समाज ने अपने व्यवसायिक पूंजीवादी निहितार्थों के कारण रंगमंच की कुछ खिड़कियों को जरूर पारदर्शी बना डाला था। ऐसे में कम्पनी थियेटर ने मुनाफे के लिए निम्नवर्गीय एवं निम्न वर्णीय महिलाओं को रंगमण्डलियों में स्थान देना आरम्भ कर दिया, लेकिन इससे पूर्व में महिला के शरीर एवं फीमेल सेक्स को इस कद्र उपभोग्य या मंनोरंजक भर बना चुके थे कि स्वयं महिला के सौन्दर्य को रंगकर्म में बने रहना ज्यादा संघर्षशील था। महिला की इमेज काफी हद तक भ्रमित हो चुकी थी। ऐसे में जब महिला रंगमंच पर आई तो लोग वास्तविक महिला से ज्यादा उसकी भ्रमित इमेज के लिए अधिक डिमाण्ड करते जिस कारण लड़कियों, महिलाओं को अभिनय के स्वाभाविक सौन्दर्यात्मक, कलात्मक पहलू को छोड़कर एक हद

तक अश्लील और छदम कलाकारी को निभाना पड़ता। हांलाकि ऐसे में बालगन्धर्व, जयशंकर सुन्दरी इत्यादि फीमेल इम्परसोनेटर ने नए सौन्दर्य का भी निर्माण किया व नटी विनोदनी जैसी शुरूआती बंगाली रंग महिलाओं ने नये रास्ते अख्तियार किए और महिलाओं के लिए नई जमीन बनाने का काम किया। प्रसंगवश यहां ये उल्लेख करना जरूरी है कि सफलतापूर्वक महिला पात्र निभाने वाले पुरुषों की संख्या काफी कम रही है और जिनके अभिनय से महिलाओं की छवि को कोई नुकसान भी न हुआ हो। जयशंकर सुन्दरी के बारे में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। लोग पहचान नहीं पाते थे कि वो आदमी है या औरत। जिस रंग एवं डिजाईन के कपड़े, साड़ियां ये पहनकर स्टेज पर उतरते वैसा ही फैशन बन जाता। उनके नाम से साड़ियां बिकतीं। बल्कि हेयर स्टाईल तक मार्केट में फैशन के तौर पर दिखाई देने लगते।

इस तरह फीमेल इम्परसोनेटर की लोक रंगकलाओं में बहुस्तरीय भूमिका है जिसकी एक पक्ष पर सराहना बनती है तो दूसरे पक्ष पर आलोचना।



महिला, वर्ग, नैतिकता

चूंकि महिला का मंच पर नुमाइशगी की तरह आना आर्दशवादी मध्यवर्ग के लिए नैतिक प्रश्न था। सम्मानजनक जीवन की अवधारणा, कला और पूंजी के बीच बड़ा सवाल बनकर उभर रही थी इस तरह भारतीय समाज आदिम मन्दिर में देवदासी नृत्य कला को स्वीकारता तो कभी लोक एवं अर्धशास्त्रीय लोककलाओं जैसे यक्षगान, कृष्णलीला, रामलीला, भवाई, जात्रा इत्यादि से महिलाओं को बेदखल कर देता। हालांकि नौटंकी, बंगाली, मराठी, पारसी रंगमंच पर महिला शरीर के अंग प्रत्यंगों को तो स्वीकारता लेकिन स्वयं महिला को ही नकारता। वहीं फिर अपनी आर्थिक एवं व्यैक्तिक स्वार्थों के फलस्वरूप उसे रंगमंच पर गले लगाता। निष्कर्षत: महिला की कभी स्वीकार्य कभी अस्वीकार्यता की ये जमीन ऐतिहासिक एवं सार्वभौमिक है जिसे अभी भी स्पष्ट होना बाकी है।

इसी तरह से बंगाल की भांति महाराष्ट्र में भी ऐसी ही कुछ बहसें चर्चा में थी। 20वीं सदी की शुरूआत में ही ये बहस छिड़ी कि क्या रंगमंच में कुलीन घराने की औरतों को रंगकर्म में लाया जाए? या नहीं। समाचार पत्र-पत्रिकाएं सब बहस का हिस्सा बन चुके थे। कई पत्रिकाओं ने इस विषय को लेकर प्रश्नावली तक छाप डाली और लोगों से तर्क-वितर्क आमन्त्रित किए। हांलाकि ये सब झूठी कला के विकास और नैतिकता के नाम पर किया जा रहा था। समाज का बड़ा हिस्सा महिलाओं के रंगकर्म में आने को लेकर और उससे प्रस्तुति, अभिनय इत्यादि पर सकारात्मक प्रभाव को लेकर आश्वस्त थे लेकिन साथ ही उनमें से बड़ा हिस्सा कुलीन महिलाओं के पक्ष पर स्पष्टत: विरोध में था।

लोक रंग शैलियां ख्याल, माच,

नौटंकी, तमाशा इत्यादि तमाम लोककलाओं में महिलाओं का निषेध था। इनमें पुरुष पात्र ही महिला कलाकारों की भूमिका किया करते थे। माच के अभिनेताओं को विशेषकर स्त्री कलाकारों को विशेष ढंग से सजाया जाता। माच में स्त्री चरित्रों का अभिनय भी पुरुष कलाकार ही करते हैं। इसके लिए वो रेशमी गोटेदार साड़ी और रेशम की ही कंचुकी पहनकर घूंघट निकाल लेते हैं। एक समय था जब नाच्या का चरित्र भी पुरुष पात्र ही निभाते थे किन्तु अब अनेक तमाशा मंडलियों में 'नाच्या' का चरित्र करने वाली स्त्री पात्र उपलब्ध हैं और अत्यंत सफल हो रही हैं। तमाशा की भांति ही गुजरात की लोकरंग शैली भवाई में भी स्त्री वेशों में स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते हैं। पुरुष जब कंचुकी पहन लेते हैं तो वे स्त्री पात्र हो जाते हैं जिन्हें कांचलिया कहा जाता है। इनके अभिनय में अश्लीलता का प्राचुर्य होता है। यही कारण है कि शिष्ट समाज में भवाई प्रतिष्ठित न हो सका। इन तमाम लोकरंग विधाओं में नौटंकी भी ऐसी ही लोकरंग विधा है जिसमें महिलाओं से पहले पुरुष ही स्त्री पात्र निभाते थे।

महिलाओं का लोकरंगमंच में आना हर विद्वान, हर कलाकार ने अपने ही तरीके से लिया। किसी ने उनके आने का स्वागत किया तो किसी ने आलोचना, किसी ने उनको केवल उपभोग्य वस्तु ही बना डाला। लोककलाओं या व्यवसायिक रंगकर्म दोनों में ही महिलाओं का आना अत्याधिक संघर्षों से भरा दिखाई पड़ता है। व्यवसायिक पूंजी ने उनके आने की जगह तो बना दी, लेकिन उसमें उनकी सम्मानजनक कला की जगह कुछ गौण थी। पुरुषों ने स्त्री पात्रों को निभाया तो उन्हें फलस्वरूप वाहवाही मिली। और जब स्त्रियों ने ही उन्हीं पात्रों को बखूबी निभाया तो वाहवाही कम उपभोग्य वस्तु की भांति अधिक देखा गया। कुछ ने फूल बरसाए, कुछ ने दुतकारा लेकिन उन औरतों ने हार न मानी और कला की पर्याय बनी।

सदियों से रंग कला में प्रतिबंधित महिलाओं की आवाज 19 वीं सदी में आकार लेने लगी। धीरे-धीरे वो जगह पैदा होने लगी जिसमें स्त्री की वाजिब एवं मुक्कमल अस्मिता एक कलाकार के तौर पर दिखाई देने लगी।

महिला नाटककार के तौर पर

स्वतन्त्रता पूर्व का समय रंगकर्म में महिलाओं के लिए बीजारोपण की भांति रहा वहीं स्वतन्त्रता उपरांत संवैधानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक महौल में बदलाव के कारण महिलाओं का आगमन बढ़ा। अभिनेत्रियों, निर्देशकों, साहित्यकारों की संख्या में दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी भी हुई। हालांकि महिला नाटककारों के रूप में अभी तक बड़ी जगह नहीं बन पाई है। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के साहित्य संसार पर अभी भी पुरुष साहित्यकारों का ही वर्चस्व स्पष्टतः दिखाई देता है। और इसमें भी अगर नाटककारों की बात की जाए तो हाल ही के तीन दशकों को छोड़ दिया जाए तो मॉडर्न थियेटर में महिला नाटककारों का कोई लम्बा इतिहास नहीं दिखाई पड़ता और यह तथ्य पूरे विश्व के स्तर पर भी दिखाई पड़ता है। प्राचीन ग्रीक, रोम, संस्कृत युग के क्लासिक नाट्य साहित्य में किसी प्रमुख महिला नाटककार का नाम भी भी दिखाई देता। मुख्य धारा के रंगमंच में तो महिलाएं अभी भी अल्पसंख्यक ही हैं।

भारत जैसे देश में महिला रंगकर्म एवं महिला नाटककार को स्थापित न होने देने के पीछे लिंग आधारित समाज की व्यवस्था, पुरुषवादी समाज का होना साफ तौर पर दिखाई देता है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में पिछले एक सौ पचास वर्षों के दौरान अंग्रेजी भाषा में लगभग 30 नाटक ही महिला नाटककारों द्वारा लिखे गए। इस तरह शब्द माध्यम में सर्वथा महिलाओं की अनुपस्थिति ही रही है। एक हजार चौरासीवें की मां के उपरांत महाश्वेता देवी कृत कहानियों का अंग्रजी में नाट्य रूपान्तरण आए अभी एक दशक से भी कम समय हुआ है। वहीं हिन्दी में शांता गांधी, त्रिपुरारी शर्मा, उषा गांगुली, नादिरा जहीर बब्बर के नाम हाल ही के दर्शकों में सामने आए हैं। प्रगतिशील नाटककारों में कालिंदी देशपाण्डे जैसी अग्रणी महिलाएं दिखाई देने लगी हैं।

समसामयिक भारतीय रंगमंच में अभिनेत्री के तौर पर महिलाओं के आगमन के बाद रंगकर्म के अन्य क्षेत्र जैसे निर्देशन, डिजाईनिंग, वस्त्र-विन्यास, रूप-सज्जा, सेट निमार्ण, प्रबंधन इत्यादि में पिछले तीन-चार दशकों में ही एक सक्रिय भागीदारी बनी है। इससे पूर्व यह लगभग नगण्य ही रही। सेट-निर्माण, प्रबंधन जैसे क्षेत्र तो अभी भी अपेक्षाकृत अनछुए ही हैं। निर्देशक के तौर पर बराबरी का स्पेस अभी भी नहीं बन पाया है। हां वस्त्र-विन्यास जैसे कार्य व्यवसायिक तौर पर पुरुषों की भागीदारी कम होने के कारण व महिला अभिरुचि एवं सिद्धहस्तता के कारण उस स्पेस को महिलाओं ने जरूर अर्जित किया है।

संघर्षों का इतिहास

हर दौर में युवा लड़कियों का रंगकर्म में आना अत्यधिक मुश्किल प्रक्रिया रही है जिसे वो पितृसत्ता, विवाह संस्था, सामाजिक रीति रिवाजों और स्वयं से लड़ते हुए संघर्ष करते हुए अर्जित कर पाती हैं। और फिर ये संघर्ष केवल रंगकर्म में आने तक नहीं बल्कि वहां अन्य रंगकर्मियों के साथ काम करते हुए पुरुषवाद से भी रोजाना संघर्ष करना पड़ता है और फिर अन्त में जिनके लिए रंगकर्म किया जाता है बार-बार उन्हीं से फब्तियां, छेड़खानी जैसी परेशानियों से दिन-रात जूझना पड़ता है। ऐसे अनेकों मामले सामने आए हैं जिनमें रंगमण्डलियों में ही महिला कलाकारों को लिंग आधारित भेदभाव का शिकार बनाया गया। युवा महिलाओं के लिए रंगमंच में आना और फिर बने रहना किसी युद्ध करने जैसा है।

इस तरह गृहिणी होकर शौकिया रंगकर्म करना या नौकरी पेशा करते हुए रंगकर्म करना अभी बहुत सी महिलाओं के लिए सपना भर है। महिलाओं के लिए शौकिया या व्यवसायिक तौर पर रंगकर्म करने की स्वीकार्यता पारिवारिक एवं सामाजिक ढांचों में बन नहीं पाई है।

शहरी रंगमंच को छोड़ भी दें तो ग्रामीण रंगकर्म में महिलाओं की संख्या नगण्य है। इडियट बोक्स पर जहां महिला लगभग उपभोग की वस्तु भर बनायी जा रही है वहीं इंटैलीजैंट बोक्स पर महिला ने अभी अपने कदम रखे हैं। महिलाओं का रंगकर्म व सिनेमा नई भाषा नए टैक्सचर, नए स्वरूप और नए प्रयागों के साथ सामने आया है।

(प्राध्यापक, अभिनय, युनिवर्सिटी आर्फ परफॉरमिंग एण्ड विजुअल आर्टस, हरियाणा)

मो: 98962-38278

राजेश दलाल की रागनी

तेरे होण की सुणकै एण्डी तुफान सिंह भी हाय्ल पड़े
बेटी देख या के बणी ये तै मिलकै मारण च्याल पड़े

अल्ट्रा सांउड मैं देखी तेरी करी जांच दे-ले कै
काबू कर्‌या डाक्टर गांधी-छाप लक्षमी देकै
बैठ गई मैं पूछ-पूछ आंसू च्यारूं पल्ले भे कै
पढ़्या लिख्या कुणबा दीखै ना अकल किसे गधे कै
देवी सरस्वती कहै पूजै पर मौकै बोगस ख्याल पड़े

जो होज्या होज्या तै होज्या आगै बढण की भी बाण मनै
जालिम कुणबे खानदान अर गाम-समाज की जाण मनै
तू आती तै संकट ल्याती न्यू भी पक्की पिछाण मनै
बड्‌डी बेबे तेरी हुई घरके होगे थे ताण मनै
भिड़ा-भिड़ाकै मारी थी मैं पाट्टे साळ मैं बाळ पड़े

हो जाता जै जन्म तेरा ना मिलती सुख की सांस तनै
भाई तेरे हिस्से का चरे जा ना मिलै बावळी धांस तनै
छोर्‌यां की तू करती रीस तै मिलती गाळ पचास तनै
हाड-पैल में खपती तूं ये कित कहै थे शाबास तनै
भेद-भाव के षडयंत्र घरके कदेए तै ढाळ पड़ै

जो हमनै भोग्या वो दोगला संविधान तनै दे देते
आजादी-अधिकार छिन कै कन्यादान तनै दे देते
जोड़-तोड़ ला पति कहण नै श्रीमान तनै दे देते
अगले घर जां मिलै तावळे श्मशान तनै दे देते
रोज रंगे अखबार खून मैं ल्या गिणवाद्‌यूं मिसाल पड़े

कहै राजेश छुपाकै नै कदे सरेआम मार जाणै
मन की मन मैं रहज्या सारी सुखाकै चाम मार जाणै
बच्ची-बुढ्ढी एकै बाढ़्यै नीत-हराम मार जाणै
वफादार पितृसता के घोट तमाम मार जाणै
जवाब द्‌यो नै इस गाणे का स्यामी खुले सवाल पड़े

सम्पर्क : 9050481121

रपट

हरियाणा में दलित स्त्रियों के साथ यौनिक हिंसा समीक्षात्मक विश्लेषण

सुमित सौरभ

पिछले ढाई दशक में देश की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक व्यवस्था में तीव्र बदलाव हुए हैं। इस दौरान बदलते सामाजिक सोपान में अपनी पूर्व स्थिति बनाए रखने हेतु वर्चस्वशाली जातियों द्वारा दलित स्त्रियों के शरीर को बतौर औजार इस्तेमाल करने की प्रवृति भी बढ़ी है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2009 को छोड़ कर पिछले दस वर्षों के दौरान देशभर में दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटना में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। सम्पूर्ण भारत की तुलना में हरियाणा राज्य में दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटना ज्यादा घटित हुई हैं।

हरियाणा में जातिय वर्चस्व को बरकरार रखने हेतु दलित स्त्रियों के साथ होने वाले बलात्कार तथा अन्य यौनिक हिंसाएं एवं इस दौरान 'मर्दानगी' तथा हिंसा का प्रदर्शन दलित स्त्रियों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार तथा उनके लिए घृणास्पद भाषा का प्रयोग एवं जाति, वर्ग एवं लैंगिक-सामाजिक श्रेणीबद्धता को उचित ठहराने के लिए कुछ खास वर्चस्वशाली जातिय समूहों द्वारा किए जा रहे विभिन्न गैरकानूनी प्रयासों ने पूरे देश का ध्यान हरियाणा में दलित स्त्रियों के साथ होने वाली यौनिक हिंसा की घटना की तरफ आकर्षित किया है।

उपरोक्त स्थिति में, विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं तथा जन संगठनों द्वारा हरियाणा में दलित स्त्रियों के साथ हिंसा की प्रवृति का अध्ययन किया गया है। इनसे निपटने के उपायों की चर्चा की गई है। उदाहरण के लिए, 'सोसायटी फॉर पार्टीसिपेटरी रिसर्च इन एशिया' (प्रिया) द्वारा 'द एशिया फाउण्डेशन' के आर्थिक सहयोग से हरियाणा में दलित महिलाओं के साथ हिंसा की घटनाओं का अध्ययन (सोनीपत जिला को आधार बना कर) किया गया है। इसी तरह अन्य संस्थाओं द्वारा भी दलित महिलाओं के साथ यौनिक हिंसाओं की घटना का अध्ययन किया गया है। 2a, 2b इन विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि अकादमिक प्रतिबद्धता तथा जनतांत्रिक दृष्टि के अभाव में ये विभिन्न अध्ययन दलित स्त्रियों के साथ होने वाली यौनिक हिंसा की बढ़ती घटना के जिम्मेवार कारकों की पहचान करने में असफल रहे हैं। हरियाणा के विशेष संदर्भ में जाति-वर्ग तथा लिंग के बीच के अंत:संबंध तथा इनका दलित स्त्रियों के साथ यौनिक हिंसा की बढ़ती घटना के साथ संबंध स्थापित करने में प्राय: विफल रहे हैं। विभिन्न अध्ययनों में नशाखोरी, आपसी रंजिश तथा प्रतिशोध की भावना

2014 में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

क्र.	अपराध	भारत	हरियाणा
1.	महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की कुल संख्या	337922	8974
2.	महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की दर	56.3	73
3.	बलात्कार	36735	1185
4.	सामूहिक बलात्कार	2346	230
5.	अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ बलात्कार	2233	227
6.	अपहरण एवं भगाने की घटना	30874	886
7.	दहेज हत्या	8455	293
8.	यौनिक उत्पीड़न	21938	599
9.	पीछा करने की घटना	4699	284
10.	घरेलू हिंसा	122877	3470

स्रोत : राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो -2015

को मुख्य कारक के बतौर चिन्हित किया गया है तथा दलित स्त्रियों के साथ यौनिक हिंसा को कम करने हेतु दलितों के बीच कानूनी जागरूकता, शिक्षा के प्रचार-प्रसार, उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत करने जैसे चलताऊ उपाय बताए गए हैं। दरअसल विभिन्न दानदाता संस्थाओं के आर्थिक सहयोग तथा सरकारी नीतियों के दायरे के अंतर्गत किए गए इन विभिन्न अध्ययनों की अपनी सीमाएं हैं। ऐसे विभिन्न अध्ययनों के दौरान दानदाता संस्थाओं के एजेंडे या सरकारी नीतियों से अलग हटकर जमीनी हकीकत को देख पाना प्राय: असंभव होता है।

इन विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं के अध्ययन से इतर, यौनिक हिंसा की शिकार स्त्रियों तथा उत्तरजीवियों के संगठन 'विमेन अगेन्सट सेक्सुअल वायलेन्स एंड स्टेट रिप्रेशन' (डब्ल्यू.एस.एस.) द्वारा हरियाणा में यौनिक हिंसा की शिकार दलित स्त्रियों के संबंध में वर्ष 2014 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है-'स्पीक, द ट्रूथ इज स्टील एलाइव: लैण्ड, कास्ट एंड विमेन इन हरियाणा।'

रिपोर्ट हरियाणा के सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के संदर्भ में दलित स्त्रियों के साथ यौनिक हिंसा की घटनाओं को व्याख्यायित करती है। इस दौरान यौनिक हिंसा की शिकार दलित स्त्रियों, उनके परिवार वालों तथा विभिन्न दलित जनतांत्रिक संगठनों द्वारा हिंसा की शिकार इन स्त्रियों के लिए न्याय की मांग हेतु किए जा रहे संघर्ष के दौरान उत्पन्न कठिनाइयों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट, स्त्री-आंदोलन, विभिन्न जनतांत्रिक संगठनों द्वारा राज्य के समक्ष कई प्रश्न भी रखते हैं, जिसमें एक प्रमुख प्रश्न है, यौनिक हिंसा की शिकार स्त्रियां किस तरह से एक अर्थपूर्ण जीवन जी पाएं?

जातिय घृणा से प्रभावित तथा जातिय वर्चस्व की स्थापना हेतु दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, हत्या तथा अन्य प्रकार की हिंसाएं, हरियाणा में आज उस स्तर तक पहुंच चुकी हैं कि सरकार द्वारा इन्हें जातिय घृणा से प्रभावित हिंसा मानने से इन्कार किया जाने लगा है। यही कारण है कि राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों में हरियाणा राज्य में वर्ष 2012 तथा 2013 के दौरान दलित महिलाओं के साथ जाति आधारित घृणा से प्रभावित बलात्कार की संख्या मात्र 15 तथा 14 दर्ज की गई है, जबकि इसके पूर्ववर्ती वर्षों में इनकी संख्या क्रमश:150, 131, 91, 99 तक रही थी। इन आंकड़ों की सत्यता पर 'मीडिया वॉय समूह' के दलित कार्यकर्त्ताओं द्वारा अक्तूबर 2012 में निर्मित मानचित्र '30 डेज इन ए रेप स्टेट' भी प्रश्न चिन्ह लगाती है। मानचित्र में हरियाणा के विभिन्न जिलों में एक माह में जाति आधारित घृणा के आधार पर दलित महिलाओं के साथ बलात्कार की कुल 19 घटनाओं को स्थान तथा अन्य विवरण समेत प्रदर्शित किया गया है।

रिपोर्ट में इस तथ्य पर चिंता जाहिर की गई है कि राजकीय तंत्र की स्थापना प्रत्येक नागरिक को भयमुक्त वातावरण मुहैया कराने हेतु की गई है। राजनैतिक, सामाजिक तथा जातिय विभिन्न दबावों में आकर राजकीय तंत्र यौनिक हिंसा की अभियुक्तों को सजा पाने से बचाने में सहायता प्रदान कर रहा है। रिपोर्ट विस्तार से उन राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों को चिन्हित तथा विश्लेषित करती है, जिसके कारण हाल के वर्षों में दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटना में बढ़ौतरी हुई है।

रिपोर्ट पढ़ते हुए जाति आधारित यौनिक हिंसा के संदर्भ में जो निराशाजनक मनोस्थिति बनती है, उसमें यौनिक हिंसा के शिकार स्त्रियों को न्याय दिलाने हेतु जनतांत्रिक मूल्यों के समर्थक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किए जा रहे विभिन्न प्रयासों का विश्लेषण सुकून प्रदान करता है।

संदर्भ :

1. ऐड्रेसिंग वायलेंस अंगेस्ट दलित विमेन, सोसायटी फॉर पार्टीसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (प्रिया), नई दिल्ली

2. अटैक ऑन दलित विमेन : ए पैटर्न ऑऊ इम्प्यूरिटी, हयूमन राइट वॉय नई दिल्ली

3. एट्रोसीटी एगेंस्ट दलित विमेन एंड ऐसेस टू जस्टिस ऐविडेन्स

सम्पर्क-88168-76224

औरत

एक लम्बी,
रहस्यमय चुप्पी के बाद
औरत ने
घर के दरवाजे खोले।
कुछ के खिल उठे चेहरे,
कुछ ने साध ली चुप्पी,
कुछ के दरकने लगे सीने,
कुछ ने ताबड़-तोड़
कर डाली प्रतिज्ञा
कि
उसे चुपचाप
अपने घर में ही
रहना होगा।

पंजाबी कविता अनु. किरण बंसल

विंडो शापिंग

-मनजीत टिवाना

लड़कियां शाम को सैर करती
दोस्ती की विंडो शॉपिंग के लिये निकल पड़ती हैं।
कोई लड़का सूट के प्रिंट की जैसा बढ़िया लगता है,
पर घटिया कपड़े की तरह जल्दी फट जाने वाला,
किसी का रंग भा जाता है
पर जल्दी ही बदरंग हो जाने वाला,
किसी के स्वभाव का टैक्सचर अच्छा लगता है
पर सिंथैटिक कपड़े के मानिंद साँस घोटने वाला,
कोई रेअर प्रिंट सा,
जिसके लिये सोचती रह जाती
इतने में कोई और खरीद ले जाता,
कोई सेल पर कौड़ियों के भाव बिकता,
कोई इम्पोरटिड पीस जैसा,
तो कोई चीनी-रोम,
कोई अमरीकन जार्जट,
तो कोई इंडियन प्योर कॉटन जैसा,
लडकियाँ शाम को सैर करती,
दोस्ती की विंडो शॉपिंग कर के,
रॉलकॉल तक अपने छोटे-छोटे बटुओं के भीतर
मन की रेजगारी सम्भाल कर रखती हुई,
हॉस्टल लौट आती हैं,
ये सोचती हुई कि
लड़के तो बस लड़के होते हैं,
माँ की टूटी चूड़ियों के
क्लाडीयोस्कोप में से दिखते अनगिनत नमूने से,
लड़के तो बस लड़के होते हैं,
नये-नये प्रिंट की मानिंद
जल्दी ही कॉमन हो जाने वाले,
और दोस्ती -
दोस्ती किसी सूफी फकीर का चोला,
जिस की फिटिंग का कोई नम्बर नहीं होता,
जो दीवानगी का फ्री साइज होता है,
जो तन के पैबंद चाहे न ढक सके,
पर मन का लिबास जरुर बन सकता है,
लड़कियां शाम को सैर करती हुई,
दोस्ती की विंडो शॉपिंग करके
रॉलकॉल तक अपने-अपने बटुओं को
सम्भाल कर रखती हुईं,
रोज की तरह हॉस्टल लौटती हैं। ■

अजूबा

- लाल सिंह दिल

औरत एक अजूबा है धरती का,
बाकी तो गिनती है सब।
जो आदिकाल से जीवन का अमृत देता है,
नित नये इस चित्र में अर्थ भरता है।
आदिकाल से ताक-ताक इसे न नैन थके।
ख्वाहिशें और गहरी हुईं।
लोग कहते हैं, बैल के सींगों पर टिकी है धरती।
मैं सहमत हूं,
पर मेरा अटल विश्वास है
कि अपने हाथ पर औरत ने
है धरती उठायी हुई।
इसीलिये तो है महक धरती की बदन जैसी,
इसीलिये तो लहरायें फसलें भांति चुनर की,
इसीलिये तो धरती पर पानी,
इतना निर्मल और ठंडा है।
इसीलिये रात चांदनी और खड़कते पत्ते
जैसे सितारों जड़ी चुनरी,
इसीलिये फूलों पर होंठो का भोलापन है,
तितलियों में नैनों की मस्ती,
धरती और औरत की पीड़ा कितनी एक है।
मेहनत के हिस्से में भूख है,
सितम के नैनों में अंगारे हैं,
धरती के नैनों में आंसू हैं,
औरत के नैनों में आंसू हैं,
इसीलिये सागर खारे हैं।
आज इसको गौरव प्यारे हैं,
आज इस के निकट तारे हैं,
औरत एक अजूबा है धरती का। ■

क्यूं मारे जा रहे हैं बेचारे बच्चे

इतिहासकार व समाजशास्त्री प्रेम चौधरी ने हरियाणा समाज के विभिन्न पहलुओं पर शोध किया है। उनके शोध ने अकादमिक जगत में भारी उद्वेलन पैदा किया है। यहां अमनदीप वशिष्ठ व रमणीक मोहन से हुए संवाद के कुछ अंश प्रस्तुत हैं-

अमनदीप वशिष्ठ : आपने उपनिवेशकालीन पंजाब पर शोध कार्य किया। इसके पीछे कोई विशेष योजना चिंतन था या...

प्रेम चौधरी : जिन दिनों मैं पी.एच.डी. कर रही थी, उन दिनों बड़े-बड़े व्यापक विषयों को लेकर कार्य करने का फैशन था। इसलिए मैंने ऐसे विषय को चुना जो हरियाणा से संबंधित था और इस पर कोई काम भी नहीं हुआ था। मेरे पास इससे संबंधित सामग्री भी काफी थी। मेरे पिताजी के पेपर, जाट गजट, पत्र थे, जो शायद किसी दूसरे छात्र के पास नहीं थे। इसीलिए क्षेत्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण, लेकिन ऐतिहासिक तौर पर उपेक्षित विषय को चुना।

अमनदीप वशिष्ठ : पिछले तीन दशकों से आप काम कर रही हैं। आप अपने काम को कैसे देखती हैं।

प्रेम चौधरी : सर छोटू राम पर काम करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से मेरा मजबूत आधार बन गया था। इसलिए वर्तमान में आना कोई मुश्किल नहीं था। हम जाट परिवार से हैं, मेरी दादी, परिवार के लोगों से बातें होती थी। वे अनेक कहानियां, कहावतें सुनाया करते थे। ये बात या वो बात कैसे पैदा हुई, इसके लिए सामाजिक इतिहास में जाना जरूरी था। मेरे परिवार के पास इस ज्ञान का भंडार था, इसका प्रयोग न करना तो अपराध ही होता।

मैं महसूस करती थी कि महिलाओं को ऐतिहासिक तौर पर पर्दे के पीछे धकेला गया है, उसे पूरी तरह कुचल दिया, लेकिन इसे न तो समझा गया और न इस पर लिखा ही गया। इसके सच को उद्घाटित करने की ललक बढ़ती ही गई। ये परखने के लिए औरतों की बदहाली के पुरुष कितने जिम्मेवार हैं, क्या इस स्थिति को पलटा जा सकता है। अपने समाज को समझने के लिए उसकी खामियों को समझना जरूरी है। इनको समझने से ही समस्याओं के समाधान निकलते हैं। मैं लगातार हरियाणा के समाज से जुड़ी रही, इसलिए इसमें आ रहे बदलावों को चिन्हित किया। मैंने जिस महिला से बात की थी, तो वह कह रही थी कि हमारे भाइयों ने हमारी शादी करवाई है, तो उनसे सम्पत्ति में हिस्सा मांगना उचित नहीं, लेकिन कुछ सालों के बाद उसी मोहल्ले की लड़कियों ने कहा वो शादी करवा रहे हैं, तो क्या हो गया? सभी पैसा खर्च करते हैं। इनकी भी तो इज्जत बढ़ती है। हम सम्पत्ति में अपना हिस्सा लेंगे। हरियाणा के समाज में हो रहे बदलावों से मैं अपने अध्ययन में भी बदलाव करती गई। ऐसा नहीं होता कि आपने एक बार समाज को समझ लिया और वो समझ स्थायी हो गई। समाज में हो रहे बदलावों को लगातार समझना जरूरी है।

इसके बाद ऑनर कीलिंग वगैरह हुई। इस पर मैंने लिखा। असल में इसे समझने की जरूरत थी, 'क्यूं मारे जा रहे हैं बेचारे बच्चे।' हरियाणा के समाज में भारी बदलाव हो रहे हैं। मुझे ये लगा कि औरतों की बजाए पुरुष बदलाव का विरोध कर रहे हैं।

अमनदीप वशिष्ठ : क्या पुरुष इसलिए बदलाव का विरोध कर रहे हैं कि पितृसत्तात्मक ढांचा उनके लिए अत्यधिक लाभकारी है। यदि ये ढांचा टूटता है तो उनके स्वार्थों पर लगाम लगेगी।

प्रेम चौधरी : हां, यहां पर पितृसत्ता की जकड़ तो बहुत ज्यादा है। पितृसत्तात्मक ढांचे की मजबूती का अर्थ है, उनकी सत्ता का रक्षा कवच। वे इस ढांचे को समाप्त करने वाले किसी बदलाव को बर्दाश्त करने को तैयार क्यों होंगे?

अमनदीप वशिष्ठ : आपने कहा कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को समझने के लिए इतिहास में जाना जरूरी है। वर्तमान समाज को समझने के लिए औपनिवेशिक पंजाब के अध्ययन से हम क्या सीख सकते हैं। कौन से मुख्य बिंदू

होंगे, जो वर्तमान के अंतर्विरोधों को समझने में मदद कर सकते हैं।

प्रेम चौधरी : मैं तो इतिहास की विद्यार्थी रही हूं। मुझे लगता है कि किसी भी चीज को समझने के लिए जरूरी है कि उसकी ठोस पृष्ठभूमि का ज्ञान होना जरूरी है। जैसे हरियाणा में ऑनर किलिंग होती है और अन्तर्जातीय विवाह का विरोध है उसका आधार तो पता चले। इसके लिए जाना पड़ेगा समाज में। पहले के समाज में क्या है और फिर ये समझना पड़ेगा कि इन बदलावों का विरोध क्यों हो रहा है। अपने समाज को समझने के लिए ये समझना जरूरी है कि उसमें बदलाव क्यों नहीं हुआ और अगर हो रहा है तो क्यों हो रहा है। इसे समझने के लिए फिर इतिहास में जाना पड़ेगा, नहीं तो एक पत्रकारिता-लेखन बनकर रह जाएगा।

अमनदीप वशिष्ठ : कहा जाता है कि हरित क्रांति से खेती के क्षेत्र में उछाल आया, लेकिन नौजवानों का खेती की ओर रूझान नहीं बढ़ा, बल्कि इसके विपरीत हुआ।

प्रेम चौधरी : : हरित क्रांति से बहुत ज्यादा बदलाव आए थे। खेती में गतिरोध था। हरित क्रांति से पैसा भी बना, लेकिन देखना होगा कि किस वर्ग ने लाभ कमाया। सबको इससे लाभ नहीं हुआ। हरित-क्रांति से भी खेती में बहुत अधिक आमदनी नहीं बढ़ी। विशेषकर युवाओं में ऐसे काम की ओर रूझान बढ़े, जिनमें बहुत ज्यादा आमदनी हो। हाड़ तोड़ मेहनत का काम होने के कारण इसमें रूचि कम होती गई। अब तो खेती से आमदनी और भी कम हो गई है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में तो समझा जाने लगा कि जमीन बेचो, इससे ज्यादा पैसा मिलता है।

अमनदीप वशिष्ठ : अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेज अधिकारियों की डायरियां, जिला गजट, सेटलमैंट रिपोर्ट, आर्थिक सर्वेक्षण आदि का अध्ययन करते हुए क्या ध्यान रखा जाना चाहिए, क्योंकि वे शासक भी थे और यूरोपियन भी थे। शासकीय तथा सांस्कृतिक पक्षपात तो जरूर होंगें।

प्रेम चौधरी : औपनिवेशक शासक अपने स्वार्थों के लिए लिख रहे थे। जब मैं पी.एच.डी. कर रही थी तो लंदन जाकर वहां के रिकार्ड देखे थे। जो अधिकारी मेरे पिता जी के साथ थे। मैंने उनसे भी संवाद/साक्षात्कार किया था। उनके दृष्टिकोण में बहुत अंतर था। जिला स्तर पर सरकारी रिकार्ड में और वास्तव में जो होता है, उसमें बहुत फर्क है। शोधार्थी को इसमें संतुलन करना सिखाया ही जाता है। वो स्वतः ही आ जाता है।

अमनदीप वशिष्ठ : क्या इस संबंध में आप कोई उदाहरण दे सकती है, जिनमें अध्ययन करते हुए 1947 के पूर्व के रिकार्ड और आपके जमीन पर वास्तविकता में बहुत अधिक अंतर लगा हो। शासकीय रिकार्ड और आपके अध्ययनों में अलग-अलग बातें हों।

प्रेम चौधरी : देखिए, बिल्कुल अलग तो नहीं हो सकती, क्योंकि वो भी उसी चीज पर टिप्पणी कर रहे हैं। जैसे कि लगान संग्रहण की बात लें। ब्रिटिश रिकार्ड ये तो बता देंगे कि इतना लगान एकत्रित किया, लेकिन जमीनी स्तर के रिकार्ड दिखाएंगे कि वास्तव में क्या हो रहा है। वहां पर फसल बरबाद हो गई थी, कितना मुश्किल हो गया था, अकाल की सी स्थिति थी। लोग क्या कर रहे थे वो सरकारी रिकार्ड में नहीं मिलेगी। लगान दिया या नहीं दिया, ये तो मिलेगा, लेकिन क्यों नहीं दिया, इसके कारणों में उनकी कोई रूचि नहीं थी। शोध करते हैं, तो ये स्वतः ही आते हैं। बात तो दोनों एक ही कर रहे हैं, लेकिन नजरिया अलग है, जो स्वाभाविक है।

अमनदीप वशिष्ठ : ब्रिटिश काल में लिखित रिकार्ड ब्रिटिश अधिकारियों, ब्रिटिश इतिहासकारों या कर अधिकारियों का है, जिसमें पक्षपात है। इसके समानान्तर मौखिक परम्परा है, आपने भी Veiled Women में मौखिक परम्परा का काफी इस्तेमाल किया है।

प्रेम चौधरी : मौखिक परंपरा में समाज की सच्चाई की झलक मिलती है जो सरकारी दस्तावेजों में तो नहीं मिलती। यह बात सही है कि शोध के लिए आवश्यक मुख्य आंकड़े तो सरकारी रिकार्ड में ही मिलेंगे। शोधार्थी को मंशा जानने के लिए आंकड़ों के मध्य छुपी सच्चाई को देखना चाहिए।

अमनदीप वशिष्ठ : आपकी समझ को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से मुख्य गैर ब्रिटिश दस्तावेज हैं।

प्रेम चौधरी : क्षेत्रीय साहित्य और क्षेत्रीय अखबार 'जाट गजट' और 'हरियाणा तिलक' हैं। जब मैं शोध कर रही थी, तो काफी लोग जिंदा थे, जिससे उस समय की जानकारी ली जा सकती थी, लेकिन अब वे लोग जा रहे हैं। आपकी पीढ़ी को मौखिक इतिहास रिकार्ड कर लेना चाहिए। मुझे नहीं लगता कि हरियाणा के पास मौखिक इतिहास का कोई Archive है। मौखिक इतिहास का दस्तावेजीकरण करना बहुत ही महत्वपूर्ण है।

रमणीक मोहन : किस तरह की चीजों का ध्यान रखने की जरूरत है। कुछ चीजों का खास ध्यान रखना चाहिए।

प्रेम चौधरी : एक है जाति (Caste), एक है क्लास (Class) और लिंग (Gender) इन तीन चार चीजों

अमनदीप वशिष्ठ : आप हरियाणा में



दलित स्त्री को कैसे देखते हैं, क्योंकि उस पर दोहरा हमला होता है। जाति का भी और औरत होने का भी। स्त्री विमर्श में भी दो तरह की स्त्री की चर्चा होती है। एक तो वह जो प्रभुत्वशाली जाति से आती है और दूसरी वह जो दलित जातियों से संबंध रखती है। आप इसको हरियाणा में कैसे देखती हैं।

प्रेम चौधरी : वो अंतर तो मानना ही पड़ेगा। उनका जीवन का अंदाज भी अलग है। ये तो आपको जमीनी शोध से ही मालूम पड़ता है। कुछ चीजों में वो ज्यादा आजाद हैं। हमें आंकड़े देखने चाहिएं कि दलित और गैर दलित स्त्री कैसे आय जुटा रही है। उनमें प्रतिहिंसा (काऊंटर-वालेंस) है। वो जाट स्त्री में भी है। वो पीट देती है, लेकिन फर्क तो है क्योंकि इसमें कास्ट, क्लास और जेंडर तीनों आ गए। दलित-स्त्री विमर्श काम करने के लिए अच्छा क्षेत्र है। ये सब तो जमीनी शोध से ही पता लगता है। मैं कहना चाहूंगी कि आप ये न सोचें कि जो मैंने कह दिया, वो आखिरी विचार है। नए-नए शोध आएंगे और मेरी सोच को झुठलाएंगे और मैं बहुत खुश हूंगी। अगर वो हरियाणा से निकले, तो और अच्छी बात होगी।

अमनदीप वशिष्ठ : आपने 'पुरुषत्व' के विचार पर भी कार्य किया है। जब हम महिलाओं के सामाजिक हालात का अध्ययन करते हैं, तो उसमें आप पुरुष को क्या कहना चाहेंगी?

प्रेम चौधरी : कई पुरुष भी तो स्त्रीवादी हैं। मेरे ख्याल में वे पुरुष बहुत अच्छे स्त्रीवादी बनते हैं जो स्त्री विमर्श को समझते हैं।

अमनदीप वशिष्ठ : पुरुष महिला के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक हालात को समझने के लिए क्या कर सकता है। सिर्फ हमदर्दी के अलावा वो क्या कर सकता है।

प्रेम चौधरी : शुरूआती तौर पर वो घरेलू कार्य सांझा कर सकता है। बच्चों की देखभाल सिर्फ औरत पर डाली हुई है। खाना भी उसी पर डाला हुआ है। मतलब घर का वो सब काम जो बिना पैसे के, बिना किसी मान्यता दिए करवाया जाता है, वो औरत के ऊपर है। घरेलू काम को सांझा करने से बहुत फर्क पड़ेगा। पुरुष समझेगा कि मनोवैज्ञानिक रूप से औरत किन चीजों से गुजर रही है। पुरुष को ये समझना होगा कि शक्ति उसकी तरफ बहुत ज्यादा झुकी हुई है। जब तक वो उस शक्ति को सांझा करने के लिए तैयार नहीं होगा। तब तक वो मसला कैसे हल करेगा।

रमणीक मोहन : आपने जो स्त्री-पुरुष संबंधो की बात की है, उसमें शिक्षा व्यवस्था क्या भूमिका अदा कर सकती है? चाहे वह स्कूली शिक्षा है या कालेज की। दूसरा यह कि शोध के दौरान यदि कोई पुरुष किसी महिला से प्रश्न करे तो वह उतना नहीं कह पाती, जितना एक महिला प्रश्नकर्ता से। ठीक इसी तरह शायद एक पुरुष महिला प्रश्नकर्ता के समक्ष। तो इसमें आपका अनुभव कैसा रहा शोध के दौरान

प्रेम चौधरी : अब तो चूंकि उम्र बड़ी है, तो न तो पुरुष झिझकता है न स्त्री। पर पहले भी मेरी स्थिति 'इनसाइडर-आउटसाइडर' की रही है। हूं तो मैं हरियाणा से और ये कहा जा सकता है कि ये बेटी है। गांव की बेटी है, फलां की बेटी है और जाट है। इससे मुझको 'इनसाइडर' (उसी इलाके का यानी अपना) माना जाएगा। पर क्यूंकि मैं दिल्ली में रहती हूं, दिल्ली में

पढ़ी हूं तो उससे मैं 'आउटसाइडर' भी हूं। तो दोनों फायदे मुझे मिले। पर आप जैसे कह रहे हैं कि पुरुष महिला से या महिला पुरुष से प्रश्न करे तो इंटरव्यू में परेशानी होगी। इसको पार पाने के लिए अगर हरियाणा में हरियाणा वाले ही कर रहे हैं, तो काफी आसानी होगी। क्योंकि जो बाहर से आते हैं, उन्हें बहुत मुश्किल होती होगी। कई दफा उनको ये भी नहीं पता चलता कि उनको बनाया जा रहा है। सब लोग अपनी सच्चाई नहीं बता सकते हैं। मुझे तो पता चल जाता है, पर वो नहीं समझ पाते, पर वो जो लिखते हैं, उसमें थोड़ी गड़बड़ हो जाती है। जैसे जो बाहर से लड़कियां लाकर शादियां कर रहे हैं, जिन्हें 'पारो' कहते हैं-मैंने जब काफी दफे बात की तो मुझे बहुत लोगों ने यह बताया-'अब तो म्हारी नसल ए बदल ज्यागी।' तो ये मैंने लिखा भी था। पर बाहर से जो लड़कियां शोध करने गई और कहा कि हमने पांच महीने बिताए-इतने लोगों का इंटरव्यू किया, पर किसी ने हमें यह नहीं कहा कि नस्ल बदल गई तो ये गलत बात है। ये जरूरी नहीं कि फिर लोग उन्हें भी बताएंगे। पर असल में पता लगाने की बजाए कि इसका सच क्या है-क्यूंकि कोई कार्य करके लिख रखा है तो इसमें कुछ तो आधार होगा। वो सीधे कह देते हैं कि प्रेम चौधरी तो गलत है। तो इसलिए थोड़ा सा ध्यान रखना पड़ता है। इसलिए मैंने जो लड़कियां-लड़के काम के लिए साथ रखे थे, इस बात से उन्हें चेतावनी दे दी थी। लड़कियां जो थी, वो अपनी किसी बड़ी मौसी या बुआ को साथ लेकर गई थीं, ताकि सुविधा हो जाए। लड़कों को भी मैंने यह कहा कि तुम्हें ठीक नहीं बताया जाएगा। तुम्हें चेक-काउंटरचेक करना पड़ेगा। एक आदमी ने जो कह दिया, उसे सही मत मान लो। कई दफा आदमी झिझक से सही नहीं बोल पाता। ये सब ध्यान रखना पड़ता है।

अमनदीप वशिष्ठ : हरियाणा के समाज में वो कौन से सकारात्मक पहलू हैं जो ताकत बन सकते हैं। बहुत सारी नकारात्मक चीजें तो हम गिना देते हैं। पर आपको वो कौन सी सकारात्मक चीजें हरियाणा में दिखती हैं। जिन्हें रेखांकित किया जाना चाहिए।

प्रेम चौधरी : औरत जो अपने को assert कर रही है, उसमें बहुत उम्मीद है। मुझे ऐसा यू.पी. वगैरह में नहीं लगा है। हमारे हरियाणा के इलाके में ये ज्यादा है। दबाव को झेलने की क्षमता ज्यादा है। और वो बेधड़क बोलती हैं, जब बोलती हैं। इस बात की परवाह किए बिना कि कौन उनके सामने खड़ा है। कुरुक्षेत्र में मैंने देखा कि लड़कियां जींस पहनती हैं और जबकि माहौल ऐसा है कि जींस मत पहनो-मोबाइल मत रखो वगैरह-वगैरह।

अमनदीप वशिष्ठ : ठीक इसी तरह हरियाणा की ऐतिहासिक लोक-संस्कृति में ऐसे कोई बिंदू आपको नजदीक लगे हों-अच्छे लगे हों।

प्रेम चौधरी : मैंने देखा जो लोक-गीत वो (स्त्रियां) बेधड़क गाती हैं, जिसमें आदमी हिस्सा नहीं लेते। उससे भी ये लगता है कि जैसे आदमी उनको देखता है, वो फर्क है और असल में 'आनंद की अवधारणा' (कांसेप्ट आफ एंजायमेंट) है उनके (स्त्री के) पास। जो कि विकसित किया जा सकता है। उनकी संस्कृति में रूचि है,गाने में-बजाने में। गाने में वो आदमियों की खिल्ली भी उड़ाती हैं। ऐसा नहीं है कि हमेशा वो उनकी जूती बनती रहें, जैसा पुरुष चाहते हैं और कहते हैं। ये बहुत उम्मीद के चिन्ह हैं।

रमणीक मोहन : एक बात रह गई थी। आज चूंकि शक्ति का ढांचा पुरुष के पक्ष में झुका हुआ है। पुरुष औरत के बहुत सारे कामों को सांझा नहीं करता, जिनका आप जिक्र कर रही थीं। शिक्षा के क्षेत्र में वो कैसे लाई जाएं। शुरूआत कैसे की जाए?

प्रेम चौधरी : शिक्षा के क्षेत्र में तो उन्हें लाना ही पड़ेगा। और शुरूआत उसकी बचपन से ही होगी। फिर विश्वविद्यालयों में ये खुद बदल जाएगा। बचपन तो बनाता है हमें।

रमणीक मोहन : आपका विषय इतिहास रहा है और आपने समाज शास्त्र में कार्य किया है। आप इन दोनों के पूरक संबंधों को कैसे देखती हैं?

प्रेम चौधरी : मुझे तो लगता है ये जरूरी है। समसामयिक स्थिति को हम सिर्फ समसामयिक नहीं मान सकते, उसकी भी तो जड़ें हैं और जड़ें तो फिर 'ऐतिहासिक जड़ें' ही होती हैं। मैं कहती हूं कि अपने समाज को पहले समझना चाहिए, फिर उसकी समस्याएं गिनवानी चाहिएं। फिर उस में से हल निकलेगा। समस्याओं को समझने के लिए ऐतिहासिक जड़ें तो चाहिएं ही। मेरे विचार में, इसलिए समाजशास्त्रीय समझ के लिए भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चाहिए। हालांकि इसको सब नहीं मानते। वो केवल वर्तमान ही लेते हैं।

रमणीक मोहन : इसी संदर्भ में खाप को आप कैसे देखती हैं? क्योंकि एक दृष्टिकोण ये आता है कि किसी समय जब ये शुरू हुई थीं, तब इनकी भूमिका बहुत पॉजिटिव थी। समय के साथ-साथ उसमें कहीं गिरावट आई है। तो ये जो दृष्टिकोण है, क्या वो आपको सही लगता है या इस बात में कहीं कोई पेंच है।

अमनदीप वशिष्ठ : मैं इसी सवाल को आगे बढ़ाते हुए एक बात जोड़ना चाहूंगा कुछ लोगों का ये भी कहना है कि 1991 में नव उदारवादी नीतियों के बाद से जो आर्थिक संघर्ष बहुत तेज हो गए, वो खाप विवाद में झलक रहे हैं।

प्रेम चौधरी : खाप पर ऐसा कोई इतिहास-संबंधी कार्य नहीं है। मैं इस तर्क से बहुत संतुष्ट नहीं हूं। एक किताब है-एम सी प्रधान की, वो भी बहुत विवादित रही। उन्होंने जो संदर्भ लिए वो ही शायद ठीक नहीं थे। पर इस पर शोध बहुत जरूरी है। आजादी के बाद खाप की प्रासंगिकता को समझना पड़ेगा। अब हमारे पास दूसरी संस्थाएं आ गई हैं। एक खाप की स्थानीय पहचान क्या है? उसमें प्रतिनिधित्व किसका है। ये गंभीर प्रश्न है। जो भी कुछ कहेगा। उसको ये सब समझना पड़ेगा। समझने के बाद ही आप किसी नतीजे पर पहुंच सकते हैं।

अमनदीप वशिष्ठ : कुछेक दस्तावेजों के अनुसार 1947 से पहले एक लोक-समझ यह थी कि अदालतें फैसले करती हैं और पंचायत इंसाफ। दूसरी बात यह कि अदालतों की जो संस्कृति रही है-बहुत लंबे समय तक केसों का चलना, हर चीज को कागज-दस्तावेज के आधार पर समझना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी ऐसी स्थिति होती है कि सबूत पेश न किए जा सकें, तो इन बहुत सारी समस्याओं के चलते लोगों का एक हिस्सा ऐसा है, जिसे लगता है कि पंचायत ज्यादा मानवतापूर्ण तरीके से फैसले देती है। कुछ बुजुर्गों का यह भी मानना है कि ये पूरी पंचायत की संस्था एग्रोनॉमिकल (कृषि-अर्थशास्त्रीय) संबंधों से उपजी है। आज जो दिक्कतें हैं, वो इसलिए हैं, क्योंकि वो एग्रोनॉमिकल संबंध बदल रहे हैं। इसलिए नहीं कि यह संस्था जरूरी तौर पर गलत ही है। चूंकि ऑनर किलिंग का मुद्दा मीडिया में पिछले 15-20 साल से ही ज्यादा सुर्खियों में है और ये वही दौर है, जब नव उदारवादी नीतियां भी आ रही हैं। आप इस पूरे मसले को कैसे देखती हैं।

प्रेम चौधरी : इसमें मैं ये कहना चाहूंगी, जोकि मैंने हमेशा कहा है कि ऐसी कोई संस्था नहीं होती, जिसमें पॉजिटिव और नेगेटिव, दोनों पहलू नहीं होते। अगर औपनिवेशिक दौर में इसकी जरूरत थी। और वो समझ अब तक कायम है कि उसकी जरूरत अभी भी है। वो सभी कारण जो अभी आपने गिनाए। पर उन सब पॉजिटिव (सकारात्मक) बिंदुओं को नेगेटिव बिंदुओं से तुलना करेंगे, तो देखेंगे कि इस बात के बेशुमार सबूत हैं कि खाप-पंचायत की जरूरत नहीं है और इन्हें बिल्कुल नहीं होना चाहिए। ये मदद करने की बजाए ज्यादा खराबियां कर रही हैं। इसमें आपको लोकप्रिय-धारणाओं से अलग जाकर थोड़ा संतुलन रखना पड़ेगा। पॉपुलर परसेप्शन (लोकप्रिय-धारणा) भी तो गलत हो सकता है और आमतौर पर होता है।

रमणीक मोहन : एक आखिरी चीज आपसे पूछना चाहूंगा कि आपको जो तीस साल का शोध कार्य रहा है, उसमें कौन सी चीज आपको लगातार प्रेरित करती है। क्या कोई सामाजिक बदलाव की एक दृष्टि है कि यह शोध अभी जरूरी है।

प्रेम चौधरी : मुझे लगता है कि मेरी सैद्धांतिक कार्य में रूचि है। यह मेरा विषय है। अगर मेरा कार्य लोगों को शोध करने के लिए प्रेरित कर पाए तो मुझे बहुत खुशी होगी।

सम्पर्क : 9729482329

लव कुमार लव की कविता

बंजर जमीन

हर श्वेत बो लेता है एक बीज
भेदभाव का
अपने मन में
हर अश्वेत के प्रति
कहीं न कहीं
जाति से ग्रसित भी अपने मन में
उगा लेता है
एक नन्हा अंकुर
घृणा का
हर अछूत के प्रति
अमीरों के मन में भी देखा है
घमंड का
एक पौधा पनपता
हर गरीब
अरमानों को मसलने के लिए
साहूकार से लेकर
जमींदार तक
एक पेड़ बनते देखा है
शोषण रूपी पौधे को
हर शोषित के प्रति
कौन सा रिश्ता नहीं निभाया
नारी ने
पर उसको भी नहीं बख्शा
शोषण की कांटेदार झाड़ियों ने
फंसता रहा है उसका दामन
शोषण रूपी झाड़ियों में
हर बार।
मैंने भी बो रखा था एक बीज
मैं का अहं का
अपने अंदर
करता रहा बंजर
मन की जमीन को
पता नहीं क्यों जाने अनजाने में
इन्सान बो लेता है एक बीज
अपने अंदर
भेदभाव घृणा छुआछात का
और शोषण का
कभी मेरी तरह
मैं का या अहं का
और देखता रहता है बस
तन मन की जमीन को
बंजर होते
जर्जर होते

सम्पर्क : 8685827332

वीरेंदर भाटिया की कविताएं

सन् 2001 में पहली बार मेरी कविता राम चंद्र छत्रपति ने अपने समाचार पत्र पूरा सच में प्रकाशित की। उस से पहले मैं कविता लिखता और डायरी में बंद कर देता था। कविता से समाज की कुछ अपेक्षाएं है। कविता किसी बात को असरदार ढंग से हमारे अवचेतन में penetrate कर सकती है। कविता के प्रति मेरी छोटी सी समझ सिर्फ इतना जानती है कि कविता जो पीछा करती है वही असल कविता होती है। वही बदलाव की आधारशिला रखती है। सैंकड़ों कविताओं में से कोई एक कविता जेहन में रहती है तो यकीनन वह हर कविताई परिभाषा के दायरों से बाहर होते हुए भी कविता होती है और कविता की परिभाषा को पुन: परिभाषित करती है। वही कविता कविता का दायरा और प्रतिष्ठा बढ़ाती है। वही कविता उस समय की प्रतिनिधि कविता होती है।

– ***वीरेंदर भाटिया***

बेटियां

लड़की
जन्म के वक्त
बेटी होती है
उसे ढलना होता है
बहू के चरित्र में

माता पिता, समाज
हर वक्त रहता है
इस कोशिश में
कि बचा नहीं रह जाये
लड़की में
बेटी का कोई भी अंश

उसे पूरी तरह होना है
बहू के चरित्र में पारंगत
बावजूद इसके
माता पिता जानते हैं कि
बहू की अलग भाषा होती है
अलग व्यवहार होता है
अलग होता है वेश परिधान
और अलग से
खुशनुमा रखना होता है मिजाज
हर मुश्किल के बावजूद

लड़की को जब-जब मुश्किल लगता है
बहू का चरित्र निभाना
वह मायके आ
उतार देना चाहती है
सारे परिधान
माता पिता, समाज मगर
फिर से भर देता है उसमें
बहू के चरित्र को जीवंत करने की कृत्रिम उर्जा

उम्र भर
चरित्र निभाती
सिकुड़ती सकुचाती बेटियां
कितना जी पाती हैं अपना संसार।

आजादी की जिंदगी

मै लड़की
जब भी कदम रखूंगी
घर की चारदीवारी के बाहर
सबके चेहरों पर होंगे
कई-कई सवाल
मुझे ढूंढना होता है
सबके सवालों का एक जवाब
जो आश्वस्त कर दे सबको
कम कर दे चेहरों का तनाव
मुझे बताना होता है
वापसी का नियत समय
और उस समय तक मुझे
हर हाल में होना होता है चारदीवारी के भीतर
इस तरह मुझे जीनी होनी होती है
अपनी आजादी की जिंदगी।

मूंछ और नाक

मैं नहीं जानती
अपने परदादा के पिता का नाम
मेरा मगर एक खानदान है
उस खानदान की एक मूंछ है
उस मूंछ में शामिल हैं
पिताओं के पिता के बाल
सूक्ष्म मगर नुकीले
एक अलग नाक भी है
हमारे अपने नाक से जुदा
नाक में जमा हैं पीढियों का रक्त अंश

घर के पुरुषों पर जिम्मेदारी है
कि नोक कुंद न हो
और औरतों की जिम्मेदारी है
कि खानदान के नजले से रहें बाखबर।

दया बस्ती

दया बस्ती रेलवे स्टेशन पर
नहीं रूकती कोई भी एक्सप्रेस ट्रेन
दया बस्ती की गंध मगर
जबरन सवार हो जाती है
थ्रू जाती ट्रेन पर
रुमाल स्वत: आ जाता है नाक पर
थूक गिटकने से नहीं गिटका जाता
चेहरा भाव बदलने लगता है
एक छोर से
दिल्ली आने वालों के स्वागत के लिए
हर वक्त मुस्तैद रहती है यह गंध
यही गंध खादीधारियों को ऊर्जा देती है
देश का लोकतंत्र इसी गंध में से होकर गुजरता है
यही गंध देती है आम आदमी को हांकने की ताकत
दया बस्ती में नहीं रुकती कोई एक्सप्रेस ट्रेन
दया बस्ती खुद रुकी है मगर
जब से उसका नाम दया बस्ती पड़ा है।

समंदर

समंदर किनारे बैठ कर
समंदर पर कविता नहीं लिखी जाती कवि
कविता तब लिखी जाती है
जब समंदर भीतर समा जाता है।

कोलाहल

सफ़ेद वस्त्र धारण कर
उसने ओढ़ लिया संतत्व
मूँद ली आँखे
बाहर के कोलाहल से
भीतर का कोलाहल बेचैन कर देने वाला था
संतुलन नहीं सधा
भीतर और बाहर का
आँखे खोल लेनी पड़ी
मगर सफ़ेद वस्त्र छूट नहीं सकते थे अब
खुली आँख देखती रही
रंगों की चकाचौंध
भीतर तक भरी चकाचौंध
फिर बंद कमरे में बिखेरने लगी रंगीनियां।

सुनो प्रिय

सुनो प्रिय
एक कविता तुम पर भी कहूँगा एक दिन
लूण मिर्च के जुगाड़ से निबट लू एक बार
तब तक
कविता कहने लायक लावण्य बचाए रखना।

अनुयायी



अनुयायी
किसी भी मुल्क की
सबसे खतरनाक कौम होती है

उस कौम का
अपना कोई दिमाग
अपना कोई विचार
अपना कोई सुझाव नहीं होता

अनुयायी
एक व्यक्ति के पीछे चलने वाली
सींग वाली भेड़ें हैं
जो लहूलुहान कर सकती हैं किसी को भी
जिसे उसका हांकने वाला कहेगा

एक वक्त के बाद वो सभी भेड़ें
सिर्फ अपने
एक जैसे मारक सींग के कारण पहचानी जाती हैं
जिन भेड़ों के सींग ज्यादा नुकीले होते हैं
उन्हीं भेड़ों के हांकिये का
जंगल राज होता है
भेड़ें हालांकि
हर वक्त भेड़ ही रहती हैं

प्रजातंत्र में अनुयायी
धर्म तंत्र में अनुयायी
भेड़ तंत्र के पोषक होते हैं
अनुयायी
आखिरकार देश के लिए जोंक ही साबित होते हैं।

खबरदार

आओ
साफ करें महानगर
साफ करें बड़े शहर
साफ करें मीडिया की गलियां
मंत्रियों-अफसरों की कालोनियां

छपें
अखबारों में,
दिखें
टेलीविजन स्क्रीनों पर
जोर लगा दें
महानगर की बड़ी खबर बनने के लिए

बड़ी खबर बनने से ही फैलती है
यश और साधुता की हवा
बड़ी खबर बनने से ही
छोटी हो सकती है
बड़े अपराध की कोई खबर

आओ
बताएं
हुक्मरानों को
कि भीड़
खबर के लिए ही नहीं
खबरदार करने के लिए भी होती है।

मिर्चपुर

हम हाड मांस के पुतले
सड़क पर हैं नंगे बदन
नंगे सवालों की तरह
कोपाग्नि से भयभीत

देख रहे हैं
धू धू कर जलती बस्ती
जलते सपने

जलन से जलने तक की बू सहते
बेटियों को सहेज-सहेज कर रखते
हमने देखा है
छुआछात से लेकर छूने (बलात्कार) तक का खेल
हम हाड मांस के पुतले
सड़क पर हैं नंगे बदन
नंगी राजनीति की तरह
देख रहे हैं बस्ती में आती-जाती लाल बत्तियां
तोलती निगाहें

हम जानते हैं मगर
कि मांस से गोश्त
गोश्त से निवाला हो जाने तक
हम ही हैं सींखचों में टंगे हुए
बिसात पर बिछे हुए
हम ही हैं
सदियों से

हम हाड मांस के पुतले
फिर से हैं सड़क पर
नंगे बदन
नंगे सवालों
नंगे समाज की तरह।

गरीब की लड़की

गरीब पिता की लड़की
पिता की पेशानी पढ़ना जानती है
पेशानी पर उभरते आड़े तिरछे भाव
वह ऐसे पढ़ती है
जैसे अगस्त्य ऋषि
पढ़ रहा हो एक पूरा युग
जैसे नास्द्रेमस की मूंदी आँखों को
दूर तक नजर आ रही हो पिता की मुफलिसी

बंद आँख में वह सपने नहीं बुनती
वह बुनती है
भविष्य की एक धुंधली तस्वीर
जिसमें वह किसी दिन
किसी के साथ बांध दी जाएगी
मर्जी-नामर्जी जहाँ बेमानी होगी

लड़की पढ़ती है
बिना अक्षरों वाली किताब
और डिग्रियो को बौना बनाती वह
भीतर ले जाती है पेशानी का सत

भीतर जो पनपता है
वह पिता कभी नहीं पढ़ पाता
पिता
ताउम्र समझता है
लड़की को ऐसे ही जीना होता है
लड़की
ताउम्र कोशिश करती है
पिता जीते जी मर जाने की न सोचे।

महिला दिवस

मेरे अखबार ने बताया
आज तुम्हारा दिन है
मेरी फेसबुक ने बताया
आज तुम्हारा दिन है
मेरे ट्विटर ने बताया
आज तुम्हारा दिन है

मेरे पति ने नहीं बताया
आज मेरा दिन है
मेरी रसोई ने नहीं बताया
आज मेरा दिन है
मेरे बच्चों ने नहीं बताया
आज मेरा दिन है

मेरे अपने मेरा दिन मनाएंगे
तभी होगा मेरा दिन
उन्हें बताओ
अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस का मतलब

घिन्न

बच्चे का मैला उठाती
पति की शराब की उलटी समेटती
बीड़ी की गंध सहती
मीट के बर्तन धोती
शौचालय साफ रखती
बाथरूम धुलाती
जूठे जमे बर्तनों से जूठ उतारती
गन्दी जुराबें धोती
मैले कपड़ों से दो चार होती
गोबर पाथती
घिन्न से बार-बार गुजरती आधी आबादी
हर आम
हर बुद्धिजीवी के घर
कुछ कम कुछ ज्यादा
दलित जरुर रहता है।

सम्पर्क : 9315523344

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।



27 सितम्बर 1907	जन्म, बंगा (लायलपुर, पाकिस्तान)
1923-24	कानपुर में प्रताप प्रेस से जुड़े और क्रांतिकर्म से विधिवत् परिचय। बलवंत नाम से क्रांतिकारी पार्टी की सदस्यता ग्रहण की।
1924	पहला लेख 'पंजाब की भाषा तथा लिपि की समस्या' लिखा।
मई 1927	लाहौर में अकस्मात गिरफ्तारी
8-9 सितम्बर 1928	भारत में समाजवाद स्थापित करने का प्रस्ताव, हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का नाम बदल कर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन किया गया।
30 सितम्बर 1928	लाहौर रेलवे स्टेशन पर लाला लाजपत राय के नेतृत्व में साइमन कमीशन के वरोध प्रदर्शन में शामिल।
17 दिसम्बर 1928	लाहौर में पुलिस कार्यालय के सामने पुलिस अधिकारी सांडर्स की गोली मारकर हत्या।
8 अप्रैल 1929	केंद्रीय एसेम्बली में बम का धमाका और गिरफ्तारी।
8 जून 1929	दिल्ली के सेशन जज के सामने एसेम्बली बम केस में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने लिखित बयान दिए।
जुलाई 1929	राजनीतिक बन्दियों के अधिकारों को लेकर लाहौर जेल में भूख-हड़ताल।
26 जनवरी 1930	हिमप्रस की ओर से 'बम का दर्शन' नामक पर्चा सारे देश में बांटा गया। पर्चे को अंतिम रूप भगत सिंह ने जेल में दिया था।
7 अक्तूबर 1930	विशेष न्यायाधिकरण द्वारा भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर षड्यंत्र मुकद्दमें में फांसी की सजा।
23 मार्च 1931	लाहौर सेन्ट्रल जेल में फांसी।

भगत सिंह अद्वितीय व्यक्तित्व

चमन लाल

शब्दों का प्रयोग कई बार आलंकारिक रूप में किसी बात पर ज़ोर देने के लिए किया जाता है। 'अद्वितीय' शब्द का प्रयोग भी बहुत बार आलंकारिक रूप में ही किया जाता है। लेकिन भगत सिंह के सन्दर्भ में जब इस शब्द का प्रयोग किया जा रहा है तो यह शब्द के सटीक अर्थों में किया जा रहा है। भगत सिंह का व्यक्तित्वए जिसकी पर्तें उनकी शहादत के 76 वर्ष गुज़र जाने पर भी खुलने की ही प्रक्रिया में है और शायद उनके व्यक्तित्व की पूरी पर्तें खुलने में अभी कुछ और वक्त लगे। लेकिन पिछले करीब दो वर्षों से भगत सिंह के व्यक्तित्व को उनके कृतित्व और कार्य-कलापों के माध्यम से समझने में तेजी आई है, जिससे उम्मीद बंधती है कि भारत के इस महान् इतिहास पुरुष का वस्तुगत मूल्यांकन, जो अब कमोबेश सही दिशा में होना शुरू हो गया है, कुछ वर्षों में संपन्न हो सकेगा। यद्यपि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उनके ऐतिहासिक योगदान को लेकर स्वस्थ वैचारिक आदान-प्रदान चलते रहेंगे, जो अन्य इतिहास पुरुषों के बारे में हर देश और हर समाज में हमेशा बदलते सन्दर्भों में चलते रहते हैं और जिन्हें चलते रहना भी चाहिए।

भगत सिंह के वस्तुगत मूल्यांकन की प्रक्रिया को हम तीन पड़ावों के रूप में पहचान सकते हैं। पहला पड़ाव है। भगत सिंह के जीवन काल के अंतिम अढ़ाई वर्ष और 23 मार्च 1931 को उनकी शहादत के बाद के काफी वर्ष। इस पड़ाव में भगत सिंह ने भारतीय जन मानस में एक अत्यंत लोकप्रिय युवा नायक के रूप में जगह बताई। 'वीर युवा नायक' की इस प्रतिमा के स्वत:स्फूर्त रूप में स्थापित होने में 17 दिसंबर 1928 के सांडर्स वध, 8 अप्रैल 1929 के दिल्ली असेंबली के बम विस्फोट, 8 अप्रैल, 1929 और 23 मार्च 1931 के दौरान जेल में लंबी भूख हड़तालें और कचहरियों में मुकदमों के दौरान दिए गए बयानों व कार्यकलापों तथा 23 मार्च 1931 की रात की शहादत व शवों के काट कर जलाने की घटनाओं व इन घटनाओं के भारतीय अखबारों में फोटो सहित विस्तृत विवरण छपने की बड़ी भूमिका है। उस समय भगत सिंह की लोकप्रियता का आलम यह था कि कांग्रेस पार्टी के इतिहास लेखक पट्टाभि सीता रम्मेया को यह स्वीकार करना पड़ा कि 'पूरे देश में भगत सिंह की लोकप्रियता महात्मा गांधी से किसी तरह भी कम नहीं है', कहीं कहीं शायद ज्यादा ही हो सकती है। भगत सिंह की यह छवि बनना यहां एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की बहुत बड़ी ताकत व प्रेरणास्रोत बनाए वहीं इसका नुकसान यह हुआ कि इस छवि के वर्चस्वकारी व अभिभूत करने वाले रूप के नीचे भगत सिंह का 'क्रांतिकारी बौद्धिक चिंतक' का रूप पूरी तरह धुंधला पड़ गया। हालांकि जिस तरह का भगत सिंह का लेखन 1928 और 1931 के बीच हिंदी, पंजाबी और अंग्रेजी में छपा, उससे किसी भी देश का बौद्धिक वर्ग उनकी चिंतक प्रतिभा का लोहा मानता और उस पर गर्व करता। भगत सिंह मात्र 'वीर युवा नायक' की यह छवि बहुत लंबे अरसे तक चलती रही। इस बीच देश की अनेक भाषाओं में भगत सिंह पर कविताएं, कहानियां, लेख, रेखाचित्र व जीवनियां छपीं, जिनमें से अधिकांश पर पाबंदी भी लगी। इन सब रचनाओं में भी भगत सिंह की इसी छवि को सुदृढ़ किया। 1938 के बाद जब भगत सिंह के नजदीकी साथी-शिव वर्मा, जयदेव कपूर, अजय घोष, विजय कुमार सिन्हा, भगवान दास माहौर आदि जेलों से रिहा हुए व इनमें से कुछ ने संस्मरण लिखना शुरू किया तो भगत सिंह के व्यक्तित्व की छिपी पर्तें खुलने लगीं। जितेन्द्रनाथ सान्याल कृत भगत सिंह की जीवनी जो 1932 में ही छपी, पर जब्ती व लेखक-प्रकाशक के लिए कैद का फरमान लेकर आई, में भगत सिंह के व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष की ओर ध्यान जरूर आकर्षित किया था, लेकिन यह जीवनी पुन: 1946 में ही छप सकी थी।

भगत सिंह पर 1949 व 1970 के बीच उनके अनेक साथियों के संस्मरण छपे, जिनमें अजय घोष, शिव वर्मा, सोहन

सिंह जोश, यशपाल, राजाराम शास्त्री, भगवानदास माहौर, यशपाल आदि के संस्मरण शामिल हैं। इन संस्मरणों में भगत के वैचारिक विकास पर रोशनी पड़ती है। भगत सिंह द्वारा 8 और 9 सितंबर को फिरोजशाह कोटला मैदान दिल्ली में क्रांतिकारी दल को 'समाजवादी' दिशा देनेए उनकी मार्क्सवाद में गहरी रुचि, उनकी अध्ययनशीलता, उनकी संगठन क्षमता आदि पर काफी विस्तार से वस्तुगत रूप में चर्चा हुई है। भगत सिंह के प्राय: सभी करीबी साथी रिहाई के बाद कम्युनिस्ट पार्टी या आंदोलन में शामिल हो गए थे, शायद इसीलिए अकादमिक जगत ने भगतसिंह के इन साथियों के लिखे भगत सिंह संबंधी संस्मरणों, जिनमें उनके व्यक्तित्व का वस्तुगत रूप समझने में मदद मिलती थी, की उपेक्षा की।

भगत सिंह के व्यक्तित्व को समझने का दूसरा पड़ाव शुरू होता है, प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चंद्र द्वारा अपनी भूमिका के साथ 'मैं नास्तिक क्यों हूं' व 'ड्रीमलैंड की भूमिका' के पुन: प्रकाशन से। 'मैं नास्तिक क्यों हूं' अपने मूल अंग्रेजी रूप में भगत सिंह की शहादत के कुछ ही महीने बाद यानी सितंबर 1931 के 'पीपल' (लाहौर) साप्ताहिक में छप गया था, लेकिन इसमें निहित गंभीर व गहराई पूर्ण विचारों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। हालांकि दक्षिण भारत में पेरियार ने अपनी पत्रिका 'कुडई आरसु' में पी0 जीवानंदन से इसका तमिल अनुवाद करवा कर 1933 में ही छाप दिया था, जिसके तमिल में पुस्तिकाकार रूप में 2005 ई0 तक 25 से ज्यादा संस्करण निकल चुके थे। बीच में अंग्रेजी में कई वर्षों तक यह लेख अनुपलब्ध रहा और बिपन चंद्र की भूमिका के साथ दोबारा छपने पर पहली बार अकादमिक जगत का ध्यान भगत सिंह की ओर गया। यही वह दौर था, जब सभी भाषाओं विशेषत: हिंदी, पंजाबी व अंग्रेज़ी में भगत सिंह की छिटपुट रचनाओं – पत्रों, लेखों, अदालती बयानों का व्यापक प्रकाशन शुरू हुआ। भगत सिंह की भतीजी वीरेंद्र संधू के संपादन में 1977 में हिंदी में भगत सिंह के 'पत्र और दस्तावेज' तथा 'मेरे क्रांतिकारी साथी' संकलन छपे। पंजाबी में पहले अमरजीत चंदन, फिर जगमोहन सिंह ने



दस्तावेजों का प्रकाशन 1980 के आसपास किया। हिंदी में 1986 में जगमोहन सिंह व चमन लाल द्वारा संपादित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' लगभग उसी समय तथा हिंदी व अंग्रेजी में शिव वर्मा के संपादन में भगत सिंह की चुनी हुई रचनाओं के प्रकाशन के साथ इस प्रक्रिया में तेजी आई और प्राय: यह मान लिया गया कि भगत सिंह इस देश के क्रांतिकारी आंदोलन को मार्क्सवादी दृष्टि से संपन्न समाजवादी परिप्रेक्ष्य प्रदान करने वाले मौलिक व पहले प्रभावी चिंतक हैं।

इसी बीच देश की दक्षिण पंथी राजनीतिक शक्तियों ने भी भगत सिंह के भगवाकरण का प्रयास किया। भगत सिंह के परिवार के कुछ सदस्यों की भारतीय जनसंघ पार्टी से निकटता ने भी इसमें योगदान किया। खालिस्तानी आंदोलन के दौरान भगत सिंह को 'केशरिया रंग व हाथ में पिस्तौल' की छवि के साथ प्रचारित किया गया। भगत सिंह के क्रांतिकारी विचारों में मार्क्सवादी दिशा का स्पष्ट रूप उभरने पर भारतीय जनसंघ के नए अवतार भारतीय जनता पार्टी ने कुछ देर के लिए भगतसिंह के बिम्ब से खुद को दूर भी रखा।

भगत सिंह के व्यक्तित्व के मूल्यांकन व वस्तुगत रूप से आकलन का तीसरा व अब तक का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव 2006 में भगत सिंह की शहादत के पिचहत्तर वर्ष पूरे होने से शुरू होता है। इसी वर्ष पहली बार अंतर्राष्ट्रीय वामपंथी आंदोलन की सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्रिका 'मंथली रिव्यू' की वेबसाईट पर व पत्रिका के भारतीय संस्करण में पहली बार भगत सिंह पर इस लेखक का लेख छपा, जिसमें भगत सिंह की तुलना लातीनी अमेरिकी क्रांतिकारी चे ग्वेरा से की गई है। इस लेखक व अन्य अनेक संगठनों द्वारा 28 सितम्बर 2006 से भगतसिंह जन्म शताब्दी मनाने के अभियान में भी इसी बीच तेजी आई है। अनेक जन संगठनों ने देश के विभिन्न हिस्सों में भगत सिंह जन्मशताब्दी समारोह समिति बना कर भगत सिंह स्मृति कार्यक्रम शुरू किए और भारत सरकार ने भी अंतत: 2 मई 2006 के गजट नोटिफिकेशन द्वारा भगत सिंह की शहादत के पिचहत्तर वर्ष पूरे होने व उनके जन्म की शताब्दी पूरी होने को पांच राष्ट्रीय जयंतियों में शामिल करने

की घोषणा की। अन्य तीन समारोह 1857 की डेढ़ सौंवी जयंती, 'वन्देमातरम' की शताब्दी व 1947 की आजादी के साठ वर्ष पूरे होने से जुड़े हैं। इन जयंतियों में 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम व भगत सिंह की शहादत व जन्म शताब्दी से जुड़े समारोहों में जनता की शमूलियत सबसे ज्यादा देखने में आई। चाहे ये सरकारी समारोह हों या जन संगठनों द्वारा आयोजित समारोह। इस बीच भगत सिंह का और लेखन भी छप कर सामने आता हैए जिसमें सबसे महत्वपूर्ण उनकी 'जेल नोटबुक' है, जिसका प्रथम प्रकाशन 1994 में जयपुर से भूपेन्द्र हूजा के संपादन में हुआ। अंग्रेजी की इस नोटबुक के प्रकाशन से भगत सिंह के विचारों संबंधी तमाम धुंधलापन साफ हो जाता है और मार्क्सवाद के उनके गहन अध्ययन व उस विचारधारा से उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से उभर आती है। इसी बीच फिल्म मीडिया में भी भगत सिंह का आकर्षण पुन: आ जागता है। मुंबई में एक साथ पांच पांच फिल्में भगत सिंह पर बनना शुरू हुईं जिनमें तीन ही रिलीज़ हो पाईं, जिनमें एक 'दी लीजेंड आफ भगत सिंह' काफी यथार्थ ढंग से भगत सिंह के कार्यकलापों व विचारों को प्रस्तुत करती है। अमीर खान की 'रंग दे बसंती' में भगत सिंह प्रासंगिक व सीमित, किंतु तकनीकी स्तर पर प्रभावी रूप में प्रस्तुत किए गए। भगत सिंह को वस्तुगत रूप में समझने के इस तीसरे पड़ाव में अकादमिक क्षेत्र में भी दिलचस्पी बढ़ी। बिपन चंद्र के साथ अब अन्य प्रतिष्ठित इतिहासकार के.एम. पणिक्कर, इरफान हबीब, मुबारक अली (पाकिस्तान), एम.एस. जुनेजा, के.एल. टुटेजा, जगतार सिंह ग्रेवाल, इंदु बांगा, सव्यसाची भट्टाचार्य आदि भी गहन रुचि लेने लगे हैं। 'मेनस्ट्रीम' 'फ्रंटलाईन'। 'ई.पी. डब्ल्यू' जैसी गंभीर व महत्वपूर्ण पत्रिकाओं ने भगत सिंह पर विशेष खंड छापे, जिससे आश्वस्ति होती है कि अब भगत सिंह को 'अपने अपने राम' की तर्ज़ पर 'अपने अपने भगत सिंह' के रूप में नहीं, वरन् भगत सिंह अपने विचारों व कार्यकलापों के माध्यम से जैसे वस्तुगत रूप में हैं। वैसे भगत सिंह के रूप में सामने आएंगे। इस मूल्यांकन में उनके जीवन व कार्य कलापों से व उनके साथियों के संस्मरणों, या उस काल के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित घटनाओं के विवरणों से ही समझा जा सकेगा, लेकिन उनके व्यक्तित्व के वैचारिक पक्ष का निर्विवाद रूप उनके उपलब्ध लेखन से ही स्पष्ट रूप से उभर सकेगा।

भगत सिंह का जीवन साढ़े तेईस वर्ष से भी कम का था और उनका राजनीतिक-सामाजिक जीवन करीब आठ वर्ष का था। लेकिन यह आठ वर्ष बहुत से इतिहास पुरुषों के अस्सी वर्ष से भी अधिक गरिष्ठ व महत्वपूर्ण हैं। विशेषत: भगत सिंह का बौद्धिक-वैचारिक विकास इन आठ वर्षों में जिस तूफानी गति, लेकिन जितनी समझदारी से हुआ है, वह भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में दुर्लभ है। इतनी छोटी उम्र में इस उच्च स्तर के बौद्धिक वैचारिक विकास की समूचे रूप में तुलना या तो लगभग इतनी ही उम्र जिए क्रांतिपूर्व रूसी दार्शनिक दोबरोल्यूबोव से की जा सकती है, जिन्होंने 24 वर्ष की अल्प आयु में अपने लेखन में जिन दार्शनिक गहराईयों का परिचय दिया है, वह विश्व भर की दार्शनिक परंपरा में दुर्लभ है या लातीनी अमेरिकी क्रांतिकारी चे ग्वेरा से, जिनका जीवन व लेखन भी भगत सिंह के जीवन और लेखन से काफी समानता रखता हैए हालांकि चे ग्वेरा को भगत सिंह से करीब चौदह वर्ष अधिक जीने का अवसर मिला। अत: उनके क्रांतिकारी आंदोलन के अनुभव भी अधिक रहे। एक स्तर पर 17 से 23 वर्ष के बीच मार्क्स के लेखन व इसी उम्र के भगत सिंह के लेखन के बीच तुलना की जाए तो आश्चर्यजनक रूप से एक जैसी बौद्धिक गुणवत्ता देखी जा सकती है, हालांकि मार्क्स को जिस उच्च स्तर की बौद्धिक संस्कृति यूरोप में प्राप्त थी, उसका दशांश भी भारत में भगत सिंह को प्राप्त नहीं था। यहां सीमित अर्थों में भगत सिंह की बौद्धिक प्रतिभा की गुणवत्ता और दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की प्रतिभा, दृढ़ता व लगन में ही चे ग्वेरा या मार्क्स से उनकी तुलना की जा रही है, ना कि व्यापक अर्थों में, क्योंकि व्यापक अर्थों में हर इतिहास पुरुष को अलग देश और अलग समाज में भिन्न परिस्थितियां मिलती हैं और वे परिस्थितियां ही हैं, जो किसी व्यक्ति या व्यक्तित्व को इतिहास पुरुष या इतिहास स्त्री की शक्ल देती हैं। मार्क्स और भगत सिंह दोनों ने ही अलग अलग सन्दर्भों में यही बात कही है कि यह परिस्थितियां ही थीं, जिन्होंने समाज को ठीक से समझने में किसी को जर्मनी के 'मार्क्स' बताया और उसी तरह भारत में 'भगत सिंह'। ये नाम कुछ और भी हो सकते थे, किंतु इनकी नियामक शक्ति परिस्थितियां ही रहतीं। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने पर मार्क्स, भगत सिंह और चे ग्वेरा एक ही परंपरा के अंग नज़र आएंगे। मार्क्स एक पूर्वज के रूप में और भगत सिंह और चे ग्वेरा उनके मार्ग के गंभीर अध्येता और उन पर पूरी ईमानदारी से चलने वाले सक्रिय कार्यकर्ता व साथ ही चिंतक रूप में।

सम्पर्क : 9646494538

आलेख

शहीद भगत सिंह नौजवानों के अटल साथी

जगमोहन सिंह

आज संकट की परिस्थितियां सामने हैं, जनता का हाल-बेहाल है। नौजवान हताश हैं भविष्य अनिश्चित है। जज्बात भड़काने वाली बातें ज्यादा होती हैं, विचार वाली कम। सत्ता पर काबिज लोगों को सबसे ज्यादा जो डराता है, वह है मूलभूत प्रश्नों का उठना। जिसके लिए हम देखते हैं कि बेतुकी बातें उठाकर लोगों को आपस में उलझा रहे हैं और जज्बाती करके नौजवानों को बरगलाया जा रहा है।

ऐसे समय में भगतसिंह के ऐतिहासिक जीवन का उल्लेख हमारे लिए खास सोचने के लिए प्रेरित करेगा। उन्होंने कहा था कि जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है, तो किसी भी प्रकार की तबदीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रांतिकारी स्पिरिट पैदा करने की जरूरत होती है। अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियां जनता को गलत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इन्सानियत की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि क्रांति की स्पिरिट को तेज किया जाए, ताकि इन्सानियत की रूह में हरकत पैदा हो और प्रगति पथ पर आगे बढ़ाया जा सके।'

आज के समय में जब एक तरफ 'कर्जे के पैसे' से विकास के दावे सुनने को मिल रहे हैं, दूसरी तरफ 36 करोड़ लोग कंगाली में फंसे हैं। विदेशी और देशी बड़े पूंजीपतियों को लाखों करोड़ का टैक्स माफ करके हर तरह मदद की जा रही है। उधर, लोगों से हर सुविधा जो जीवन का आधार है, से वंचित किया जा रहा है। राष्ट्रीय पैदावार साधन, जिसमें खेती का धंधा है, जिसे बर्बाद किया जा रहा है, जिससे नाबराबरी की स्थिति पैदा हो गई है। कुदरती स्रोतों जंगल, खनिज पदार्थ, जल, जमीन देशी और विदेशी पूंजीपतियों को लुटाई जा रही है और जंग का ऐसा मानसिक माहौल बनाया जा रहा है कि जंगी साजो-सामान से अमेरिकी, फ्रांसीसी, इजराईली कम्पनियों को लाखों करोड़ का लाभ पहुंचाया जा सके। ऐसी दुखदायी और नाबराबरी के माहौल में जबकि 'इन्सान के हाथों इन्सान की लूट और विदेशियों से देश की लूट' अपनी चरम सीमा पर है, तो जनता राज करने वालों से सवाल पूछेगी, जिसके जवाब राज करने वालों की नींद उड़ाते हैं।

ऐसी परिस्थिति में उनकी 'बदनीयती' के भंडार में वही शस्त्र हैं, जो लोगों को जज्बात में उकसा कर आपस में लड़ाए और चंद गुंडई वृति के लोग दहशत बना सकें। आजकल ऐसे लठैतों को सरकारी छत्र-छाया में पनपते आप देख पाएंगे।

ऐसे हालात में हम भगतसिंह से क्या सीखें। यह हमारा प्रश्न होना चाहिए।

भगत सिंह, बी.के. दत्त ने जब सोच-समझ कर फैसला किया कि उस वक्त अंग्रेज साम्राज्य से सीधी टक्कर ली जाए। वैचारक हमला किया जाए और दलील से साम्राज्य की चाल को जनता में नंगा किया जाए और केंद्रीय असैंबली में जोर का धमाका पैदा करने का प्रोग्राम बनाया।

इस नतीजे पर आने के लिए उन्होंने दुनिया के उन विचारों और तजुर्बे का खूब अनुसरण किया।

उस समय भगत सिंह का कहना था कि अंग्रेज साम्राज्य की मूल नीति देश को गुलाम रखने की, लूट को बेरोकटोक चलाने की है कि लोगों को उनके जम्हूरी अधिकारों से वंचित रखा जाए। भगतसिंह और उनके साथियों का मानना था कि आजादी को सार्थक करने के लिए तीन बातें प्रमुख हैं। एक क्रांतिकारी विचार का एक नारे के तौर पर लोगों में अनुसरण होगा, जिसके लिए 'साम्राज्य मुर्दाबाद-इन्कलाब जिंदाबाद' यानी इस द्वंद्ध को समझना कि लोगों के जीवन में इंकलाब तभी आएगा, अगर साम्राज्यी नीति का खात्मा हो।

याद रहे भगत सिंह के 2 फरवरी 1931 के राजनीतिक प्रोग्राम को नेताजी सुभाष ने पूरी गहराई से पढ़ा और गदर पार्टी की किरती किसान पार्टी से मिलकर 19 मार्च 1940 को आह्वान

किया था कि "साम्राज्य के साथ समझौता" नहीं करेंगे और केंद्रीय असैंबली व्यक्ति की आजादी को कुचलने और मजदूरों के इकट्ठे होने के अधिकार को छीनने के कानून पास करवाना चाहती थी, जिसका विरोध देश के चुने हुए लोग कर रहे थे, पर साम्राज्यवादी अंग्रेज सरकार बजिद्द थी। अध्यादेश से यह कानून पारित करना चाहती थी।

ठीक उसी वक्त भगतसिंह और बी.के. दत्त वहां पहुंचे और बड़े धमाके से अपना संदेश देश को और विदेश को सुना दिया।'**साम्राज्यवाद हो बरबाद-इन्कलाब जिंदाबाद।**' 'व्यक्ति की आजादी के बिना सम्पूर्ण आजादी नहीं हो सकती। लोगों के संगठित होने के अधिकार बिना लोकतंत्र नहीं चलता'

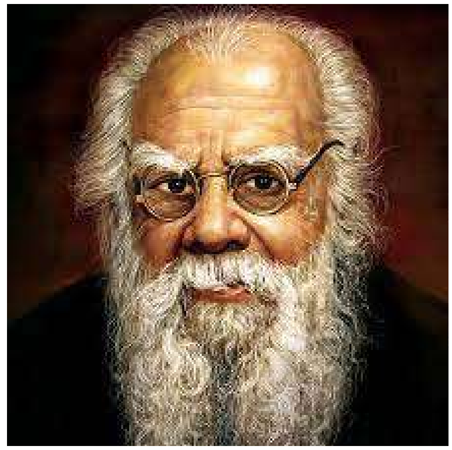
व्यक्ति की आजादी, उसके विचारों की आजादी, मुद्दे उठाने की आजादी नहीं तो लोकतंत्र खत्म। मजदूरों किसानों के संगठित होने पर रोक, उनको मुद्दे न उठाने देने पर रोक, लोकतंत्र का खात्मा।

जब लोकतंत्र कमजोर होगा, लोगों को जीवन जीने में मुश्किल होगी, राज्य अंधे राजा की तरह काम करेगा, तो उसके पास एक ही हथियार रह जाएगा। पूंजी की लूट को कायम रखने के लिए वह सरकारी तंत्र से और निजी गुंडा गिरोहों से डर खौफ पैदा करे, इसे ही फासीवाद कहते हैं।

तब हमें याद आता है, भगत सिंह का यह संदेश।

समाज जब संकट में होता है, तो 'भला चाहने वाले भले लोग' सामने आते हैं, जो कहते हैं आगे का मत सोचिए, मुंह और सोच पीछे घुमाइये और शांति में रहिए।

भगत सिंह आगे कहते हैं।"भला चाहने से लोगों की मुसीबतों का समाधान नहीं होता। समाधान के लिए एक वैज्ञानिक स्रोत से उत्सर्ग, सामाजिक, गतिशील शक्ति पैदा करने की जरूरत होती है।"



भगत सिंह पर रामास्वामी पेरियार

भगत सिंह की फाँसी के बाद रामास्वामी पेरियार ने अपने अखबार 'कुडई आरसु' में लिखे सम्पादकीय का अंश...

जिस दिन गाँधी जी ने यह कहा कि भगवान उनका मार्गदर्शन करता है, संसार को चलाने के लिए वर्णाश्रम एक श्रेष्ठ व्यवस्था है और जो कुछ होता है भगवान की इच्छा से होता है, उसी दिन हम इस निर्णय पर पहुँच गए थे कि गांधीवाद और ब्राह्मणवाद में कोई फर्क नहीं है। हमने यह भी निष्कर्ष निकाला था कि देश का भला तब तक हो सकता जब तक कांग्रेस पार्टी जो इस दर्शन और सिद्धांत पर चलती है, समाप्त न हो जाएँ। लेकिन अब यह तथ्य कम से कम कुछ लोग मानने लगे हैं, उनके पास ज्ञान और साहस आ गया है कि वे गांधीवाद के पतन के लिए प्रयास कर सके। यह हमारे उद्देश्य की महान सफलता है। यदि भगत सिंह को फांसी न दी गयी होती तो इतने लोकप्रिय ढंग इस विजय के आधार न होते। बल्कि हम तो यह बात कहने का जोखिम उठाते हैं कि यदि भगत सिंह को फांसी न हुई होती तो गांधीवाद को और ज़मीन मिली होती।

भगत सिंह बीमार पड़कर नहीं मरे, जैसा आम तौर पर लोगों के साथ होता है। उन्होंने न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व को वास्तविक समानता और शान्ति का मार्ग दिखाने के महान उद्देश्य के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। भगत सिंह एक ऐसी ऊंचाई पर पहुँच गए हैं जहाँ सामान्यतया कोई नहीं पहुँच पाया। हमें उनकी शहादत पर हृदय से गर्व है। साथ ही साथ हम सरकार में बैठे लोगों से यह प्रार्थना करते हैं कि वे हर सूबे में चार भगतसिंह जैसे सच्चे आदमी ढूंढें और फाँसी पर चढ़ा दें।

आज की परिस्थितियां यही संदेश दे रही हैं। भगतसिंह का यह भी संदेश है कि यह ताकत एकदम से नहीं बनती, इसके लिए आज की युवा पीढ़ी को, जिसका भविष्य खतरे में है, को शुरू करना होगा, जीवन-समझदारी का अंग बनाना होगा, जो तीन गुर अपने छोटे भाई को बताए थे।

''मेहनत से पढ़ने, सेहत का ख्याल रखना और हिम्मत से रहना'' और कहा था कि समाज में व्यक्ति के जीवन में मूल द्वंद्व है, ''बलवान होना और निर्बल होना।'' अहिंसा का भारतीय भाव है, मानसिक संवेदना से जिस के अंतर्गत हर जीव, जीवन, रुख की रक्षा के प्रति संवेदना है, उसकी रक्षा करता है। यह फिलासफी जैन मत की देन है।

बलवान होने का भाव है जो भगत सिंह ने अपने जीवन में अपनाया और हमारे सामने मिसाल रख दी।

स्वास्थ्य और शारीरिक बल, विचारों का बल, जिसमें इतिहास की दलील, समाज की दलील को समझना और गुरु रूपी विचारों को जीवन में उतारना और फिर इरादे का बल, अपने-आप में विश्वास पैदा करना, मुश्किल से मुश्किल काम के करने की हिम्मत करना, फिर-फिर हिम्मत करना, असफलताओं से सीखते हुए, जब तक कामयाब न हो जाएं।

और इसके साथ संगठित होकर सामाजिक बल पैदा करना।

एक बात और समझने की जरूरत है। आपको बलहीन रखने का एक तंत्र है आधे सच से बरगलाना और आपके मन में शंका पैदा करना, जिसमें आज का टैक्नोलोजीकल तंत्र इसके लिए बहुत काम में लाया जा रहा है। शंका बड़े-से-बड़े समझदार को मानसिक दुविधा में डाल देगी और कमजोर कर देगी। इसका समाधान है कि किसी ने कह दिया और आंखें मूंधे आपने मान लिया, तो आप कमजोर हो गए।

इसीलिए भगत सिंह ने कहा कि नौजवानों अपने पांव पर चलना सीखो। हर बात को तर्क की कसौटी पर परख के समझदारी से अपनाओ। जोश और होश को एक साथ लेकर चलो। अपने अंदर की अथाह शक्ति को पहचानो। यह भगत सिंह का चुनिंदा शेर आपके लिए

कमाले बुजदिली है अपनी ही आंखों में पस्त होना,
गर थोड़ी सी हिम्मत हो तो क्या कुछ हो नहीं सकता
उठने ही नहीं देती यह दुचितियां मन की नहीं,
तो कौन सा कतरा है, जो दरिया नहीं हो सकता।

लेखक अर्थशास्त्री व भगतसिंह के भानजे हैं।

सम्पर्क: 9814001836

■

जनक राज शर्मा की रागनी

गांव-डिंग, जिला सिरसा। मो: 9416491566

(भगत सिंह अपने चाचा को खेत में दाने बोते देख कर अपनी खिलौना बंदूक बोने लगा तथा चाचा से कहने लगा कि मेरी भी बहुत सी बंदूके हो जाएंगी, तब मैं अंग्रेजों को मार कर देश से निकाल दूंगा। इसी प्रसंग को वह आकर अपने बड़े भाई को बताता है।)

भाई र मेरा कालजा धड्क्या
बोरह्या था बन्दूक खेत में आज तेरा लड़का। टेक।

छोटे-छोटे बालकां की टोली सी बणावै था
इन्कलाब जिन्दाबाद बोली भी सुणावै था
माट्टी नै यो घोळ गोळ गोली सी बणावै था
काढ कै नै अंग्रेजों को देश को आजाद करूँ
मारूंगा सीने पै गोळी कोन्या फरियाद करूँ
झाँसी आळी रांणी तन्ने रोजाना मै याद करूँ
गात तेरी याद में फड़क्या,
पढ़के न इतिहास तेरा मेरे भोत घणा रड़क्या

विदेशों में जाके चाचा ऐसी तो पढाई करूं
अंग्रेजां ने मारण खातर फौज से चढ़ाई करूं
देख कै अचम्भा मानैं ऐसी तो लड़ाई करूं
दैर्‌या था जबाब जाणु जाण गया सारी र
मुड़ मुड़ पूछ रह्या क्यूकर सेना हारी र
मुट्ठी भर अंग्रेज सारे बाकी जनता म्हारी र
शेर जाणु जंगल म्हं कड़क्या,
मारूंगा गद्दार साथ म्हं भेद खुल्या जड़का

शादी ना कराऊँ चाचा सौंप दिया तन मन
आजादी को ब्याह के ल्याऊं वाही मेरी दुल्हन
तोड़ूंगा जंजीर माँ की करूंगा इस्या जतन
हिन्दुस्तान सारा म्हारा एक परिवार है
कोण थारा कोण म्हारा न्यारा घर बार है
गूंगी बहरी विदेशी यहाँ अंग्रेजी सरकार है
करूँगा इंगे कान में खड़का,
खून बहे बिन उगे नहीं आजादी का तड़का

बड्डा होके लोगो उसने ऊंचा किया मां का भाल
धन धन जननी वा जिसने जाम्या ऐसा लाल
वाह र वाह भगत सिंह डर्‌या नही पाया काल
छोटी सी उमर में वो फांसी ऊपर झूल गया
आजादी की बीण पे वो नाग की ज्यू टूल गया
ऐसे ऐसे वीरां ने के हिन्दुस्तान भूल गया
वो सब की हीक म्हं गड्ड गया,
गीत लिखण का चाव जनक तन्ने बचपन में चढ़ग्या

अछूत समस्या

भगतसिंह

काकीनाडा में 1923 मे कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे आजकल की अनुसूचित जातियों को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिन्दू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। उसी समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगतसिंह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिंह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में विद्रोही नाम से प्रकाशित हुआ था।

हमारे देश- जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जाएगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज हो उठेंगे! कुएं से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जाएगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किए जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटा कर क्रांति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस जोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जाएगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन श्री नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में खूब कहा-

"If the Hundu society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public school, and if the president of local board representing so many lakhs of people in this house refuses to allow his fellows and brothers the elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureaucracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people. How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights of human beings."

वे कहते हैं कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इनकार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते हो तो तुम अधिक राजनीतिक अधिकार माँगने के अधिकारी कैसे बन गए?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिन्दू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बना कर अपने में शामिल करना चाहते हैं।

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जाएंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इन्सानों-जैसा व्यवहार किया जाएगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दू कौम को नुकसान पहुँचा

रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुन कर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिन्दुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ-न-कुछ इस मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगांतरकारी' कहे जानेवाले भी शामिल हुए। पटना में हिन्दू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय- जो कि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं- की अध्यक्षता में हुआ, तो जोरदार बहस छिड़ी। अच्छी नोंक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक है अथवा नहीं? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लालाजी ने सबको सहमत कर दिया तथा यह दो बातें स्वीकृत कर हिन्दू धर्म की लाज रख ली। वरना जरा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में निःसंग फिरता है, लेकिन एक इन्सान का हमसे स्पर्श हो जाए तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस समय मालवीय जी जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं! क्या खूब यह चाल है! सबको प्यार करनेवाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है! भगवान रुष्ट हो जाता है! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पाई जाती है। जो निम्नतम काम करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं उन्हें ही हम दुरदुराते हैं। पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इन्सान को पास नहीं बिठा सकते!

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ जरूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी कौमों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सबको हुई। मुस्लिमों ने जरा ज्यादा जोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बना कर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिए। इससे हिन्दुओं के अहम को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फसाद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों ने भी सोचा कि हम पीछे न रह जायें। उन्होंने भी अमृत छकाना आरम्भ कर दिया। हिंदू-सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों कौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही है। इसका बहुत शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश के दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि

घर को अलविदा पिता जी के नाम पत्र

सन् 1923 में भगतसिंह, नेशनल कालेज, लाहौर के विद्यार्थी थे। जन-जागरण के लिए ड्रामा-क्लब में भी भाग लेते थे। क्रांन्तिकारी अध्यापकों और साथियों से नाता जुड़ गया था। भारत को आजादी कैसे मिले, इस बारे में लम्बा-चौड़ा अध्ययन और बहसें जारी थीं।

घर में दादी जी ने अपने पोते की शादी की बात चलाई। उनके सामने अपना तर्क न चलते देख पिता जी के नाम यह पत्र लिख छोड़ा और कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी के पास पहुँचकर 'प्रताप' में काम शुरू कर दिया। वहीं बी. के. दत्त, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा जैसे क्रान्तिकारी साथियों से मुलाकात हुई। उनका कानपुर पहुंचना क्रांति के रास्ते पर एक बड़ा कदम बना। पिता जी के नाम लिखा गया भगतसिंह का यह पत्र घर छोड़ने सम्बन्धी उनके विचारों को सामने लाता है।

पूज्य पिता जी,

नमस्ते।

मेरी जिन्दगी मकसदे आला[1] यानी आज़ादी-ए-हिन्द के असूल[2] के लिए वक्फ[3] हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी खाहशात[4] बायसे कशिश[5] नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन[6] के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएँगे।

आपका ताबेदार,

भगतसिंह

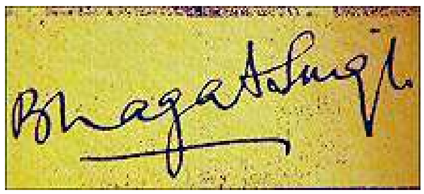
1. उच्च उद्देश्य 2. सिद्धान्त 3. दान 4. सांसारिक इच्छाएँ 5. आकर्षक 6. देश-सेवा

उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी खुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जाएं? इस विचार के अमल में अंग्रेजी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफी हाथ था।' आदि धर्म मण्डल जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जबाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात् क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कह कर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है?चुपचाप दिन गुजारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गए। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गई। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुननेवाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू. पी. की तरफ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें



भगत सिंह के हस्ताक्षर

अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा नौजवान कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है वह काफी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमायाचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने जैसा इन्सान समझना, बिना अमृत छकाए, बिना कलमा पढ़ाए या शुद्धि किए उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना,यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मजदूर-प्रचार शुरू हुआ उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझा कर भड़काते थे कि देखो, यह भंगी-चमारों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बंद करवाएंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गए। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन गरीबों को नीच और कमीन कह कर अपनी जूती के नीचे दबाए रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वह साफ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ है- वे गरीब हैं। गरीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के गरीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत कौमें अपने आपको संगठित न कर लें। हम तो समझते हैं कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत हैं। या तो साम्प्रदायिक भेद का झंझट ही खत्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्तव्य है कि वे स्कूल-कालेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलाएं। जबानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ाएं। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलाएं। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव में बालविवाह के विरुद्ध पेश किए बिल तथा मजहब के बहाने हाय-तौबा मचाई जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो,अछूत कहलानेवाले असली जनसेवको तथा भाइयो! उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियां स्वर्णाक्षरों

में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिन्दगी संभव बना कर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलियेनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं- उठो, अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिश किए बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow.) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहनेवालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गई हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाए रखना चाहता है। कहावत है- 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते। अर्थात् संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो...संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जाएंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रांति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रांति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोए हुए शेरो! उठो और बगावत खड़ी कर दो।

■

शहादत से पहले

साथियों को अन्तिम पत्र

22 मार्च, 1931

साथियो,

स्वाभाविक है कि जीने की इच्छा मुझमें भी होनी चाहिए, मैं इसे छिपाना नहीं चाहता। लेकिन एक शर्त पर जिंदा रह सकता हूँ,कि मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जीना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी क्रांति का प्रतीक बन चुका है और क्रांतिकारी दल के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊँचा उठा दिया है- इतना ऊँचा कि जीवित रहने की स्थिति में इससे ऊँचा मैं हर्गिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियाँ जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वे जाहिर हो जाएँगी और क्रांति का प्रतीक चिन्ह मद्धिम पड़ जाएगा या संभवत: मिट ही जाए। लेकिन दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते मेरे फाँसी चढ़ने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए कुर्बानी देने वालों की तादाद इतनी बढ़ जाएगी कि क्रांति को रोकना साम्राज्यवाद या तमाम शैतानी शक्तियों के बूते की बात नहीं रहेगी।

हाँ, एक विचार आज भी मेरे मन में आता है कि देश और मानवता के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवाँ भाग भी पूरा नहीं कर सका। अगर स्वतन्त्र, जिंदा रह सकता तब शायद उन्हें पूरा करने का अवसर मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता। इसके सिवाय मेरे मन में कभी कोई लालच फाँसी से बचे रहने का नहीं आया। मुझसे अधिक भाग्यशाली कौन होगा? आजकल मुझे स्वयं पर बहुत गर्व है। अब तो बड़ी बेताबी से अंतिम परीक्षा का इन्तजार है। कामना है कि यह और नजदीक हो जाए।

आपका साथी

भगतसिंह

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

भगत सिंह

1919 के जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरु किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रांन्तिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के 'किरती' में छपा।

भारत वर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिन्दू होना मुस७लमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नजर आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सब के सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रौब को कायम रखने के लिए डण्डे लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर-फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने आ जाता है।

यहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज्य-स्वराज्य' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठने वालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो साम्प्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं। और साम्प्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, अखबार वाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय, किसी समय बहुत ऊंचा समझा जाता था। आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक बहुत कम है जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शान्त रहा हो।

अखबारों का असली कर्त्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आंखों से

छोटे भाई कुलतार के नाम अन्तिम पत्र

सेंट्रल जेल, लाहौर,
3 मार्च, 1931
अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर बहुत दुख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आंसू मुझसे सहन नहीं होते।
बरखुर्दार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और क्या कहूँ!

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े-ज़फा क्या है,
हमे यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों खफ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूं ऐ अहले-महफ़िल,
चरागे़-सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।

अच्छा रुख्सत। खुश रहो अहले-वतन; हम तो सफ़र करते हैं। हिम्मत से रहना।
नमस्ते।
तुम्हारा भाई,
भगतसिंह

रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतन्त्रता की झलक सामने दिखाई देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी वही नौकरशाही आज अपनी जड़ें इतनी मजबूत कर चुकी हैं कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन साम्प्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं व पत्रकारों ने ढेरों कुर्बानियां दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया जिससे आजकल के बहुत से साम्प्रदायिक नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धान्तों में से यह एक मुख्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के कारण ही तबलीग, तनकीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है दरअसल भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता। लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिये और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की सांस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियां थीं, वहां भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर

जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इन्सान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियन के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन् सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्गचेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं। उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से-हिन्दू, मुसलमान या सिख रूप में नहीं, वरन् सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है। भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए। उन्हें यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, और दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते है। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमे बचा लेंगे।

■

मुकेश यादव की रागनी

भगत सिंह मेरे पूत लाडले, या तै अजब कहाणी होगी रे।
फांसी का दिया हुकम सुणा, या तै मोटी हाणी होगी रे।।

मूधे घड़े पड़े सै घर म्हं, सब चुपकै-चुपकै डोलैं रे
आंख मिलाकै बात करै ना, ना कोए किसे तै बोल्लै रे
छुप-छुपकै नै रोवैं सारे, क्यां ए क्यां ए कै ओल्है रै
भीतर ले म्हं दर्द कसूता, यो म्हारा काळजा छोल्लै रै
तेरे चाचा नै ना भूले थे, या तै कुणबा घाणी होगी रे

नौ महीने तक बोझ मरी थी, क्यूकर भूलूं लाल तनै
मिलण जरूरी आवूंगी चाहे आज मिलूं चाहे काल तनै
घर तै लिकड़े हुए लाडले, बीत गए कई साल तनै
गौरा जालिम छोडै ना, यो मारैगा हर हाल तनै
हे र दु:ख की उठै झाल मनै, मैं मां मर जाणी होगी रे

या तै सारे देश म्हं चल माची, सूने डेरे होगे रे
जालिम गौरे के जुल्मा के, घर-घर बेरे होगे रे
तनै छुडावन खातिर हिन्द के, खड़े कमेरे होगे रे
पहरे करड़े करे चौगरदे, घोर अंधेरे होगे रे
तेरी कुर्बानी ना खाली जाणी, या तै जनता स्याणी होगी रे

23 साल की उम्र लाल मेरे, मोटा चाळा होगा रे
केळे जैसा गात लटक कै, क्यूकर काळा होगा रे
न्यू तै मेरै भी जचगी ना, फांसी का टाळा होगा रे
तेरी कुर्बानी तै आजादी का, ठाडा पाळा होगा रे
'मुकेश' कह या तेरी शहादत, नहीं भुलाणी होगी रे

मो: 9416916596

पिताजी के नाम पत्र

भगतसिंह

30 सितम्बर, 1930 को भगतसिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने ट्रिब्यूनल को एक अर्जी देकर बचाव पेश करने के लिए अवसर की माँग की। सरदार किशनसिंह स्वयं देशभक्त थे। उन्हें व कुछ अन्य देशभक्तों को लगता था कि शायद बचाव-पक्ष पेश कर भगतसिंह को फाँसी के फन्दे से बचाया जा सकता है, लेकिन भगतसिंह और उनके साथी बिल्कुल अलग नीति पर चल रहे थे। उनके अनुसार, ब्रिटिश सरकार बदला लेने की नीति पर चल रही है व न्याय सिर्फ ढकोसला है। किसी भी तरीके से उसे सजा देने से रोका नहीं जा सकता। उन्हें लगता था कि यदि इस मामले में कमजोरी दिखायी गयी तो जन-चेतना में अंकुरित हुआ क्रांति-बीज स्थिर नहीं हो पायेगा। पिता द्वारा दी गयी अर्जी से भगतसिंह की भावनाओं को भी चोट लगी थी, लेकिन अपनी भावनाओं को नियन्त्रित कर अपने सिद्धान्तों पर जोर देते हुए उन्होंने 4 अक्तूबर, 1930 को यह पत्र लिखा जो उनके पिता को देर से मिला।

4 अक्तूबर, 1930

पूज्य पिता जी,

मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि आपने मेरे बचाव-पक्ष के लिए स्पेशल ट्रिब्यूनल को एक आवेदन भेजा है। यह खबर इतनी यातनामय थी कि मैं इसे खामोशी से बर्दाश्त नहीं कर सका। इस खबर ने मेरे भीतर की शान्ति भंग कर उथल-पुथल मचा दी है। मैं यह नहीं समझ सकता कि वर्तमान स्थितियों में और इस मामले पर आप किस तरह का आवेदन दे सकते हैं?

आपका पुत्र होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं और इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूँ लेकिन इसके बावजूद मैं समझता हूँ कि आपको मेरे साथ सलाह-मशविरा किये बिना ऐसे आवेदन देने का कोई अधिकार नहीं था। आप जानते थे कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे काफी अलग हैं। मैं आपकी सहमति या असहमति का ख्याल किये बिना सदा स्वतन्त्रतापूर्वक काम करता रहा हूँ।

मुझे यकीन है कि आपको यह बात याद होगी कि आप आरम्भ से ही मुझसे यह बात मनवा लेने की कोशिशें करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा संजीदगी से लड़ूँ और अपना बचाव ठीक से प्रस्तुत करूँ, लेकिन आपको यह भी मालूम है कि मैं सदा इसका विरोध करता रहा हूँ। मैंने कभी भी अपना बचाव करने की इच्छा प्रकट नहीं की और न ही मैंने कभी इस पर संजीदगी से गौर किया है।

आप जानते हैं कि हम एक निश्चित नीति के अनुसार मुकदमा लड़ रहे हैं। मेरा हर कदम इस नीति, मेरे सिद्धान्तों और हमारे कार्यक्रम के अनुरूप होना चाहिए। आज स्थितियाँ बिल्कुल अलग हैं। लेकिन अगर स्थितियाँ इससे कुछ और भी अलग होतीं तो भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता जो बचाव प्रस्तुत करता। इस पूरे मुकदमे में मेरे सामने एक ही विचार था और वह यह कि हमारे विरुद्ध जो संगीन आरोप लगाये गए हैं, बावजूद उनके हम पूर्णतया इस सम्बन्ध में अवहेलना का व्यवहार करें। मेरा नजरिया यह रहा है कि सभी राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी स्थितियों में उपेक्षा दिखानी चाहिए और उनको जो भी कठोरतम सजा दी जाए, वह उन्हें हँसते-हँसते बर्दाश्त करनी चाहिए। इस पूरे मुकदमे के दौरान हमारी योजना इसी सिद्धान्त के अनुरूप रही है। हम ऐसा करने में सफल हुए या नहीं, यह फैसला करना मेरा काम नहीं। हम खुदगर्जी को त्यागकर अपना काम कर रहे हैं।

वाइसराय ने लाहौर साजिश केस आर्डिनेंस जारी करते हुए इसके साथ जो वक्तव्य दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि इस साजिश के मुजरिम शान्ति व्यवस्था को समाप्त करने के प्रयास कर रहे हैं। इससे जो हालात पैदा हुए उसने हमें यह मौका दिया कि हम जनता के समक्ष यह बात प्रस्तुत करें कि वह स्वयं देख ले कि शान्ति-व्यवस्था एवं कानून समाप्त करने की कोशिशें हम कर रहे हैं या हमारे विरोधी? इस बात पर मतभेद हो सकते हैं। शायद आप भी उनमें से एक हों जो इस बात पर मतभेद रखते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप मुझसे सलाह किए बिना मेरी ओर से ऐसे कदम उठाएं। मेरी जिन्दगी इतनी कीमती नहीं जितनी कि आप सोचते हैं। कम-से-कम मेरे लिए तो इस जीवन की इतनी कीमत नहीं कि इसे सिद्धान्तों को कुर्बान करके बचाया जाए। मेरे

अलावा मेरे और साथी भी हैं जिनके मुकदमे इतने ही संगीन हैं जितना कि मेरा मुकदमा। हमने एक संयुक्त योजना अपनायी है और उस योजना पर हम अन्तिम समय तक डटे रहेंगे। हमें इस बात की कोई परवाह नहीं कि हमें व्यक्तिगत रूप में इस बात के लिए कितना मूल्य चुकाना पड़ेगा।

पिता जी, मैं बहुत दुख का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे भय है,आप पर दोषारोपण करते हुए या इससे बढ़कर आपके इस काम की निन्दा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की सीमाएँ न लाँघ जाऊँ और मेरे शब्द ज्यादा सख्त न हो जायें। लेकिन मैं स्पष्ट शब्दों में अपनी बात अवश्य कहूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति मुझसे ऐसा व्यवहार करता तो मैं इसे गद्दारी से कम न मानता, लेकिन आपके सन्दर्भ में मैं इतना ही कहूँगा कि यह एक कमजोरी है– निचले स्तर की कमजोरी।

यह एक ऐसा समय था जब हम सबका इम्तिहान हो रहा था। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप इस इम्तिहान में नाकाम रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आप भी इतने ही देशप्रेमी हैं, जितना कि कोई और व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आपने अपनी पूरी जिन्दगी भारत की आजादी के लिए लगा दी है, लेकिन इस अहम मोड़ पर आपने ऐसी कमजोरी दिखाई, यह बात मैं समझ नहीं सकता।

अन्त में मैं आपसे, आपके अन्य मित्रों एवं मेरे मुकदमे में दिलचस्पी लेनेवालों से यह कहना चाहता हूँ कि मैं आपके इस कदम को नापसन्द करता हूँ। मैं आज भी अदालत में अपना कोई बचाव प्रस्तुत करने के पक्ष में नहीं हूँ। अगर अदालत हमारे कुछ साथियों की ओर से स्पष्टीकरण आदि के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन को मंजूर कर लेती, तो भी मैं कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत न करता।

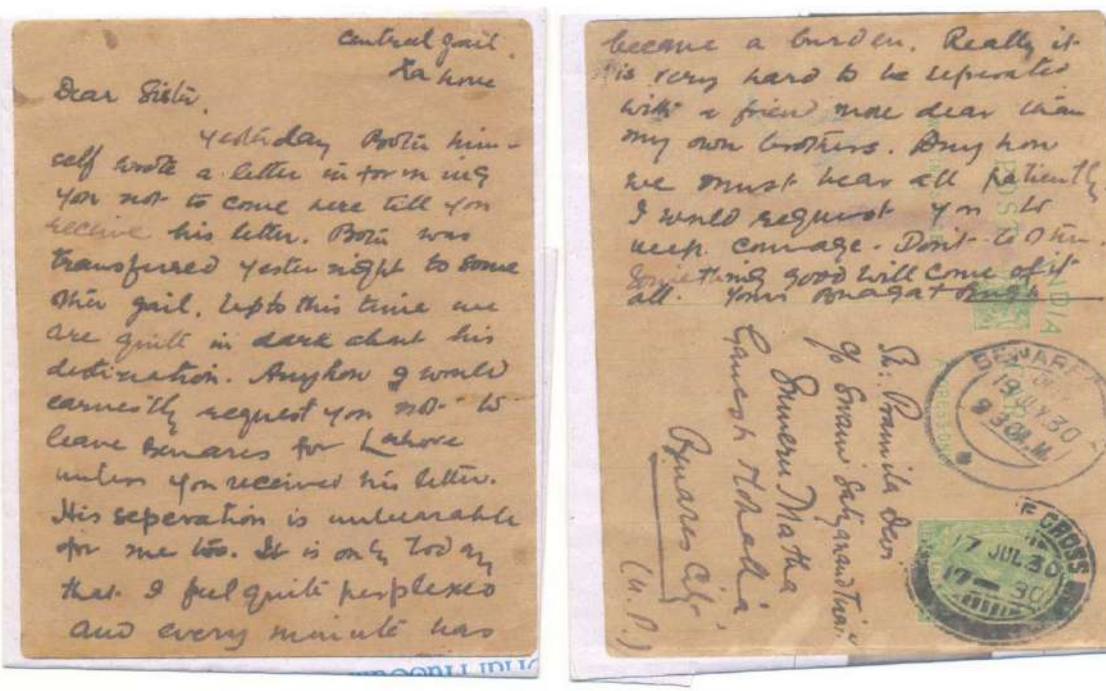
भूख हड़ताल के दिनों में ट्रिब्यूनल को जो आवेदन पत्र मैंने दिया था और उन दिनों में जो साक्षात्कार दिया था उन्हें गलत अर्थों में समझा गया है और अखबारों में यह प्रकाशित कर दिया गया कि मैं अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ, हालाँकि मैं हमेशा स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के विरोध में रहा। आज भी मेरी वही मान्यता है जो उस समय थी।

बोर्सटल जेल में बन्दी मेरे साथी इस बात को मेरी ओर से गद्दारी और विश्वासघात ही समझ रहे होंगे। मुझे उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं मिल सकेगा।

मैं चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में जो उलझनें पैदा हो गयी हैं,उनके विषय में जनता को असलियत का पता चल जाए। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जल्द–से–जल्द यह चिट्ठी प्रकाशित कर दें।

आपका आज्ञाकारी,
भगतसिंह

भगत सिंह का बटुकेश्वर दत्त की बहन प्रोमिला को पत्र


Central Jail,
Lahore

Dear Sister,

Yesterday Batu himself wrote a letter informing you not to come here till you receive his letter. Batu was transferred yester night to some other jail. Upto this time we are quite in dark about his destination. Anyhow I would earnestly request you not to leave Benares for Lahore unless you received his letter. His seperation is unbearable for me too. It is only today that I feel quite perplexed and every minute has become a burden. Really it is very hard to be seperated with a friend more dear than my own brothers. Anyhow we must bear all patiently. I would request you to keep courage. Don't bother. Something good will come of it all.

Yours Bhagat Singh

भगत सिंह का पत्र सुखदेव के नाम

जब असेंबली में बम फेंकने की योजना बन रही थी तो भगत सिंह को दल की जरूरत बताकर साथियों ने उन्हें यह जिम्मेदारी सौंपने से इंकार कर दिया। भगत सिंह के अंतरंग मित्र सुखदेव ने उन्हें ताना मारा कि तुम मरने से डरते हो। इस आरोप से भगत सिंह का हृदय रो उठा और उन्होंने दोबारा दल की मीटिंग बुलाई और असेंबली में बम फेंकने का जिम्मा जोर देकर अपने नाम करवाया। आठ अप्रैल, 1929 को असेंबली में बम फेंकने से पहले सम्भवत: 5 अप्रैल को दिल्ली के सीताराम बाजार के घर में उन्होंने सुखदेव को यह पत्र लिखा था जिसे शिव वर्मा ने उन तक पहुँचाया। यह 13 अप्रैल को सुखदेव के गिरफ्तारी के वक्त उनके पास से बरामद किया गया और लाहौर षड्यंत्र केस में सबूत के तौर पर पेश किया गया।

प्रिय भाई,

जैसे ही यह पत्र तुम्हें मिलेगा, मैं जा चुका हूंगा–दूर एक मंजिल की तरफ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आज बहुत खुश हूं। हमेशा से ज्यादा। मैं यात्रा के लिए तैयार हूं, अनेक–अनेक मधुर स्मृतियों के होते और अपने जीवन की सब खुशियों के होते भी, एक बात जो मेरे मन में चुभ रही थी कि मेरे भाई, मेरे अपने भाई ने मुझे गलत समझा और मुझ पर बहुत ही गंभीर आरोप लगाए–कमजोरी का। आज मैं पूरी तरह संतुष्ट हूं। पहले से कहीं अधिक। आज मैं महसूस करता हूं कि वह बात कुछ भी नहीं थी, एक गलतफहमी थी। मेरे खुले व्यवहार को मेरा बातूनीपन समझा गया और मेरी आत्मस्वीकृति को मेरी कमजोरी। मैं कमजोर नहीं हूं। अपनों में से किसी से भी कमजोर नहीं।

भाई! मैं साफ दिल से विदा होऊंगा। क्या तुम भी साफ होगे? यह तुम्हारी बड़ी दयालुता होगी, लेकिन ख्याल रखना कि तुम्हें जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। गंभीरता और शांति से तुम्हें काम को आगे बढ़ाना है, जल्दबाजी में मौका पा लेने का प्रयत्न न करना। जनता के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य है, उसे निभाते हुए काम को निरंतर सावधानी से करते रहना।

सलाह के तौर पर मैं कहना चाहूंगा की शास्त्री मुझे पहले से ज्यादा अच्छे लग रहे हैं। मैं उन्हें मैदान में लाने की कोशिश करूंगा,बशर्ते की वे स्वेच्छा से, और साफ साफ बात यह है की निश्चित रूप से, एक अंधेरे भविष्य के प्रति समर्पित होने को तैयार हों। उन्हें दूसरे लोगों के साथ मिलने दो और उनके हाव–भाव का अध्यन्न होने दो। यदि वे ठीक भावना से अपना काम करेंगे तो उपयोगी और बहुत मूल्यवान सिद्ध होंगे। लेकिन जल्दी न करना। तुम स्वयं अच्छे निर्णायक होगे। जैसी सुविधा हो, वैसी व्यवस्था करना। आओ भाई, अब हम बहुत खुश हो लें।

खुशी के वातावरण में मैं कह सकता हूं कि जिस प्रश्न पर हमारी बहस है, उसमें अपना पक्ष लिए बिना नहीं रह सकता। मैं पूरे जोर से कहता हूं कि मैं आशाओं और आकांक्षाओं से भरपूर हूं और जीवन की आनंदमयी रंगीनियों से ओत–प्रोत हूं, पर आवश्यकता के वक्त सब कुछ कुर्बान कर सकता हूं और यही वास्तविक बलिदान है। ये चीजें कभी मनुष्य के रास्ते में रुकावट नहीं बन सकतीं, बशर्ते कि वह मनुष्य हो। निकट भविष्य में ही तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाएगा।

किसी व्यक्ति के चरित्र के बारे में बातचीत करते हुए एक बात सोचनी चाहिए कि क्या प्यार कभी किसी मनुष्य के लिए सहायक सिद्ध हुआ है? मैं आज इस प्रश्न का उत्तर देता हूं, हां, यह मेजिनी था। तुमने अवश्य ही पढ़ा होगा की अपनी पहली विद्रोही असफलता, मन को कुचल डालने वाली हार, मरे हुए साथियों की याद वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। वह पागल हो जाता या आत्महत्या कर लेता, लेकिन अपनी प्रेमिका के एक ही पत्र से वह, यही नहीं कि किसी एक से मजबूत हो गया, बल्कि सबसे अधिक मजबूत हो गया।

जहां तक प्यार के नैतिक स्तर का संबंध है, मैं यह कह सकता हूं कि यह अपने में कुछ नहीं है, सिवाए एक आवेग के, लेकिन यह पाशविक वृत्ति नहीं, एक मानवीय अत्यंत मधुर भावना है। प्यार अपने आप में कभी भी पाशविक वृत्ति नहीं है। प्यार तो हमेशा मनुष्य के

चरित्र को ऊपर उठाता है। सच्चा प्यार कभी भी गढ़ा नहीं जा सकता। वह अपने ही मार्ग से आता है, लेकिन कोई नहीं कह सकता कि कब?

हां, मैं यह कह सकता हूँ कि एक युवक और एक युवती आपस में प्यार कर सकते हैं और वे अपने प्यार के सहारे अपने आवेगों से ऊपर उठ सकते हैं, अपनी पवित्रता बनाये रख सकते हैं। मैं यहां एक बात साफ कर देना चाहता हूँ की जब मैंने कहा था की प्यार इंसानी कमजोरी है, तो यह एक साधारण आदमी के लिए नहीं कहा था, जिस स्तर पर कि आम आदमी होते हैं। वह एक अत्यंत आदर्श स्थिति है, जहां मनुष्य प्यार-घृणा आदि के आवेगों पर काबू पा लेगा, जब मनुष्य अपने कार्यों का आधार आत्मा के निर्देश को बना लेगा, लेकिन आधुनिक समय में यह कोई बुराई नहीं है, बल्कि मनुष्य के लिए अच्छा और लाभदायक है। मैंने एक आदमी के एक आदमी से प्यार की निंदा की है, पर वह भी एक आदर्श स्तर पर। इसके होते हुए भी मनुष्य में प्यार की गहरी भावना होनी चाहिए, जिसे की वह एक ही आदमी में सीमित न कर दे बल्कि विश्वमय रखे।

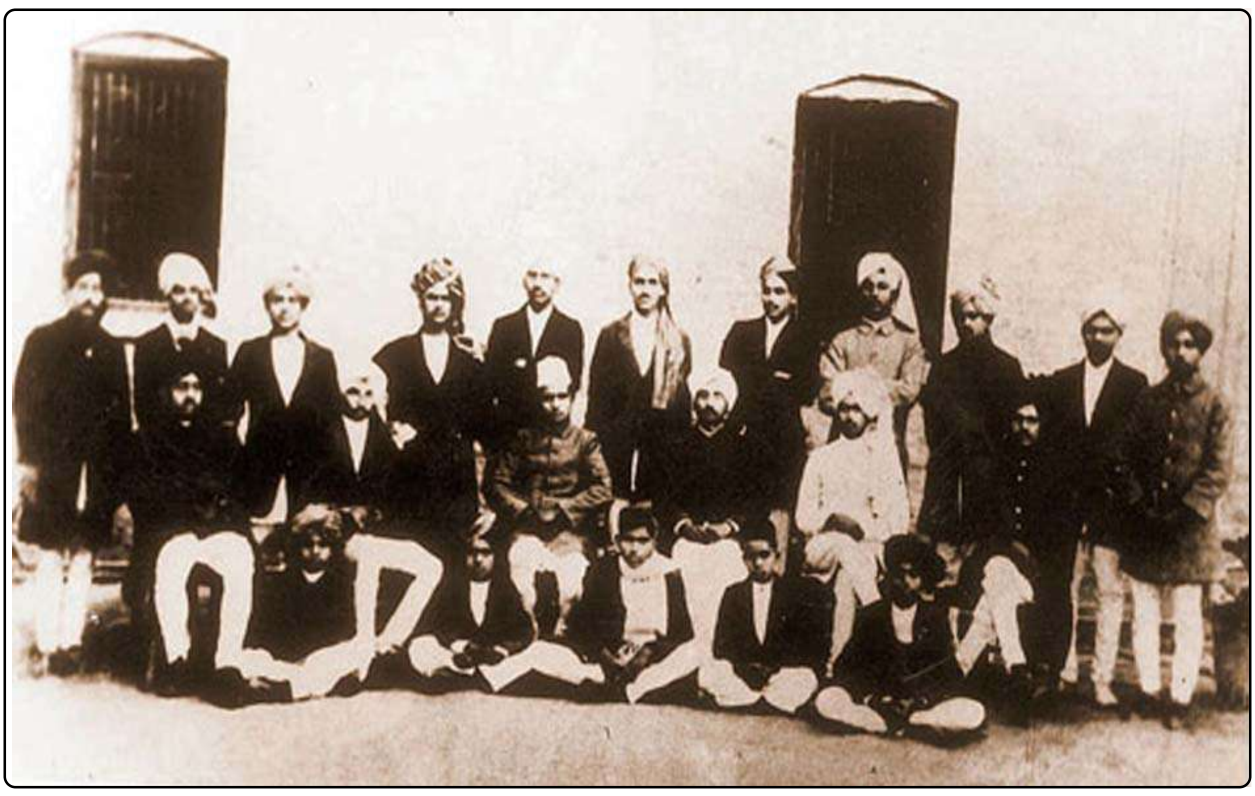
मैं सोचता हूं, मैंने अपनी स्थिति अब स्पष्ट कर दी है.एक बात मैं तुम्हे बताना चाहता हूं की क्रांतिकारी विचारों के होते हुए हम नैतिकता के सम्बन्ध में आर्यसमाजी ढंग की कट्टर धारणा नहीं अपना सकते। हम बढ़-चढ़ कर बात कर सकते हैं और इसे आसानी से छिपा सकते हैं, पर असल जिंदगी में हम झट थर-थर कांपना शुरू कर देते हैं।

मैं तुम्हे कहूंगा की यह छोड़ दो। क्या मैं अपने मन में बिना किसी गलत अंदाज के गहरी नम्रता के साथ निवेदन कर सकता हूं की तुममें जो अति आदर्शवाद है, उसे जरा कम कर दो। और उनकी तरह से तीखे न रहो, जो पीछे रहेंगे और मेरे जैसी बिमारी का शिकार होंगे। उनकी भर्त्सना कर उनके दुखों-तकलीफों को न बढ़ाना। उन्हें तुम्हारी सहानभूति की आवश्यकता है।

क्या मैं यह आशा कर सकता हूं कि किसी खास व्यक्ति से द्वेष रखे बिना तुम उनके साथ हमदर्दी करोगे, जिन्हें इसकी सबसे अधिक जरूरत है? लेकिन तुम तब तक इन बातों को नहीं समझ सकते जब तक तुम स्वयं उस चीज का शिकार न बनो। मैं यह सब क्यों लिख रहा हूं? मैं बिल्कुल स्पष्ट होना चाहता था। मैंने अपना दिल साफ कर दिया है। तुम्हारी हर सफलता और प्रसन्न जीवन की कामना सहित,

तुम्हारा भाई
भगत सिंह

■



हिन्दी सिनेमा यात्रा और भगत सिंह

प्रदीप कुमार तिवारी

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के नायकों की लोकप्रियता पर यदि गौर करें, तो भगतसिंह एक ऐसा नाम है, जिनको देश का हर वर्ग हर व्यक्ति दिली तौर पर उन्हें पसंद करता है और उनका सम्मान करता है। हर दिल-अजीज होने के कारण हिन्दी सिनेमा में यदि किसी स्वतंत्रता नायक पर सर्वाधिक बायोपिक फिल्में बनी तो वह भगतसिंह ही हैं। हिन्दी में बोलती हुई फिल्मों की शुरुआत उसी दौर में होती है, जिस वर्ष भगतसिंह शहीद हुए थे। 1931 में भगत सिंह को फांसी दी गई और 1931 में ही हिन्दी की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' प्रदर्शित हुई। भगतसिंह की शहादत ने पूरे ब्रिटिश भारत को उद्वेलित किया था और वे जनमानस में एक नायक के रूप में उभर कर सामने आए थे।

15 अगस्त 1947 में देश की आजादी के ठीक एक साल बाद सन् 1948 में निर्देशक रमेश सहगल ने भगत सिंह के जीवन पर पहली फिल्म बनाई -'शहीद'। इस फिल्म में भगत सिंह की भूमिका में थे दिलीप कुमार तथा कामिनी कौशल सहयोगी भूमिका में थी। इसका निर्माण फिल्मिस्तान स्टूडियो द्वारा किया गया था। इस फिल्म में राजा मेंहदी अली खां साहब द्वारा लिखा गया यादगार गीत, 'वतन की राह में वतन के नौजवां शहीद हों....।' फिल्माया गया। यह इस फिल्म का एक मात्र देशभक्ति गीत था, बाकी सभी गीत नायिका प्रधान थे।

भगत सिंह के जीवन पर आधारित दूसरी फिल्म का प्रदर्शन सन् 1954 में हुआ। इस फिल्म का नाम था 'शहीद-ए-आजम भगत सिंह'। इसका निर्देशन जगदीश गौतम ने किया था और इस फिल्म में मुख्य भूमिकाओं में थे प्रेम अदीब, जयराज और स्मृति विश्वास। इस फिल्म में पहली बार पं. राम प्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखा गया कालजयी गीत 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है...' का फिल्मांकन किया गया था और इस गीत को अपनी मकबूल आवाज से सजाया था मोहम्मद रफी साहब ने। इसके बाद सन् 1963 में के.एन. बंसल द्वारा निर्देशित फिल्म 'शहीद भगतसिह' रिलीज हुई। इसमें भगतसिंह की भूमिका शम्मी कपूर ने निभाई थी। शम्मी कपूर के अलावा शकीला, प्रेमनाथ, उन्हास और अचला सचदेव आदि कलाकारों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा की। इस फिल्म में बिस्मिल के, 'सरफरोशी की तमन्ना...।' के साथ उन्हीं का एक और गीत फिल्माया गया जोकि भगत सिंह का प्रिय गीत भी था, 'मेरा रंग दे बसंती चोला...' इस गाने को भी मोहम्मद रफी साहब ने अपने साथियों के साथ गाया था।

आरंभिक दौर में भगतसिंह के जीवन पर तीन फिल्में

पं. मांगेराम की रागनी

सौ-सौ पड़ैं मुसीबत बेटा, उम्र जवान म्हं।
भगत सिंह कदे जी घबराज्या बन्द मकान म्हं।।टेक।।

हिन्द वासी ढंग नया करेंगे, इस हिन्दुस्तान म्हं।
मनैं शेर की मां कह्या करैंगे, इस हिन्दुस्तान म्हं।।1।।

सारे कै तेरे गीत सूणूंगी, कदे न कदे तेरी मां जरूर बणूंगी।
अगले जन्म म्हं फेर जणूंगी, इसी सन्तान मैं।।2।।

इसा एक गौरख धंधा बण दे, किला एक आजादी का चिण दे।
तेरे कैसा पूत जण दे, इसी कौण जिहान म्हं।।3।।

मांगेराम गुरु का शरणा, मरकै नाम जगत म्हं करणा।
एक दिन होगा सब नै मरणा, इसी सुरती ला भगवान म्हं।।4।।

(जिला सोनीपत के गांव सुसाणा में सन् 1906 में जन्म। नाना के गोद लेने पर पाणची गांव में पालन-पोषण। पं. लख्मी चंद के शिष्य। लगभग 40 सांगों की रचना। 16 नवम्बर 1967 को देहावसान)

आ चुकी थीं, लेकिन वे कुछ खास लोकप्रियता हासिल नहीं कर पायीं। सन् 1965 में मनोज कुमार द्वारा अभिनीत फिल्म 'शहीद' रिलीज होती है और यह फिल्म पूरे हिन्दुस्तान में लोकप्रिय होती है। इस फिल्म के निर्देशक थे एस. राम शर्मा तो इस फिल्म को लेखन किया था महान क्रांतिकारी और भगतसिंह के साथी बटुकेश्वर दत्त ने। फिल्म की पटकथा पं. दीन दयाल शर्मा ने लिखी थी। यह फिल्म अपने दौर की सफलतम फिल्मों में गिनी गई और इसे कई राष्ट्रीय पुरस्कार मिले। इसमें मनोज कुमार के साथ कामिनी कौशल, निरूपा रॉय, प्रेम चोपड़ा, प्राण, मनमोहन और मदनपुरी आदि सहयोगी कलाकारों ने अपनी पूरी प्रतिभा के साथ हर किरदार को निभाया था। इस फिल्म के साथ एक अजीब इत्तेफाक यह भी था कि जिस वर्ष यह फिल्म रिलीज हुई, उसी वर्ष 1965 में ही इस फिल्म के लेखक बटुकेश्वर दत्त का निधन हो गया। भगत सिंह के जीवन पर बनी यह सर्वश्रेष्ठ फिल्म मानी जाती है।

1965 के बाद 37 सालों तक भगत सिंह का जीवन हिन्दी फिल्मों से अछूता रहा। अचानक 2002 में उनके जीवन पर लगातार तीन फिल्में एक साथ प्रदर्शित हुई। 2002 में सुकुमार नायर निर्देशित फिल्म 'शहीदे आजम' रिलीज होती है। इसमें भगत सिंह का किरदार सोनू सूद ने निभाया तथा राज जुरथी और देवगिल ने सहयोगी चरित्रों की भूमिका अदा की। इस फिल्म को लेकर विवाद हो गया था, जिसके चलते चंडीगढ़ उच्च न्यायालय ने इसके प्रदर्शन पर रोक लगा दी। इसी वर्ष राज कुमार संतोषी के निर्देशन में एक और फिल्म आती है 'लीजेण्ड ऑफ भगत सिंह'। इसमें मुख्य किरदार अजय देवगन ने निभाया और सुशांत सिंह, राजबब्बर, अखिलेन्द्र मिश्रा, मुकेश तिवारी, अमृता राव व फरीदा जलाल ने सहयोगी भूमिकाएं अदा की। यह फिल्म काफी लोकप्रिय हुई तथा इसे उस वर्ष के कई फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिले। इस फिल्म में संगीत दिया था ए.आर. रहमान ने। वर्ष 2002 में ही गुड्डू धनोआ के निर्देशन में तीसरी फिल्म भी भगत सिंह के बायोपिक पर थी इसका नाम था '23 मार्च 1931 शहीद'। इस फिल्म में बॉबी देयोल, सन्नी देयोल, राहुल देव, शक्ति कपूर, अमृता सिंह तथा दिव्या दत्ता आदि कलाकारों ने काम किया।

भगत सिंह के जीवन पर आधारित अब तक की अंतिम हिन्दी फिल्म राकेश ओमप्रकाश मेहरा के निर्देशन में 'रंग दे बसंती' के नाम से 2006 में रिलीज हुई। इस फिल्म में देश की भ्रष्टाचारी व्यवस्था तथा युवा आक्रोश के पर क्रांतिकारी विचारधारा का प्रभाव दिखाया गया है। भगत सिंह के जीवन पर बनी सभी फिल्मों से इसकी कहानी एक अलग रूप में है। यह एक नया प्रयोग था, जो फिल्म के भीतर और बाहर बहस के बिन्दु देता है।

भगत सिंह के जीवन आधारित आठों फिल्मों में संवाद, दृश्य व घटनाएं सामान्यता ज्यादा है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बायोपिक फिल्मों में मुख्य घटनाओं को दिखाने की अपेक्षा ज्यादा स्पेस नहीं रहता। हम भगत सिंह के सम्पूर्ण व्यक्ति का अध्ययन करें तो उनकी विचारधारा बम या बंदूक तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह मानवता, समाजवाद और बन्धुत्व के मजबूत तत्वों से मिलकर बनी थी।

वर्तमान समय में जो देश और समाज के हालात हैं वे बद से बदतर होने की ओर अग्रसर हैं। आपसी कलह, घृणा और भ्रष्टाचार देश की व्यवस्था को खोखला कर रही है। भगत सिंह के वे विचार जो फिल्मों में अछूते रह गए वे आज और भी प्रासंगिक हो उठते हैं। फिल्मों ने जहां उनके व्यक्तित्व को सिर्फ शहादत तक दिखाकर 'दि एण्ड' कर दिया, भगत सिंह वहां समाप्त नहीं होते हैं वरन् आज वे समय-परिस्थिति की मांग बनकर उभरते हैं। उम्मीद है कि आने वाले समय में हमें ऐसी फिल्में देखने को मिलें, जो भगत सिंह के बाह्य जीवन के साथ-साथ उनके विचार पक्ष को भी खूबसूरती से इस समय-समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकें।

सम्पर्क: मो- 9415533720

पागल खाना

खलील जिब्रान

उस पागलखाने के बगीचे में एक युवक से मेरी भेंट हो गई। उसका चेहरा पीला, सुंदर और विस्मय की भावना से भरा हुआ था।

मैं उसकी बगल में ही बेंच पर जा बैठा और उससे पूछा, 'अरे तुम यहां कैसे आए?' उसने अचानक मेरी ओर देखकर कहा, 'आपका प्रश्न अजीब है, फिर भी जवाब देता हूं। मेरे पिता और चाचा मुझे अपने अनुरूप बनाना चाहते हैं, मेरी माता मुझे अपने पिता की प्रतिमूर्ति देखना चाहती है, मेरी बहन मेरे सामने अपने नाविक पति का आदर्श उपस्थित करती है और मेरा भाई मुझे अपने समान अच्छा खिलाड़ी बनाने की बात सोचता है। उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'मेरे शिक्षक और तर्कशास्त्र के अध्यापक, सब के सब इस बात पर आमादा हैं कि वे मुझमें दर्पण की तरह अपना प्रतिबिम्ब देखें।

इसलिए मुझे ओर घूम कर आना पड़ा। यहां मैं अधिक सहज हूं। कम से कम यहां मेरा अपना व्यक्तित्व तो है।

अचानक मेरी ओर घूमकर वह बोला, 'लेकिन यह बताइए, आप यहां कैसे आए? क्या आपको भी आपकी शिक्षा और सद्बुद्धि ने यहां आने के लिए प्रेरित किया?

मैंने उत्तर दिया, 'नहीं, मैं तो यहां एक दर्शक के रूप में आया हूं।'

उसने कहा, 'समझा! आप इस चारदिवारी के बाहर के विस्तृत पागलखाने के निवासी हैं।'

तेंतर

मुंशी प्रेम चंद

आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी; जिसकी चिंता में घर के सभी लोग विशेषतः प्रसूता पड़ी हुई थी। तीन पुत्रों के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गयी, पिता बाहर आँगन में सूख गये, और पिता की वृद्धा माता सौर द्वार पर सूख गयीं। अनर्थ, महाअनर्थ ! भगवान् ही कुशल करें तो हो ? यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में आना था ! आना ही था तो कुछ दिन पहले क्यों न आयी। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पंडित दामोदरदत्त, शिक्षित आदमी थे। शिक्षा-विभाग ही में नौकर भी थे; मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होनेवाली कन्या अभागिनी होती है, या पिता को लेती या माता को, या अपने को। उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी-पीकर कोसने, कलमुँही है, कलमुँही ! न-जाने क्या करने आयी है यहाँ। किसी बाँझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे, पर माता को समझाने लगे- अम्माँ, तेंतर-वेतर कुछ नहीं, भगवान् की जो इच्छा होती है, वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा; गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे, तीन बेटे हुए तो कैसे फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गयी तो घर में कुहराम मच गया।

माता- अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी है, प्राण नहों में समाया हुआ है। तेंतर ही के जन्म से तुम्हारे दादा का देहांत हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा काँप उठता है।

दामोदर- इस कष्ट के निवारण का भी कोई उपाय होगा ?

माता- उपाय बताने को तो बहुत है, पंडितजी से पूछो तो कोई-न-कोई उपाय बता देंगे; पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौन-से अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडितजी की तो मुट्ठियाँ गरम हुईं, यहाँ जो सिर पर पड़ना था, वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनकी दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लड़की दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लड़कों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी-बड़ी आँखें हैं, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग है, लम्बी-सी नाक। कलमुँही नहलाते समय रोयी भी नहीं, टुकुर-टुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही हैं।

दामोदरदत्त के तीनों लड़के साँवले थे, कुछ विशेष रूपवान भी न थे। लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले- अम्माँ जी, तुम भगवान् का नाम लेकर गानेवालियों को बुला भेजो, गाना-बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ है, वह तो होगा ही।

माता- जी तो हुलसता नहीं, करूँ क्या ?

दामोदर- गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जायगा? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गाना।

माता- बुलाये लेती हूँ बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया।
इतने में दाई ने सौर में से पुकारकर कहा- बहूजी कहती हैं गाना-वाना कराने का काम नहीं है।

माता- भला उनसे कहो चुप बैठी रहें, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं, बहुत दिन नहीं हैं; बहुत इतराती फिरती थीं- यह न करूँगी, वह न करूँगी, देवी क्या है, देवता क्या है, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगती थीं, तो अब चुपके से बैठतीं क्यों नहीं। मेमें तो तेंतर को अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबर करती हैं तो इस बात में भी करें।

यह कहकर माताजी ने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सबेरा होते ही बड़ा लड़का सोकर उठा और आँखें मलता हुआ जा कर दादी से पूछने लगा- बड़ी अम्माँ, कल अम्माँ को क्या हुआ ?

माता- लड़की तो हुई है।

बालक खुशी से उछलकर बोला- ओ-हो-हो, पैजनियाँ पहन-पहनकर छुनछुन चलेगी, जरा मुझे दिखा दो दादीजी !

माता- अरे क्या सौर में जायगा, पागल हो गया है क्या ?

लड़के की उत्सुकता न मानी। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला- अम्माँ, जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा- बच्ची अभी सोती है।

बालक- जरा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहाँ से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयों के पास पहुँचा और उन्हें जगा-जगाकर खुशखबरी सुनायी।

एक बोला- नन्हीं-सी होगी।

बड़ा- बिलकुल नन्हीं-सी ! बस जैसी बड़ी गुड़िया ! ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूँगा।

सबसे छोटा बोला- अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहाँ से बगलें बजाते उछलते-कूदते बाहर आये।

बड़ा- देखा कैसी है !

मँझला- कैसे आँखें बंद किये पड़ी थी।

छोटा- इसे हमें तो देना।

बड़ा- खूब द्वार पर बरात आयेगी, हाथी, घोड़े, बाजे, आतशबाजी।

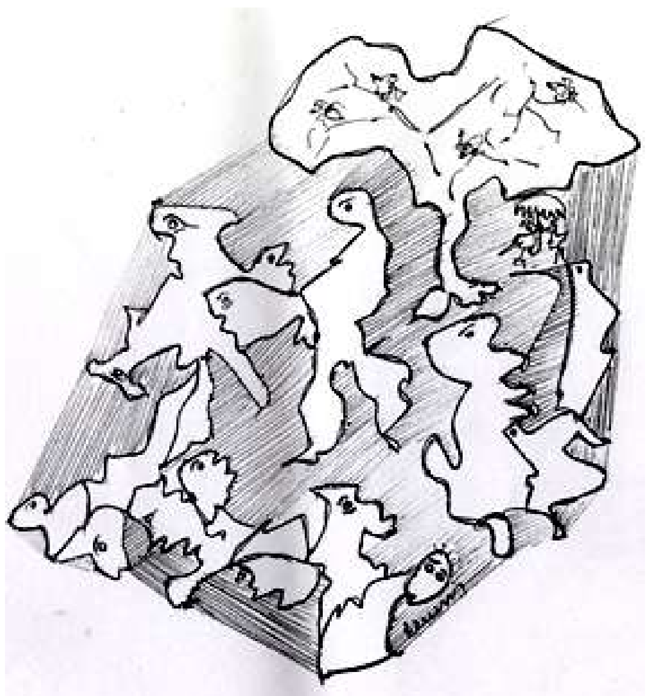
मँझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आँखों के सामने है, उनके सरल नेत्र- मनोल्लास से चमक रहे थे।

मँझला बोला- फुलवारियाँ भी होंगी।

छोटा- अम बी पूल लेंगे !

2

छट्ठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना-बजाना, खाना-खिलाना, देना-दिलाना



सबकुछ हुआ; पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन-दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। माँ उसे दोनों वक्त अफीम खिला देती और बालिका दिन और रात नशे में बेहोश पड़ी रहती। जरा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती ! माँ कुछ ऊपरी दूध पिलाकर अफीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अबकी उसकी छाती में दूध ही नहीं उतरा। यों भी उसे दूध देर से उतरता था; पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियाँ खिलायी जातीं, बार-बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहाँ तक कि दूध उतर ही आता था; पर अबकी यह आयोजनाएँ न की गयीं। फूल-सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। माँ तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी। हाँ, नाइन कभी चुटकियाँ बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करुण वेदना अंकित दिखायी देती कि वह आँखें पोंछती हुई चली जाती थी। बहू से कुछ कहने-सुनने का साहस न पड़ता। बड़ा लड़का सिद्धू बार-बार कहता- अम्माँ, बच्ची को दो बाहर से खेला लाऊँ। पर माँ उसे झिड़क देती थी।

तीन-चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बाँधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अँगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अँगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानो उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुँह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार नहीं, उसके लिए वहाँ कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आयी। इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है ? मुझ पर या इसकी माता पर जो कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध ? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि कुछ कल्पित अनिष्ट के कारण

उसका इतना तिरस्कार कर रहे हैं। माना कि कुछ अमंगल हो भी जाय तो क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिए जायेंगे ? अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है। इस नन्हे-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी ? उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछालकर 'गूं-गूं' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।

प्रात:काल दामोदरदत्त ने लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार-बार कहा- उसे पड़ी रहने दो, ऐसी कौन-सी बड़ी सुन्दर है, अभागिन रात-दिन तो प्राण खाती रहती है, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय; किंतु दामोदरदत्त ने न माना। उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर खेलाने लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी-सी जमीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एक बकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा- सिद्धू, जरा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी। देखो, तुम्हारी नन्ही-सी बहन है न ? इसे रोज हवा में खेलाया करो।

सिद्धू को दिल्लगी हाथ आयी। उसका छोटा भाई भी दौड़ा। दोनों ने घेरकर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुँह बकरी के थन में लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी और एक क्षण में दूध की धार उसके मुँह में जाने लगी, मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाय। लड़की का मुँह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक-हुमककर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया-कुदाया।

उस दिन से सिद्धू को मनोरंजन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसले में चिड़िया का बच्चा देख पायें तो बार-बार वहाँ जायेंगे। देखेंगे कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता है, कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ाकर चें-चें करता है। आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, अपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा रहता, ज्यों ही माता भोजन बनाने या स्नान करने जाती तुरंत बच्ची को लेकर आता और बकरी को पकड़कर उसके थन में शिशु का मुँह लगा देता, कभी दिन में दो-दो तीन-तीन बार पिलाता। बकरी को भूसी-चोकर खिलाकर ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भाँति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट-पुष्ट हो गयी, मुख पुरुष के समान विकसित हो गया। आँखें जग उठीं, शिशुकाल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसे देख-देखकर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती; पर दिल में उसे आशंका होती कि अब वह मरने को नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी। कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन-दिन निखरती आती है, नहीं अब तक ईश्वर के घर पहुँच गयी होती।

3

मगर दादी माता से कहीं ज्यादा चिंतित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्ची को खूब दूध पिला रही है, साँप को पाल रही है। शिशु की ओर आँख उठा कर भी न देखती। यहाँ तक कि एक दिन कह बैठी- लड़की का बड़ा छोह करती हो ? हाँ भाई, माँ हो कि नहीं, तुम न छो करोगी तो करेगा कौन ?

'अम्माँजी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊँ?'

'अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूँ, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूँ, कुछ मेरे सिर तो जायगी नहीं।'

'अब आपको विश्वास ही न आये तो कोई क्या करे?'

'मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी-पीकर ऐसी हो रही है?'

'भगवान् जाने अम्माँ, मुझे तो आप अचरज होता है।'

बहू ने बहुत निर्दोषिता जतायी; किंतु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, यह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानो मुझे इस बच्ची से कोई बैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जाय तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी प्रिय समझती थी, उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इसलिए कि मेरी शंकाएँ सत्य हो जायँ। वह यह तो नहीं चाहती थी कि कोई मर जाय; पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी बहाने से मैं चेता दूँ कि देखा, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यों-ज्यों यह द्वेष-भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था। ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भाँति एक साल कुशल से कट जाता तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा, कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी,

न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था। न हँसते बनता था न रोते।

इस भाँति दो महीने गुजर गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सास के पेट में चूहे दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं आ जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाय, पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्माँ, यह सब ढकोसला है, तेंतर लड़कियाँ क्या दुनिया में होतीं नहीं, तो सब-के-सब माँ-बाप मर ही जाते हैं ? अंत में उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्माँजी खाट पर अचेत पड़ी हुई हैं, स्त्री अँगीठी में आग रखे उनकी छाती सेंक रही है और कोठरी के द्वार और खिड़कियाँ बंद हैं। घबराकर कहा- अम्माँ जी, क्या दशा है ?

स्त्री- दोपहर ही से कलेजे में एक शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़प रही हैं।

दामोदर- मैं जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाऊँ न ! देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्माँजी, अम्माँजी, कैसी तबियत है ?

माता ने आँखें खोलीं और कराहते हुए बोली- बेटा, तुम आ गये ? अब न बूचँगी, हाय भगवान्, अब न बचूँगी। जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गयी, ऐसी पीड़ा नहीं हुई।

स्त्री- यह कलमुँही छोकरी न जाने किस मनहूस घड़ी में पैदा हुई।

सास- बेटा, सब भगवान् करते हैं, यह बेचारी क्या जाने ! देखो मैं मर जाऊँ तो उसे कष्ट मत देना। अच्छा हुआ, मेरे सिर आयी। किसी के सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही। हाय भगवान्, अब न बचूँगी।

दामोदर- जाकर डॉक्टर बुला लाऊँ? अभी लौटा आता हूँ।

माताजी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रुपये न खर्च कराने थे, बोली- नहीं बेटा, डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे ? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर अमृत पिला देगा ? दस-बीस वह भी ले जायेगा! डॉक्टर-वैद्य से कुछ न होगा। बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूँगी, हाय राम !

दामोदर- तेंतर बुरी चीज है, मैं समझता था कि ढकोसला ही ढकोसला है।

स्त्री- इसी से मैं उसे कभी मुँह नहीं लगाती थी।

माता- बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान् तुम लोगों को सुखी रखे। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गयी, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम ! भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय ! हाय !!

दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्माँ न बचेंगी। बड़ा दुःख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह माँ के बदले तेंतर को न स्वीकार करते। जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन-पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबंध किया, उसके सामने एक दुधमुँही बच्ची का क्या मूल्य था, जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और माँ के सिरहाने बैठ कर भागवत की कथा सुनाने लगे।

रात को बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली- अम्माँजी, तुम्हारे लिए थोड़ा-सा साबूदाना छोड़ दूँ ?

माता ने व्यंग्य करके कहा- बेटी, अन्न बिना न मारो, भला साबूदाना मुझसे खाया जायगा; जाओ, थोड़ी पूरियाँ छान लो। पड़े-पड़े जो कुछ इच्छा होगी, खा लूँगी, कचौरियाँ भी बना लेना। मरती हूँ तो भोजन को तरस-तरस क्यों मरूँ। थोड़ी मलाई भी मँगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़े खाने आऊँगी बेटी। थोड़े-से केले मँगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शांत हो गयी; लेकिन आध घंटे के बाद फिर जोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आँख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं, बस भोजन के समय जरा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृवियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने महल्ले-भर में यह खबर फैला दी, पड़ोसिनें देखने आयीं तो सारा इलजाम बालिका के सिर गया।

एक ने कहा- यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गयी; नहीं तो तेंतर माँ-बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती है। दैव न करे कि किसी के घर तेंतर का जन्म हो।

दूसरी बोली- मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते हैं। भगवान् बाँझ रखे पर तेंतर न दे।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहो पुरुखाओं का पुण्य-प्रताप था। ब्राह्मणों को गो-दान दिया गया। दुर्गा-पाठ हुआ, तब कहीं जाके संकट कटा।

■

दुली चंद रमन की कविताएं

कवि का साफ्टवेयर

तुम्हारे लिए ये अचंभे की बात होगी
क्यों रोशनलाल डाकिये को
अब नहीं पहचानते गली के बच्चे

कितना कुछ बदल गया
पलक झपकते तुम्हारे आस-पास

राधा अब फेसबुक पर है
वह सीख चुकी है
हर ऐंगल से लेना सेल्फी
रतनू काका कर लेता है
शहरी बेटों से फोन पर बात
सप्ताह में एकाध-बार
चतरू को मजदूरी का संदेश
अब मोबाइल पर मिलता है

सरकारी अस्पताल की
भतेरी दाई का नंबर अब
फोन में है सब गर्भवतियों के
और अंगूरी चाची को भी पता है
कितने में कितना टाकटाइम

गली के नुक्कड़ पर सारे मुस्टंडे
जाने क्या देखते हैं फोन में
सांसें थामे-अपलक झुंड बनाए
भरतू का निकम्मा बेटा
सारा दिन सुनता है राजबाला की रागनी
ऊंची आवाज में ऑनलाईन

नई-नई आई आरती
बतिया लेती है मां से दिन ढले
सुसराल की सारी घटी-बढ़ी
सास के कानों से बेखबर
और छोटो
जो अब बड़ी हो रही है
टन की आवाज सुनकर
झपटती है फोन पर
बाज की तरह
क्या हो तुम भी
सारा दिन आसमान सिर पर
उठाए रहते हो
कविताओं से बाहर निकलो
सारा कुछ हो चुका ऑनलाईन
तुम अब भी इन पोथियों में
जाने क्या टांपते रहते हो।

नहीं देखा तुमने
हो चुका कितना विकास
रोशनलाल डाकिये को
अगर चाहिए पहचान
तो आ जाये ऑनलाईन
किसने मना किया है

और सुनो
आऊट-डेटिड कवि
तुम भी लगे हाथ करवा लो
अपना सॉफ्टवेयर अपडेट
फायदे में रहोगे।

सच का एक छोर

क्या हुआ
जो मैं आया हूं गांव-देहात से

क्या हुआ
जो मैंने नहीं मुंडवाई मूछें
नहीं पहने तुम जैसे वस्त्र
नहीं सम्पर्क मठाधीशों से
नहीं मैं किसी का चारण
नहीं मैं किसी गिरोह से संबंधित

क्या हुआ
जो में नहीं ओढ़ सका
पाखंडों की राम-नामी चादर
नहीं पहन सका कोई मुखौटा
नहीं सीख सका तेरे बाजार के नियम-
कानून
क्या हुआ
जो मैं नहीं मिला पा रहा
तुम्हारी दुनिया से कदम
तुम्हारी हां में हां

क्या हुआ
जो नहीं है हिस्से में मेरे
उपाधियों-उपलब्धियों की लंबी फेहरिस्त

मगर हां
तुम्हें सुनना ही पड़ेगा मुझे
नहीं कर पाओगे मेरे शब्दों को बेदखल
क्योंकि सच का एक छोर
यहां भी है

मो : 9468409948

जय सिंह की कविता

नारी की अभिलाषा

नहीं होना चाहती
सीता, सावित्री, दुर्गा, नारायणी
पापनाशिनी या दुःख हरणी
देवों के गले का हार
या 'सर्वगुण सम्पन्न' नार

या फिर
नरक का द्वार
तपस्या भंग का साधन
देव-मानव पतन कारक
पाप का हार
पग-पग पर मोहताज
चहुं और से 'रक्षित'
बिना पुत्रों के बेचारी
पति न हो तो अभागन

चाहती है
होना न बहुत अच्छी न बेकार
'अपना' जीवन जीने का अधिकार
उठाना 'खुद बुलाए' दुःखों का भार

और
इंसान की भांति हंसना-रोना
ऊंचे अरमान संजोना
सपनों में खोना
अपनी 'रक्षम' स्वयं होना
एक व्यक्ति होना

मो. 9416109817



युग पुरुष डा. भीमराव अम्बेडकर का जीवन-वृत

14 अप्रैल 1891 जन्म सुबेदार रामजी सकपाल व भीमाबाई की चौदहवीं संतान के रूप में
1896 मां की मृत्यु
1900 में स्कूल में दाखिल
1904 में एलफिंस्टन हाई स्कूल में दाखिल
1906 में रमाबाई से विवाह
1907 में मैट्रिक पास
1912 में बेटे यशवंत का जन्म
1913 में बीए पास, पिता की मृत्यु, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिका में शिक्षा के लिए वजीफा
1915 में एमए पास
1917 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री
1917 में रक्षा सचिव की नियुक्ति
1918 में स्डैनहम कालेज, मुंबई में प्रोफेसर नियुक्त
31 जनवरी 1920 मराठी अखबार मूकनायक की शुरुआत
1924 में बाम्बे हाईकोर्ट में वकालत
20 जुलाई 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना
1926 में बाम्बे लेजिस्लेटिव परिषद के सदस्य
20 मार्च 1927 में महाड़ में चवदार सत्याग्रह की शुरुआत
3 अप्रैल 1927 बहिष्कृत भारत अखबार की शुरुआत
मई 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष बयान
जून 1928 में राजकीय विधि कालेज बाम्बे में प्रोफेसर व प्राचार्य
मार्च 1930 कालाराम मंदिर
नासिक में प्रवेश-सत्यग्रह
1930-32 में गोलमेज कांग्रेस में प्रतिनिधि
सितम्बर 1932 में पूना-पैक्ट
26 मई 1935 में पत्नी रमाबाई का निधन
13 अक्तूबर 1935 नासिक के येवला में धर्म परिवर्तन का संकल्प
दिसम्बर1935 में जात-पात तोड़क मंडल, लाहौर में अध्यक्षीय भाषण विवाद
अगस्त 1936 स्वतंत्र मजदूर पार्टी का गठन
17 फरवरी 1937 बाम्बे लेजिस्लेटिव सभा के सदस्य
सितम्बर 1938 में औद्योगिक विवाद बिल का विरोध
अप्रैल 1942 अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की नागपुर में स्थापना
20 जुलाई 1942 वायसराय कार्यकारिणी समिति के श्रमिक सदस्य नियुक्त
जुलाई 1944 में पीपल एजुकेशन सोसायटी की स्थापना
1946 में बाम्बे में सिद्धार्थ कालेज की स्थापना
1946 में संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य
1947 में नेहरू केबिनेट में कानून मंत्री, संविधान ड्राफ्ट समिति के अध्यक्ष नियुक्त
15 अप्रैल 1948 में शारदा कबीर से दूसरा विवाह
नवम्बर 1950 को संविधान में भाषण
5 फरवरी 1951 संसद में हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत
9 सितम्बर 1951 मंत्री पद से इस्तीफा
14 अक्तूबर 1956 बौद्ध धर्म में दीक्षा
6 दिसम्बर 1956 को महापरिनिर्वाण
7 दिसम्बर 1956 को चैत्य भूमि में अंतिम संस्कार

भीमराव अम्बेडकर

मैं मां के सपने पूरा करना चाहता था

संजीव ठाकुर

मध्यप्रदेश के महू नामक कस्बे में 14 अप्रैल 1891 को मेरा जन्म हुआ था। मैं अपने माता-पिता की चौदहवीं सन्तान था। मुझसे पहले दो भाई और दो बहनें ही जीवित थीं। मेरे पिता का नाम रामजी राव और माता का नाम भीमा बाई था। पिता सेना में काम करते थे। पंद्रह वर्ष नौकरी करने के बाद जब वे रिटायर हो गए, तब उनके सामने परिवार चलाने की समस्या आ गई। वे महू से सतारा आ गए और एक कम्पनी में चौकीदारी का काम करने लगे। किसी तरह हमारे परिवार का गुजारा चलने लगा।

सतारा में आकर ही पहली बार मुझे छुआछूत का सामना करना पड़ा। मेरे भाई-बहन इस समस्या से रूबरू हो चुके थे, इसलिए ऊंची जाति वालों से दूर ही रहते थे, लेकिन मुझे इसका कोई पता नहीं था। अत: मैं आसपास के बच्चों के साथ खेलने को दौड़ पड़ता था। आसपास के बच्चे भी मेरे साथ खेलने आ जाते थे, लेकिन तभी पीछे से कोई पकड़कर उन्हें ले जाता था। उन्हें कहा जाता था कि यह अछूत है, इसके साथ मत खेलो। कभी-कभी कोई बच्चा ही आगे बढ़कर कह देता, 'तुम अछूत हो, मेरे साथ नहीं खेल सकते।' मैं रोते हुए घर आता तो मां मुझे समझाती, 'तुम अपने भाई-बहनों के साथ खेला करो। वे ऊंची जाति के हैं, वे तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे।' मेरी समझ में नहीं आता कि क्या बात है, लेकिन मैं मां की बात से चुप हो जाता।

अछूत होने के कारण नाई भी मेरे बाल काटने से इन्कार कर देता। मेरी बहन घर में ही मेरे बाल काटती। छह साल की उम्र में जब मुझे स्कूल भेजने की बात उठी, तब यह समस्या और बड़ी नजर आई। कोई स्कूल मुझे दाखिला देने को तैयार नहीं होता। पिताजी परेशान हो लौट आते। मां उनसे बार-बार स्कूल के बारे में पूछतीं। एक दिन पिताजी ने कह दिया, 'एक हेडमास्टर दाखिला देने को तैयार हो गया है, लेकिन उसने एक शर्त लगा दी है।'

मां के पूछने पर पिताजी ने शर्त के बारे में बताया। शर्त यह थी कि मैं किसी लड़के के पास नहीं बैठूं, बल्कि जहां लड़के अपने जूते खोलते थे, वहां बैठूं। मुझे अपने साथ अपनी टाट-पट्टी भी ले जानी थी।

मां-पिताजी बात ही कर रहे थे कि मैं वहां आ गया। उनकी बातें सुनकर मैंने कहा, 'मैं जूतों के पास बैठकर पढ़ लूंगा, बस मेरा दाखिला करवा दो!'

मेरी बात सुनकर पिताजी रो पड़े। मां ने मुझे छाती से चिपटा लिया। मां भी रो रही थी।

अगले दिन मैं स्कूल चला गया। लड़कों के जूते हटाकर मैं दरवाजे के पास अपनी टाट-पट्टी बिछाकर बैठ गया। शिक्षक और लड़कों को लग रहा था कि शायद उनके जूते छू गए हैं। खैर मैं रोज स्कूल जाने लगा। स्कूल में छात्र और शिक्षक मुझसे अलग ही रहते। मैं भी हमेशा ख्याल रखता कि कोई छात्र या कोई सामान मुझसे छू न पाए। टिफिन के समय जिधर और लड़के होते, उसकी तरफ मुंह कर मैं खाता।

स्कूल से घर दूर था। मैं सुबह घर से निकलता और शाम को वापस आता। मैं पढ़ाई में अच्छा था। हेडमास्टर भी मेरी तारीफ करते। धीरे-धीरे कक्षा पार कर मैं पांचवीं में पहुंच गया।

उन्हीं दिनों मेरी मां बीमार पड़ गई। घरेलू उपचार से वे ठीक नहीं हो पा रही थीं। एक दिन अच्छे वैद्य को बुलाना जरूरी थी, लेकिन कोशिश करने पर भी कोई वैद्य मां को देखने नहीं आ सका। ऊंची जाति के वैद्य महार जाति के रोगी के घर कैसे आ सकते थे? लिहाजा मां की बीमारी बढ़ती गई। वे मर गई। उनकी मृत्यु से मैं इतना आहत हुआ कि खाना-पीना छोड़ दिया, जबकि मुझे भूख बहुत तेज लगा करती थी और मां मुझे हर हाल में खाना खिलाती थीं। मुझे इस हाल में देखकर पिताजी ने मुझे समझाया। उन्होंने मां के सपने के बारे में कहा। मां मुझे बड़ा आदमी बनाना चाहती थीं। इसके लिए पढ़ाई जरूरी थी। पिताजी के समझाने पर मैंने खाना खाया और फिर से पढ़ाई-लिखाई में लग गया।

मां की मृत्यु के बाद मैं बिना खाना लिए ही स्कूल जाने लगा। मैं ग्यारह-बारह साल का ही था, लेकिन

खाने के अभाव में पढ़ाई को नुक्सान नहीं होने देने का संकल्प मैंने लिया।

मेरे स्कूल के हेडमास्टर ब्राह्मण थे। सामाजिक व्यवस्था में बंधे होने के बावजूद वे दयालु स्वभाव के थे। मुझे भूखा रहता देख उन्हें दया आ गई और वे अपने पास से मुझे रोटी देने लगे। हालांकि वे सब्जी एक दोने में रखकर दूर से ही देते थे और रोटी भी दूर से ही मेरे हाथों में गिरा देते थे, लेकिन फिर भी उनका यह काम आलोचना का विषय बना रहा। लड़के आपस में कानाफूसी करते, 'ब्राह्मण होते हुए भी हेडमास्टर महार जाति के लड़के के लिए रोटी बनाकर लाते हैं! पागल हो गए हैं।' वगैरह-वगैरह! मुझे इन बातों से बड़ी घृणा होती। गुस्सा भी आता, लेकिन मैं मां की बात याद कर चुप रह लेता। मां ने मुझे एक बार समझाया था, 'अछूत होने की वजह से तुम्हें समाज में बहुत अपमान झेलने पड़ेंगे। बिना इसकी परवाह किए तुम पढ़ाई पर ध्यान देना। बड़ा आदमी बनकर तुम्हें समाज की इस कुरीति को बदलना है।' मैं मां की बात याद करता और चुप हो जाता। मां ने मुझे बिना भड़के आगे बढ़ते रहने की सीख दी थी।

पांचवीं कक्षा के बाद मुझे दूसरे स्कूल में दाखिला लेना था। मेरे अंक अच्छे थे, इसलिए मुझे एलफिंस्टन हाई स्कूल में दाखिला मिल गया, लेकिन समस्या फीस की थी, घर में गरीबी थी। पिताजी ने अपनी पीतल की परात एक महाजन के पास यहां गिरवी रख दी। पिताजी उस परात को कभी छुड़ा नहीं पाए।

नए स्कूल में दाखिला करवाकर पिताजी प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर के पास प्रमाण पत्र के लिए गए। मैं भी उनके साथ था। पिताजी ने हेडमास्टर का आभार जताया। हेडमास्टर मुझसे वैसे भी खुश रहते थे। प्रथम श्रेणी में पास होने से वे और भी खुश थे। उन्होंने मेरा प्रमाण पत्र बनाया। उसमें मेरा पूरा नाम लिखा-भीमराव अम्बेडकर। एक ब्राह्मण का आशीर्वाद मानकर पिताजी ने मेरा यह नाम स्वीकार कर लिया।

हेडमास्टर के प्रति श्रद्धा जताने के लिए मैं उनके पैर छूने को आगे बढ़ा, लेकिन मुझे याद आया कि मैं तो उन्हें छू नहीं सकता। गुरुजी अपवित्र हो जाते, इसलिए मैं रुक गया। मैंने उनसे क्षमा मांगते हुए कहा, 'मैं आपके चरण नहीं छू सकता, अछूत जो हूं!'

गुरुजी ने मुझे खूब आशीर्वाद दिया। चलते-चलते उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुमने पांच साल तक जूतों की जगह बैठकर पढ़ाई की, अपमान सहे, भूखे रहे, फिर भी पढ़ाई से मुंह नहीं मोड़ा। आखिर पढ़ाई में ऐसी क्या बात है?'

मैंने कहा, 'गुरुजी, मैं पढ़-लिखकर एक नया कानून बनाऊंगा। यह कानून अछूतों को समाज में ऊंचा स्थान दिलाएगा।'

मैं एलफिंस्टन हाई स्कूल में पढ़ने लगा। अपमानजनक स्थितियां यहां भी थीं। एक बार भूगोल की कक्षा में शिक्षक ने मुझे ब्लैक बोर्ड पर भारत का मानचित्र बनाने को कहा। मैं जैसे ही उठा, एक लड़के ने मुझे रोक दिया। लड़के ने शिक्षक से कहा, 'सभी लड़के ब्लैक बोर्ड के पीछे अपना-अपना खाना रखते हैं, खाना छू जाएगा।' लड़कों ने अपना-अपना खाना वहां से हटाया, तब जाकर मैंने मानचित्र बनाया।

हाई स्कूल पास करने के बाद मेरे सामने आगे पढ़ाई की समस्या थी। पिताजी बूढ़े हो चले थे। घर में गरीबी तो थी ही। उधार तक देने वाला कोई नहीं था। न ही गिरवी रखने को घर में कुछ था। ऐसे में मेरी एक ईसाई मित्र कैलुस्कर ने मुझे महाराजा बड़ौदा से मिलने की सलाह दी। मैं महाराजा से मिला। ऊंची जाति का होने के बावजूद उन्होंने मेरी बातें सहानुभूतिपूर्ण ढंग से सुनीं। उन्होंने मुझे पच्चीस रुपए का मासिक वजीफा दिलवा दिया। मैंने कालेज में दाखिला ले लिया। मेरी पढ़ाई एक बार फिर ढंग से चलने लगी।

साभार : बड़ों का बचपन, एकलव्य प्रकाशन

हमारे समाज की सर्वागींण उन्नति के लिए मैं पूरी शक्ति तथा प्रामाणिकता से कोशिश करूंगा। इसी काम के लिए मैंने शिक्षा ग्रहण की है। मैं अपने ज्ञान का प्रयोग केवल अपने या अपनी जाति के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अछूत समाज की मुक्ति के लिए करूंगा। इसके लिए मैंने कई कार्यक्रम बनाए हैं। यदि ये सफल रहे तो इससे अछूतों और सवर्ण दोनों को बहुत लाभ होगा। अछूतों की ढेर सारी समस्याएं हैं। मैं जानता हूं कि मैं इन सभी का समाधान नहीं कर सकता। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मैं इन समस्याओं की ओर विश्व का ध्यान अवश्य आकर्षित कर सकता हूं। अछूतों की समस्या हिमालय जैसी हैं। मैं हिमालय से सर टकरा-टकराकर अपना सिर फोड़ लूंगा। हिमालय पर्वत का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा किन्तु खून से लथपथ मेरा माथा देखकर सात करोड़ अछूत हिमालय को मिट्टी में मिलाने के लिए अवश्य तत्पर होंगें और इसके लिए अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए भी तैयार होंगे। किन्तु एक बात ध्यान रखें कि आपस में लड़ते रहोगे मैं तो क्या सर्वशक्तिमान माना जाने वाला ईश्वर भी कुछ करने में असमर्थ होगा।

(20 जुलाई, 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण से)

आलेख

डा. आम्बेडकर का सवाल :
हमारे वाल्टेयर कब पैदा होंगे

सुभाष गाताड़े

दुनिया की तवारीख (इतिहास) बताती है कि वर्ग विभाजित तथा जाति, जेण्डर, नस्ल जैसी तमाम श्रेणियों में विभक्त समाज में राजनीतिक-सामाजिक बगावतों की अगुवाई करने वाले लोगों, समूहों, संगठनों की चुनौती को बेअसर करने के लिए यथास्थितिवादी शक्तियां एक जैसे हथकण्डों का इस्तेमाल करती हैं। वह अव्वलन तो इन विद्रोहों के वजूद को मानने से ही इन्कार करती हैं, मजबूरी में अगर यह संभव नहीं हो सका, तो विद्रोहों की गहराई एवं व्यापकता की तिलांजलि देते हुए उनका सतहीकरण करने पर आमादा होती हैं और उनके अपने यथास्थितिवाद के फलसफे में ही इस ढंग से इन्हें समाहित करने की कोशिश करती हैं, ताकि उन विद्रोहों के तीखे तेवर को भोथरा किया जा सके।

उत्पीड़ितों के इन नेताओं की विद्रोही छवि को ऐसी ही किसी छवि से प्रतिस्थापित करने की कोशिश करती हैं, जो कहीं से 'खतरनाक' न प्रतीत होती हो। एक तरह से देखें तो उनकी छवियों का 'मिथकीकरण' किया जाता है और उनके सरोकारों का 'हाशिया करण' किया जाता है। (Mythologise The Man, Marginalise the Meaning) बदलाव के इन फलसफों या उसके अगुआओं का एक सैनिटाइज्ड/साफ-सुथराकृत रूप लोगों के बीच पेश किया जाता है, जिसका मकसद होता है लोगों को उनकी अपनी रैडिकल विरासत से दूर रखा जाए।

ऐसी 'सैनिटाइज्ड' अर्थात् साफ-सुथराकृत छवि शासक वर्ग के लिए बहुत स्वीकार्य होती है।

इतिहास के सफों पर विद्रोही नेताओं के इस किस्म के 'साफसुथराकृत' की कई मिसालें मिलती हैं। हिन्दोस्तां का इतिहास भी इसका अपवाद नहीं है। भौतिकतावाद के अपने फलसफे के लिए आज भी याद किए जाते चार्वाक को जिस तरह हाशिये पर डाल दिया गया, ब्राह्मणवाद के समक्ष लोकायतों द्वारा पेश इस चुनौती का जवाब किस तरह उनके तमाम ग्रंथों को नष्ट कर दिया गया, महात्मा बुद्ध ने सनातनी हिन्दू धर्म के खिलाफ उठाए विद्रोह को किस तरह बाद के दिनों में शंकराचार्य की अगुआई में उसी हिन्दू धर्म ने अपने में समाहित करने की कोशिश की-यहां तक कि बुद्ध को विष्णु का आठवां अवतार घोषित करने की भी कवायद चली-या दक्षिण में बसवेश्वर ने जिस सांस्कृतिक विद्रोह को खड़ा किया। उसकी चुनौती को बेअसर करने के लिए किस तरह बाद में उन्हें ही 'भगवान' घोषित किया गया, इन तमाम बातों को सभी जानते हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि आम्बेडकर को अपने फौरी सियासी स्वार्थों के अनुरूप ढालने की कोशिशों में प्रतिगामी शक्तियों को मिली, यह सफलता उन सभी की हार है जो एक जातिविहीन समाज का सपना देखते हैं, जो स्त्री मुक्ति के लिए कोशिशों में जुटे हैं या जो पूंजी के शोषण, मुनाफे की लूट पर टिकी मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था में-जिसने जेण्डर गुलामी, जातीय उत्पीड़न या साम्प्रदायिक विभेदों को नए ढंग से सुदृढ़ीकृत किया है-आमूलचूल बदलाव लाने की लड़ाई में मुब्तिला हैं और जिनके लिए डा. आम्बेडकर एवं उनका विचार इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

प्रश्न उठता है कि आम्बेडकर के इस विकृतीकरण को बेपर्द करने के लिए आगे कौन आएगा, उनके विचारों एवं कार्यों की क्रांतिकारी सारवस्तु को आगे लाने का काम किन शक्तियों को करना होगा?

2

बेन जान्स्टन इतिहास को तीन हिस्सों में बांटते हैं: स्मृतियों में बसा इतिहास, (remembered history) खोजा गया इतिहास (recovered history) और सर के बल खड़ा कर दिया गया इतिहास (inverted history)। अपने-अपने सियासी स्वार्थों के हिसाब से आम्बेडकर को पेश करने का काम चूंकि लंबे समय से चल रहा है, इसलिए उनके इतिहास को जब भी छानना होगा, तो उनके संदर्भ

में हमें महज इतिहास को याद करना काफी नहीं होगा, कहीं न कहीं हमारे सामने यह चुनौती हे कि हम इतिहास को 'रिकवर' भी करें-वर्णसमाज के कलमजीवियों ने जो बहुत कुछ ढंक दिया है या चुपचाप धूमिल होने दिया है उसे खोज भी लें और सबसे बड़ी चुनौती है कि जहां चीजों को बिल्कुल सर के बल खड़ा कर दिया गया है, उसे कम से कम अपने पांव पर खड़ा करें और इस बात को स्पष्टता के साथ उजागर करें कि किस तरह भारतीय संस्कृति की प्रगतिवादी-मानवीय परम्परा की अगली कड़ी के तौर पर डा. आम्बेडकर हमारे सामने उपस्थित हैं।

एक तरह से देखें तो डा. आम्बेडकर एवं अमेरिका के अश्वेतों के महान नेता मार्टिन लूथर किंग जूनियर को व्यवस्था के कर्णधारों ने जिस तरह पेश किया, उसमें काफी समानताएं दिखती हैं। दिलचस्प है कि इस महान अश्वेत नेता के बारे में यही बात प्रचारित की गई है कि यह अहिंसक संघर्ष में यकीन रखते थे। आम हिन्दोस्तानी इतना ही जानता है (और सोच सोच कर गद्गद् होता है) कि वे महात्मा गांधी एवं उसके रास्ते पर चलने की बात करते रहे हैं। अमेरिका के आकाओं के लिए उनकी यही छवि मुफीद जान पड़ी है। जाहिर सी बात है उन्होंने किंग के जीवन के उस क्रांतिकारी पहलू को कभी उजागर नहीं होने दिया, जिसमें वह पूंजीवाद को चुनौती देते दिखते हैं, वियतनाम में अमेरिकी आक्रमण की जोरदार भर्त्सना करते हैं और अमेरिकी फौजों की वापसी की मांग करते हैं, इतना ही नहीं, अपने हक एवं हुकूक के लिए चल रहे मजदूरों के संघर्षों को अधिक रैडिकल बनाने की बात करते हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि इस महान नेता को तभी गोली मारी गई थी, जब वह हड़ताली मजदूरों के समर्थन में वह उस शहर पहुंचे थे।

जाति-व्यवस्था समाप्त करने का कारगर उपाय
अन्तर्जातीय विवाह

मुझे पूरा विश्वास है कि इसका वास्तविक उपचार अंतर्जातीय विवाह ही है। केवल खून के मिलने से ही रिश्ते की भावना पैदा होगी और जब तक सजातीयता की भावना को सर्वोच्च स्थान नहीं दिया जाता, तब तक जाति-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न की गई पृथकता की भावना अर्थात् पराएपन की भावना समाप्त नहीं होगी। हिन्दुओं में अंतर्जातीय विवाह सामाजिक जीवन में निश्चित रूप से महान शक्ति का एक कारक सिद्ध होगा। गैर-हिन्दुओं में इसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। जहां समाज संबंधों के ताने-बाने से सुगठित होगा, वहां विवाह जीवन की एक साधारण घटना होगी। लेकिन जहां समाज छिन्न-भिन्न है, वहां बाध्यकारी शक्ति के रूप में विवाह की परम आवश्यकता होती है। अत जाति-व्यवस्था को समाप्त करने का वास्तविक उपाय अन्तर्जातीय विवाह ही है। जाति-व्यवस्था समाप्त करने के लिए जाति-विलय जैसे उपाय को छोड़कर और कोई उपाय कारगर सिद्ध नहीं होगा .... सही है कि जाति व्यवस्था उसी स्थिति में समाप्त होगी, जब रोटी-बेटी का संबंध सामान्य व्यवहार में आ जाए।

(जातिप्रथा-उन्मूलन लेख से)

निश्चित ही आम्बेडकर की जो सर्वमान्य इमेज हम सब लोगों के दिलों में व्याप्त है, जो सामाजिक सहजबोध का हिस्सा बनाई गई है, वह हमें यही बताती है कि आम्बेडकर संविधान सभा के अध्यक्ष थे, दलितों के-खासकर दलितों की एक जातिविशेष के नेता थे- और उन्होंने उनको मानवीय अधिकार प्रदान करने के लिए बहुत कुछ किया। हम सब लोगों के लिए 14 अप्रैल का उनका जन्म दिन या 6 दिसम्बर का उनका परिनिर्वाण दिवस ऐसे ही दिन बन गए हैं।

अगर हम आम्बेडकर से नई मुलाकात करने को तैयार हों तो हम देख सकते हैं कि किस तरह राज्यसत्ता ने तथा दलितों के अंदर मजबूत यथास्थितिवादी शक्तियों ने हमारे सामने एक 'सैनिटाइज्ड' आम्बेडकर खड़ा किया है, जिसके चार अहम पहलू हैं।

1. धर्मांतरण

अपने जीवन के अंतिम दौर में डा. आम्बेडकर द्वारा किया गया बौद्ध धर्म का स्वीकार और उनका यह कथन कि वह समूचे विश्व को बौद्ध बनाना चाहते हैं, इस धारा का केंद्रीय सरोकार है। 'स्वतंत्रता, समता, बन्धुत्व' पर आधारित समाज बनाने का जो सपना डा. आम्बेडकर ने देखा था उसको एक तरह से अलग करके आम्बेडकर के ये अनुयायी धर्मांतरण पर ही जोर देते हैं।

विडम्बना यही है कि बौद्ध धर्म जिसे आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म के एक रैडिकल एवं आधुनिक विकल्प के तौर पर पेश किया था, उसका प्रगतिकामी तेवर भी यहां भोथरा हो चुका है और एक तरह से यहां बौद्ध धर्म के आचार-विचार हिन्दू सांस्कृतिक नियमों से ही निर्धारित होते दिखते हैं। हिन्दू मंगलाष्टकों के स्थान पर पाली मंगलाष्टक, ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा दोहराये जाने वाले संस्कृत

मंत्रों के बरअक्स भिक्खुओं एवं धर्माचार्यों द्वारा दोहरायी जाने वाली दुर्बोध किस्म की प्रार्थनाएं, पुरानी रस्मों को प्रतिस्थापित करते हुए हर अवसर पर बौद्ध रस्में, मंदिरों के स्थान पर विहार, यही बात दिखती है।

भौतिक यथार्थ की किसी वैकल्पिक दृष्टि के अभाव एवं साथ ही उसे मजबूत करते वैकल्पिक मॉडल की कमी ने दलित विद्रोह का यह रूप एक तरह से यथास्थिति को ही मजबूत करता दिखता है।

2. सत्ताधारी जमात बनो

विदित है कि अपनी जिंदगी के उत्तरार्द्ध में डॉ. आम्बेडकर ने हिन्दुओं को प्रभावित करने के लिए, दलितों को नागरिक अधिकार प्रदान करने के लिए हाथ में लिए आंदोलनों के कार्यक्रम को स्थगित किया और राजनीतिक सत्ता हासिल करने पर जोर दिया। डॉ. आम्बेडकर को जब हिन्दुओं का मानस बदलने की कोशिशों की व्यर्थता समझ में आयी, तब उन्होंने राजनीति सत्ता हासिल करने की बात कही। एक तरह से कहें तो आम्बेडकर के इस उद्‌बोधन की तुलना मार्क्स के 'सर्वहारा की राज्य सत्ता' की भविष्यदृष्टि से की जा सकती है। लेकिन जहां तक आम्बेडकर के अनुयायियों का सवाल है। उन्होंने इसे किसी भी तरह राजनीतिक गुरुकिल्ली हासिल करने के सन्दर्भ में देखा और वे उसके लिए हर किस्म के अवसरवादी गठबंधनों को कायम करने से भी परहेज नहीं करते।

3. व्यक्तिगत तरक्की का रास्ता

यह समझदारी 'आरक्षण' द्वारा प्रदत्त लाभों पर उपजी है, जिसका सारतत्व यही है कि अगर दलित व्यक्ति को लाभ पहुंचता है, तो उसके परिवार को लाभ पहुंचता है और अगर तमाम परिवार लाभान्वित होते हैं तो यह समूचे समुदाय की मुक्ति को सुगम बनाता है।

4. न्यूनतम व्यवहारवाद

अपनी चर्चित किताब 'एण्टी-इम्पीरियालिजम एण्ड एनिहिलेशन आफ कास्ट्स' *(पेज 253)* में हमारे वक्त के अग्रणी सामाजिक चिंतक आनन्द तेलतुम्बडे इस समझदारी को यूं बयां करते हैं :

यह समझदारी इस व्यवहारिक अवधारणा पर टिकी है कि हिन्दू समाज में कोई रैडिकल बदलाव मुमकिन नहीं है और इसलिए विचारधारात्मक मुद्दों पर ऊर्जा जाया करने के बजाए दलितों को चाहिए कि वह अपनी जिन्दगी को जीने लायक बनाने के लिए छोटे-छोटे लाभों पर ध्यान दें।... यह परिप्रेक्ष्य अपने अस्तित्व के पहलुओं को मद्देनजर रखता है और बिना किसी विचारधारात्मक आकांक्षाओं के उन्हें संबोधित करता है।...

अगर हम डॉ. आम्बेडकर के जीवन के अंतिम दौर की जद्दोजहद देखेंगे तो यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि उन्हें शायद इस बात का एहसास हुआ था कि उनके न रहने पर उनके 'मिशन' का क्या होगा? जनवरी 1956 में आगरा में आयोजित विशाल सभा में अपनी इस पीड़ा को उन्होंने लोगों के साथ सांझा किया था। आगरा की इस सभा के बारे में बताते हुए प्रोफेसर तुलसीराम लिखते हैं कि बात करते हुए डॉ. आम्बेडकर के आंखों से आंसू टपके थे, जिसमें उन्होंने दलित समाज के पढ़े-लिखे लोगों के अपने में ही मशगूल रहने की आलोचना की थी। कुछ लोगों का यह भी दावा कि उपरोक्त सभा में डॉ. आम्बेडकर ने कहा कि 'मेरे पढ़े लिखे लोगों ने मेरे साथ छल किया।'

उनकी मृत्यु के बाद रिपब्लिकन पार्टी जिस तरह टुकड़ों में बंटती गयी या इस या उस पूंजीवादी पार्टी के हाथ का खिलौना बन गई, इससे यही प्रतीत होता है कि उनका आंकलन कितना सही था।

3

एक बात जो लगभग हमारे सहजबोध (कामन सेन्स) का हिस्सा बन गयी है - जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं - जो डा अम्बेडकर के बारे में कही जाती है, कि वह 'दलितों के मसीहा' थे। दिलचस्प है कि समूचे राजनीतिक स्पेक्ट्रम में यह बात स्वीकार्य है। अपने आप को उनका सच्चा वारिस घोषित करनेवालों के लिए भी यह बात सुनकर कोई बेआरामी नहीं होती। क्या उनका यह चित्रण पूरी तौर पर सही है ? या उनको दलितों का मसीहा कह देने से उनके जीवन के तमाम पक्ष छूट जाते हैं और उनकी एकांगी किस्म की छवि बनती है।

अगर उनके इस चित्रण को सही मान लें तो उनके लगभग चालीस साला राजनीतिक-सामाजिक जीवन के कई अहम पहलुओं पर चुप्पी साधनी पड़ती है। और यही बात स्वीकारनी पड़ती है कि मनु के विधान की स्वीकार्यतावाले हमारे समाज में-जिसने शूद्रों-अतिशूद्रों-स्त्रियों की विशाल आबादी को तमाम मानवीय हकों से वंचित किया था - उन्होंने अतिशूद्रों के अधिकारों के लिए कुछ संघर्ष किया एवम कुछ रिआयतें हासिल कीं।

फिर इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो जाता है कि क्या वे स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्षरत नहीं रहे या

क्या किसानों-मजदूरों की समस्या की ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी, क्या जनता के आर्थिक सवालों से वह बेख़बर रहे या क्या वह शूद्रों-अतिशूद्रों का नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर करनेवाली जाति/जातियों के खिलाफ थे या उस मानसिकता के खिलाफ थे जिसने इस स्थिति का निर्माण किया था ? शिक्षा संस्थानों का जाल बिछाने के पीछे तथा अख़बार-पत्र-पत्रिकाओं को शुरू करने के पीछे उनका क्या मकसद था ? और सबसे बढ़ कर क्या उन्होंने उपनिवेशवादियों के खिलाफ जारी राजनीतिक आन्दोलन की सीमा को उजागर नहीं किया जिसके लिए उन्हें जोखिम उठाना पड़ा।

एक गुलाम मुल्क में उपनिवेशवादियों के खिलाफ राजनीतिक आन्दोलनों के साथ एक सुविधा रहती हैं कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समूचे जनसमुदाय का उन्हें समर्थन प्राप्त रहता है लेकिन बाबासाहेब की अपनी जद्दोजहद का अच्छा खासा हिस्सा समाज की अपनी बीमारियों, परम्पराओं, संस्थाओं के खिलाफ, उपनिवेशवादियों के आगमन से पहले से चली आ रही उस सामाजिक-धार्मिक निज़ाम के खिलाफ था। उनके सामने खड़ी चुनौती को आसानी से समझा जा सकता है जहां उन्हें उन लोगों को भी निशाने पर लेना पड़ रहा था जो खुद साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित थे या उसके विरोध में संघर्ष के लिए तैयार थे मगर जो खुद भारतीय समाज की उस मंजिलनुमा बनावट के खिलाफ खड़े होने के लिए तैयार नहीं थे। अपने एक आलेख में डा अम्बेडकर ने उच्च-नीच-अनुक्रम, शुद्धता एवम प्रदूषण पर टिकी भारतीय समाज रचना की तुलना उस बहुमंजिली इमारत से की थी जिसमें एक मंजिल से दूसरी पर जाने के तमाम दरवाज़े बिल्कुल बन्द थे। वे लोग जो जातिप्रथा को श्रम का विभाजन कह कर महिमामण्डित करते थे, उन्हें करारा जवाब देते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि 'जातिप्रथा श्रम का नहीं बल्कि श्रमिकों का विभाजन है।'

> दुनिया के सभी देशों के निर्धनों के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वे सुस्थापित व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह एवं विपल्व करें।
>
> *(अस्पृश्यों को चेतावनी, डा. आम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय, खण्ड 10)*

उनके जीवन एवम संघर्ष को सरसरी निगाह से देखने पर पता चलता है कि तमाम शोषितों-उत्पीड़ितों के हालात के प्रति उनका गहरा सरोकार एवम उसको बदल डालने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता थी। और अहम बात जो उनके यहां नज़र आती है वह है राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों में या सामाजिक-सांस्कृतिक हलचलों के बीच उनके यहां किसी 'चीन की दीवार' की अनुपस्थिति। (क्या यह कहना अनुचित होगा कि उत्तरअम्बेडकर आन्दोलन में इस सिलसिले का बनाये नहीं रखा जा सका)

उनके जीवन के सबसे पहले ऐतिहासिक संघर्ष को ही देखें जब 1927 में महाड के चवदार तालाब पर सत्याग्रह करने वह पहुंचते हैं (19-20 मार्च 2008) जिसके बारे में मराठी में हम कहते हैं कि जब 'उन्होंने पानी में आग लगा दी।' मालूम हो कि महाराष्ट्र के कोकण नामक इलाके के महाड नामक क्षेत्र के सार्वजनिक तालाब पर हजारों की संख्या में दलितों ने अन्य तमाम समानविचारी लोगों डा. बाबासाहेब आम्बेडकर के नेतृत्व में एक सत्याग्रह किया था। यूं तो कहने के लिए यह महज

> शिक्षा तो एक ऐसी चीज है, जो कि सबको मिलनी चाहिए। शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है, जो इस आधार पर चलाया जाए कि जितना वह खर्च करता है, उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए। शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप में सस्ता बनाया जाए।
>
> *(12 मार्च 1927 को बांबे लेजिस्लेटिव काऊंसिल में शिक्षा पर विचार)*

पानी पीने का हक था लेकिन इसकी विशिष्टता इसी में निहित थी कि सदियों से उच्च-नीच-अनुक्रम पर टिके, प्रदूषण एवम शुद्धता पर आधारित समाज के उत्पीड़ित जनों ने अपने विद्रोह की एक संगठित हुंकार भरी था।

इस अवसर पर आयोजित सम्मेलन के प्रस्ताव गौर करनेलायक हैं। प्रस्तुत सम्मेलन में कई सारे महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। जंगल की जमीन दलितों को खेती के लिये दी जाय, उन्हें सरकारी नौकरियां मिलें, सरकार न केवल शिक्षा को अनिवार्य करे बल्कि 20 साल के छोटे लड़कों तथा 15 साल से छोटी लड़कियों की शादी पर भी पाबन्दी लगाये आदि विभिन्न आर्थिक सामाजिक मसलों पर प्रस्ताव मंजूर हुए। सरकार से अपील की गयी वह शराबबन्दी लागू करे तथा मरे हुए जानवरों का मांस खाने पर पाबंदी लगा दे । सम्मेलन में उच्चवर्णीयों से भी आवाहन किया कि वे अछूतों को उनके नागरिक अधिकार दिलाने में सहायता करें, उन्हें नौकरियां दें, अपने मरे हुए जानवरों को खुद दफनायें।

सत्याग्रह के दूसरे चरण में उन्होंने शुचिता तथा प्रदूषण के आधार पर उनके अपमान को जायज ठहराने वाले पवित्र कहलाने वाले मनुस्मृति नामक ग्रंथ

26 जनवरी,1950 को हम अन्तरविरोधों या विसंगतियों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में तो हम समानता स्थापित करेंगे लेकिन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में हम असमानता ही बनाए रखेंगे। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति, एक वोट और एक मूल्य' के सिद्धांत को मान्यता देंगे। लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम अपने प्रचलित और पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक ढांचे की वजह से 'एक व्यक्ति और एक जैसा मूल्य' के सिद्धांत को नकारते रहेंगे। हम आखिर कब तक जीवन के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में समानता को नकारते रहेंगे? अगर हम इसे लम्बे अरसे तक टालते और नकारते रहे तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को संकट में डालकर ही ऐसा कर सकेंगे। इसलिए हमें चाहिए कि जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी हम इस अन्तर्विरोध को दूर कर लें, वरना जो लोग इन असमानताओं से पीड़ित हैं वे लोग राजनीतिक लोकतंत्र के उस ढांचे को ही उखाड़कर फेंक देंगे जिसको इस संविधान सभा ने बड़ी लगन और मेहनत से बनाया है।

(24 नवम्बर,1949 को तीसरे वाचन के उपरान्त संविधान के स्वीकार होने के अवसर पर)

को भी आग के हवाले किया था। (25 दिसम्बर 1927)

सम्मेलन के अपने शुरूआती वक्तव्य में बाबासाहेब ने प्रस्तुत सत्याग्रह परिषद का उद्देश्य स्पष्ट किया '' अन्य लोगों की तरह हम भी इन्सान हैं इस बात को साबित करने के लिए हम तालाब पर जाएंगे अर्थात यह सभा समता संग्राम की शुरूआत करने के लिए ही बुलायी गयी है । आज की इस सभा और 5 मई 1789 को फ्रांसीसी लोगों की क्रांतिकारी राष्ट्रीय सभा में बहुत समानताएं हैं। .. इस राष्ट्रीय सभा ने राजा रानी को सूली पर चढ़ाया था, सम्पन्न तबकों के लिए जीना मुश्किल कर दिया था, उनकी सम्पत्ति जब्त की थी । 15 साल से ज्यादा समय तक समूचे यूरोप में इसने अराजकता पैदा की थी ऐसा इस पर आरोप लगता है। मेरे खयाल से ऐसे लोगों को इस सभा का वास्तविक निहितार्थ समझ नहीं आया।.. इसी सभा ने 'जन्मजात मानवी अधिकारों को घोषणापत्र जारी किया था.. इसने महज फ्रांस में ही क्रान्ति को अंजाम नहीं दिया बल्कि समूची दुनिया में एक क्रांति को जन्म दिया ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा ''उन्होंने अपील की थी इस सभा को फ्रेंच राष्ट्रीय सभा का लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए..'' हिन्दुओं में व्याप्त वर्णव्यवस्था ने किस तरह विषमता और विघटन के बीज बोये हैं इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि '' समानता के व्यवहार के बिना प्राकृतिक गुणों का विकास नहीं हो पाता उसी तरह समानता के व्यवहार के बिना इन गुणों का सही इस्तेमाल भी नहीं हो पाता। एक तरफ से देखें तो हिन्दू समाज में व्याप्त असमानता व्यक्ति का विकास रोक कर समाज को भी कुंठित करती है और दूसरी तरफ यही असमानता व्यक्ति में संचित शक्ति का समाज के लिए उचित इस्तेमाल नहीं होने देती। सभी मानवों की जनम के साथ बराबरी की घोषणा करता हुआ मानवी हकों का एक ऐलाननामा भी सभा में जारी हुआ।

सभा में चार प्रस्ताव पारित किये गये जिसमें जातिभेद के कायम होने के चलते स्थापित विषमता की भर्त्सना की गयी तथा यह भी मांग की गयी कि धर्माधिकारी पद पर लोगों की तरफ से नियुक्ति हो। इसमें से दूसरा प्रस्ताव मनुस्मृति-दहन का था जिसे सहस्त्रबुद्धे नामक एक ब्राहमण जाति के सामाजिक कार्यकर्ता ने प्रस्तुत किया था । प्रस्ताव में कहा गया था कि ''शूद्र जाति को अपमानित करनेवाली उसकी प्रगति को रोकने वाली उसके आत्मबल को नष्ट कर उसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गुलामी को मजबूती देनेवाली मनुस्मृति के श्लोकों को देखते हुए ऐसे जनद्रोही और इन्सान विरोधी ग्रंथ को हम आज आग के हवाले कर रहे हैं।''

इस सत्याग्रह केअवसर पर महिलाओं को दिया गया उनका स्वतंत्रता उद्बोधन काफी चर्चित रहा है। मनुस्मृति दहन के बाद रात में स्त्रियां को अलग सम्बोधित करते हुए डा. आम्बेडकर ने जोर देकर कहा था।

''परिवार की दिक्कतें स्त्री एवम पुरुष दोनों मिला कर ही सुलझाते हैं और उसी तरह समाज की, दुनिया की कठिनाइयों को भी स्त्रियों एवम पुरुषों को दोनों को मिला कर ही सुलझानी चाहिए। स्त्रियां ही इस काम को बखूबी कर सकती हैं, इस पर मुझे पूरा यकीन है। इसके आगे आप को भी सभाओं एवम सम्मेलनों में आना चाहिए ।आप ने हम पुरुषों को जन्म दिया है। आप के पेट से जन्म लेना आखिर अपराध क्यों माना जाता है और ब्राह्मण स्त्री के पेट से जन्म लेना पुण्य क्यों समझा जाता है ? ..स्त्रियां गृहलक्ष्मी बनें यही हमें क्यों सोचना चाहिए, इसके आगे की मंजिल उन्हें क्यों नहीं पार करनी चाहिए ? ... ज्ञान और विद्या की आवश्यकता सिर्फ पुरुषों के लिए नहीं है वह स्त्रियों के लिए भी उतनी ही जरूरी है। इसलिए आनेवाली पीढ़ी को सुधारना हो तो आप को चाहिए कि बेटों के साथ बेटियों को भी शिक्षा दें। स्त्रियों को राजनीतिक-सामाजिक सक्रियताओं में उतारने की, उन्हें अधिकारों से लैस करने की चिन्ता हमें उनके समूचे जीवन में दिखती है।

यहां तक कि तलाक या सम्पत्ति के मामले में उन्हें कोई अधिकार नहीं

प्राप्त थे। हिन्दू कोड बिल को लेकर डा अम्बेडकर को जो जद्दोजहद करनी पड़ी वह अपने आप में एक रोचक इतिहास है। स्त्रियों को अधिकार सम्पन्न कर 'हिन्दू संस्कृति एवं परम्परा को ध्वस्त करने' की कोशिश करने के लिए कई बार उनके घर पर प्रदर्शन भी हुए। इस बिल को न केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विरोध था बल्कि कांग्रेस के अन्दर मौजूद रूढिवादी/सनातनी तत्वों ने भी उनके इस कदम की लगातार मुखालिफत की थी जिसमें अग्रणी थे बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि। नेहरू मंत्रिमण्डल से इस्तीफा सौंपते हुए प्रस्तुत वक्तव्य में उन्होंने लिखा था।

'हिन्दू कोड बिल एक तरह से इस मुल्क की विधायिका द्वारा हाथ में लिया गया समाज सुधार का सबसे बड़ा कदम था। अतीत में हिन्दोस्तां की विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून से या भविष्य में पारित किए जा सकनेवाले किसी भी कानून से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। वर्ग और वर्ग के बीच की गैरबराबरी, लिंगों के बीच की गैरबराबरी – जो हिन्दू समाज की आत्मा है – को अक्षुण्ण बनाये रखना तथा आर्थिक समस्याओं को लेकर एक के बाद एक विधेयक पारित करते रहना, एक तरह से संविधान का मखौल उड़ाना है और गोबर के ढेर पर महल खड़े करने जैसा है। मेरे लिए हिन्दू कोड का यही महत्व रहा है। और अपने मतभेदों के बावजूद इसी वजह से मैं मंत्रिमण्डल का सदस्य बना रहा।'

डा आम्बेडकर के जीवन और संघर्षों की व्यापकता जानना हों तो तीस का दशक कई मायनों में अहम दिखता है जिसमें वह सामाजिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर भी नयी जमीन तोड़ते प्रतीत होते हैं वहीं वह राजनीतिक-आर्थिक मसले पर भी एक अलग रास्ता अख्तियार करते नज़र आते हैं।

मो : 98689409920

मुंशी राम जांडली की रागनी

पूजनीय भारत के नेता समदर्शी होए ब्रह्मज्ञानी
जात माणस की एक कहैं क्यूं भींट करो हिन्दुस्तानी

देशी खाण्ड बिदेशी घी और सब नै बिस्कुट खाए तम्हें
होए सवार रेल मोटर मैं औड़ै भिटण ना पाए तम्हें
नल का पाणी पिया मजे मैं क्यूं ना मरे तिसाए तम्हें
कट्ठा काम कर्‌या खेतां मैं दस दिन तक ना नहाए तम्हें
गाळ गळी मैं पल्ला लागै नहाएं सुधरै जिंदगानी
मेले के मैं धक्कम धक्का औड़े भींट क्यूं ना मानी

उड़द चावळ और मूंग भिंटै ना, रंदती दाळ भिंटै थारी
गुड़ शक्कर घी खाण्ड भिंटै ना, रगड़ी मिर्च भिंटै थारी
चादर दोहर खेस भिंटज्या, ना बांधी पांड भिंटै भारी
काचा कोरा थान भिंटै ना, भिंटै पुराणी बेमारी
जोहड़ा जोहड़ी नदी भिंटै ना, कुंआ भिंटै बड़ी नादानी
गाय भैंस बकरी भिंटती ना, दूध भिंटै घल के पानी

सोंए बैठे खाट भिंटै, ना भिंटती सिर पै ठायां तै
सिर बुक्कळ मैं ना भिंटै बिस्तरा, भिंटज्या तुरंत बिछायां तै
बरी बाल्टी डोल भिंटै ना, घड़िया भिंटै चकायां तै
कुत्यां तक की झूठ नहीं, भिंटै हाथ माणस कै लायां तै
सौ सौ गाळ बकै मूरख जद भंगी जा चुल्हे कानी
चुहड़ी चमारी फिरै सुपे म्हं बेमाता दाई जानी

गाजर मूळी गंठे काकड़ी चुहड्यां पै मंगवाओ सो
आलू गोभी मटर टमाटर अरबी शलगम खाओ सो
सेब संतरे आम नारियल हथो हथी ले आओ सो
सारी चीज भिंटण आळी तुम कोन्या भिंटी बताओ सो
एक्का मेल मिलाप करो गुरु हरिचन्द रह सैलानी
कहै मुन्शीराम जांडली आळा काढो दिल की बेईमानी

जिला फतेहाबाद के जांडली गांव में साधारण किसान परिवार में 23 जून 1915 को जन्म। जांडली गांव में अनपढ़ता को दूर करने के अभियान में पढ़ना-लिखना सीखा। छुआछूत, अंधविश्वास, धार्मिक पाखण्ड पर इनकी रागनियां खूब लोकप्रिय हुई। 11 नवम्बर 1950 को देहावसान।

पी. राघवेन्द्र राव कमेटी की रिपोर्ट

हरियाणा सरकार ने दिनांक 19.2.2013 को वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी पी. राघवेन्द्र राव की अध्यक्षता में पांच बड़े अधिकारियों की कमेटी बनाई थी। इस कमेटी ने सर्वोच्च न्यायालय के एम. नागराज मामले के अनुरूप पिछड़ेपन, अपर्याप्त प्रतिनिधित्व व कार्यदक्षता तीन बिंदुओं पर अनुसूचित जाति कर्मचारियों की स्थिति का अध्ययन करना था। कमेटी ने जनगणना, आंकड़ा संगठन, विभागों में कर्मचारियों की नियुक्ति-पदौन्नति और सेवा शर्तों का व्यापक व गहन अध्ययन किया। इसके साथ ही कर्मचारी संगठनों अथवा आम नागरिकों से खुली सुनवाई भी की। सारे आंकड़े एकत्रित करने और उनकी समीक्षा के बाद दिसम्बर 2013 में सरकार को अपनी रिपोर्ट दे दी। इसके अनुसार स्थिति इस प्रकार है:

राज्य की कुल आबादी में अनुसूचित जाति की संख्या 20.17 प्रतिशत है और उन्हें 20 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। लिंगानुपात की दृष्टि से औसत 879:1000 के मुकाबले अनुसूचित जातियों में लड़कियों की संख्या 887:1000 है। बी.पी.एल. परिवारों में देहात में 50.2 प्रतिशत और शहरों में 30.7 प्रतिशत संख्या अनुसूचित जाति की है। यानी गरीबों में बड़ा हिस्सा इसी वर्ग का है। साक्षरता दर में औसत से पुरुषों में 20 प्रतिशत और महिलाओं में 30 प्रतिशत कम है। पुरुषों के औसत 84.05 प्रतिशत के मुकाबले एस.सी. पुरुष 64.54 प्रतिशत तथा महिलाओं के औसत 65.94 प्रतिशत की तुलना में एस.सी. महिलाएं 35.46 प्रतिशत संख्या में साक्षर हैं। आठवीं कक्षा तक बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का औसत 4.6 प्रतिशत है, जबकि एससी में यह 13 प्रतिशत है। एस.सी. परिवारों में कुल 98.8 प्रतिशत भूमिहीन हैं। केवल 1.2 प्रतिशत के पास ही कुछ कृषि भूमि है और यह कृषि भूमि राज्य की कुल जमीन का मात्र 0.02 प्रतिशत ही है। जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक सन् 2011 में देहात में 16.98 प्रतिशत और शहरों में 6.33 प्रतिशत एस.सी. परिवार ऐसे पाए गए जो रोशनी के लिए मिट्टी के तेल का इस्तेमाल करते थे।

जहां तक नौकरियों में प्रतिनिधित्व का प्रश्न है किसी भी स्तर पर 20 प्रतिशत प्रतिनिधित्व नहीं है। श्रेणीवार स्थिति निम्न प्रकार है :

श्रेणी	सरकारी विभाग		सार्वजनिक निकाय	
	सीधी भर्ती	पदोन्नति	सीधी भर्ती	पदोन्नति
प्रथम श्रेणी	3.66 %	0 %	2.84 %	0 %
द्वितीय श्रेणी	10.81 %	0 %	7.03 %	0 %
तृतीय श्रेणी	13.25 %	11.22 %	8.28 %	11.01 %
चतुर्थ श्रेणी	18.29 %	11.54 %	13.71 %	17.22 %

उल्लेखनीय है कि हरियाणा में केवल तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था है। यदि सीधी भीर्ती व पदोन्नति को 50-50 प्रतिशत मान लें तो तृतीय श्रेणी की संख्या लगभग 12 प्रतिशत और चतुर्थ श्रेणी की 15 प्रतिशत बनेगी। इसके साथ ही कमेटी ने प्रशासनिक कार्यालयों में भी एस.सी. की स्थिति के आंकड़े लिए हैं। डी.सी. दफ्तरों में एस.सी. कर्मचारियों की संख्या 8.33 प्रतिशत और एस.डी.एम. दफ्तरों में 14.29 प्रतिशत है। रिपोर्ट के अनुसार स्पष्ट है कि किसी भी स्तर पर इनकी संख्या कोटे की सीमा 20 प्रतिशत तक नहीं पहुंची है।

जहां कार्यदक्षता पर प्रभाव संबंधी तीसरे बिन्दू का संबंध है, कमेटी ने पाया कि पदोन्नति में आरक्षण का कार्यदक्षता पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योकि राज्य में पदोन्नति मानकों में एस.सी. कर्मचारियों को कोई ढील नहीं दी गई है।

(साभार अध्यापक लहर-सत्यपाल सिवाच के लेख आरक्षण को लेकर राजनीति : एकता पर हमला से)

सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र राजनीतिक लोकतंत्र के स्नायु और तंत्र हैं। ये स्नायु और तंत्र जितने अधिक मजबूत होते हैं, उतना ही शरीर सशक्त होता है। लोकतंत्र समानता का दूसरा नाम है। संसदीय लोकतंत्र ने स्वतंत्रता की चाह का विकास किया, परन्तु समानता के प्रति इसने नकारात्मक रुख अपनाया। यह समानता के महत्व को अनुभव करने में असफल रहा और इसने स्वतंत्रता तथा समानता के बीच संतुलन बनाने के लिए प्रयास नहीं किया जिसका परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता ने समानता को निगल लिया तथा असमानता को पनपने दिया। *('इंडियन फैडरेशन ऑफ लेबर' के तत्वावधान में 8 से 17 सितम्बर तक, 1943 में, दिल्ली में, 'अखिल भारतीय कार्मिक संघ ' के कार्यकर्ताओं के अध्ययन शिविर के समापन सत्र में दिए गए भाषण)*

अपनी समग्रता में है डा. आम्बेडकर का न्याय दर्शन

अनिल चमड़िया

असमानता का विरोध और समानता के विचारों व उसकी व्यवस्था की स्थापना के इर्द गिर्द ही दुनिया भर में तरह-तरह के शीर्षकों व उपशीर्षकों से विमर्श चल रहे हैं। मौजूदा दौर में हमारे बीच सामाजिक बदलाव के जितने भी नायक है वे किसी न किसी स्तर पर असमानता के कारणों को दूर करने की अपेक्षाओं को मुखर करने वाले है। पूंजी, धर्म,जाति-नस्ल,भाषा और लिंग के आधार पर असमानता के खिलाफ आंदोलन और क्रांतियां देखी गई है। लेकिन किसी भी आंदोलन और क्रांति की सतह पर उपरोक्त पांच कारणों में एक हो सकते है लेकिन वह कारण दूसरे कारणों से जुड़ा होता है। इसीलिए आंदोलनों व क्रांतियों के नायकों ने सतह के कारणों के अलावा असमानता को संपूर्णता में देखा है और उसे प्रमुख कारण के अलावा दूसरे कारणों को दूर करने की जरूरत पर अपना नजरिया पेश किया है।

भारत में डा. भीमराव आम्बेडकर के संपूर्ण नजरिये को सामाजिक न्याय के नजरिये के रूप में पेश किया जाता है। भाषा के जरिये राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संप्रेषण ही होता है और जिन नायकों को जिन विशेषणों के साथ संप्रेषित किया जाता है वह संप्रेषण की राजनीति से अलग नहीं है। डा. आम्बेडकर को दलितों के उद्धारक और सामाजिक न्याय के प्रणेता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो भारत में यह संबोधन जातीय भेदभाव की स्थिति के सीमित विमर्श को ले जाता है। डा. अम्बेडकर ने जाति को खत्म करने पर महज जोर दिया। वह समझते थे कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति असमानता के प्रमुख कारणों में हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह असमानता के खिलाफ और समानता के लिए संघर्ष में इस बात को अनदेखा कर रहे थे कि समाज में जाति की वजह से जो बहुसंख्यक पीड़ित है वह श्रमिक है। वह कृषि आधारित व्यवस्था में भूमिहीन है। गरीब है। शिक्षा की आधुनिक प्रणाली से बहिष्कृत है। इन पीडितों में भी हर मायने में दोहरी पीड़ा की शिकार महिलाएं हैं। क्योंकि उन्हें पुरुषों की सत्ता के मताहत रहना पड़ता है।

डा. आम्बेडकर की न्याय के पूरे दर्शन में भारतीय वर्ण-व्यवस्था में सामाजिक स्तर पर भेदभाव को खत्म करना प्राथमिक कार्यक्रम रहा है। लेकिन डा. आम्बेडकर की विरासत के साथ राजनीति ये होती है कि उन्हें पूंजीवादी समर्थक अपनी तरह से प्रस्तुत करता है। उन्हें पुरुषवादी अपने तरीके से देखता है। हिन्दूत्ववादी अपने नजरिये से पेश करते हैं। भाषा को लेकर डा. अम्बेडकर को वर्चस्ववादी भाषा के समर्थक के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। मैंने डा. आम्बेडकर की राजनीतिक विरासत के रक्षकों के कई सभाओं, बैठकों में ये सवाल किया कि डा. अम्बेडकर अपने दौर में अकेले थे।

डा. आम्बेडकर के समय से सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक तौर पर चल रहे बदलाव के नतीजों के रूप में इस स्थिति का बयान किया जाता है कि डा. आम्बेडकर के समर्थकों और सिपाहियों की तादाद बहुत है। यह बिल्कुल दुरुस्त तथ्य है। लेकिन डा. आम्बेडकर के पूरे न्याय दर्शन का विस्तार किस रूप में हुआ है? इस समूह के उभार के साथ भटकाव कितना गहरा हुआ है? उसके क्या कारण है? डा. आम्बेडकर के दर्शन के विस्तार के बजाय वह संसदीय सत्ता में प्रतिनिधित्व तक सिमटता जा रहा है। डा. आम्बेडकर ने जाति को खत्म करने के रास्ते को असमानता के कारणों को खत्म करने का प्रस्थान बताया। हालात कहां पहुंचे है? बहुसंख्यक श्रमिक जातियों के बीच गरीबी बढ़ी है। आदिवासियों के खिलाफ अत्याचार की सारी सीमाएं टूट गई है। दलितों के खिलाफ हर स्तर पर भेदभाव और हिंसा की घटनाएं तेजी से बढ़ी है। महिलाओं के खिलाफ अत्याचार के नये-नये तरीके विकसित हुए हैं। इन बहुसंख्यकों में वर्चस्ववादी हिन्दुत्ववाद की पैठ बढ़ी है। इस्लाम,क्रिश्चियन धर्म को स्वीकार करने वाले दलितों को

संसदीय सत्ता द्वारा दलित के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। क्या इसके पीछे यह तथ्य नहीं जुड़ा है कि डा. आम्बेडकर के समर्थकों व सिपाहियों ने उनके न्याय के दर्शन को समग्रता में लेने के बजाय उसे टुकड़े-टुकड़े में अपने संघर्षों और अभियानों का संचालन कर रहे है? उनके न्याय दर्शन की व्याख्या असमानता के किसी न किसी एक कारण के इर्द गिर्द ही करने पर जोर देते है? मसलन जब डा. आम्बेडकर ये आह्वान करते हैं कि शिक्षित बनो,संगठित हो और संघर्ष करो तो उसकी तीन अलग अलग हिस्सों में व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। जबकि ये तीनों एक दूसरे से गुंथे हुए हैं।

महात्मा गांधी के साथ पूना समझौता की बहस के मूल में क्या रहा है? गांधी चाहते थे कि वह हिन्दू वर्ण-व्यवस्था का हिस्सा रहें। वे भविष्य की संसदीय व्यवस्था के जरिये वर्ण व्यवस्था का एक नया ढांचा तैयार कर रहे थे। जबकि डा. आम्बेडकर ये मानते थे कि हिन्दू वर्ण-व्यवस्था का हिस्सा नहीं रहा है। वह तो अछूत रहा है। यानी हिन्दूओं की वर्ण-व्यवस्था में दलितों को मानव समाज के रूप में ही नहीं देखा जाता था। संसदीय व्यवस्था को सत्ता संचालित करते हुए छह दशक से ज्यादा का समय बीत चुका है। प्रतिनिधित्व का वही स्वरूप दिखाई देता है जिसकी आशंका डा. आंबेडकर ने की थी। वह संघर्ष क्या आगे जाने के बजाय पीछे नहीं गया है? यदि किसी संघर्ष में आधे-अधूरे कारणों को लेकर उतरा जाता है तो वह जाहिर तौर पर संघर्ष आगे नहीं बढ़ सकता है। दलित चिंतन में सामाजिक न्याय की व्याख्या किस रूप में अलग दिखती है?

सत्ता के भीतर सामाजिक प्रतिनिधित्व के एक अंतर्विरोध को समझना जरूरी लगता है। सत्ता के भीतर जब सामाजिक प्रतिनधित्व जैसे ही पूरा होता है वह सामाजिक प्रतिनिधित्व सत्ता के प्रतिनिधित्व में रूपांतरित भी हो जाता है। सत्ता में उस सामाजिक प्रतिनिधित्व के लिए क्या कार्यभार निर्धारित किए गए हैं? न्याय की एक सतत प्रक्रिया होती है। यदि असमानता के किसी एक कारण को दूर करने पर जोर दिया जाता है तो यह भी देखा जाना चाहिए कि असामनता को बनाए रखने के दूसरे कारणों की खोज तो नहीं कर ली गई है या की जा रही है। मसलन यदि आरक्षण से सामाजिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाता है तो बेरोजगारी के खिलाफ संघर्ष भी सामाजिक न्याय की लड़ाई का ही हिस्सा है। 1991 में सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर पिछड़े वर्गों को संविधान के तहत केन्द्र सरकार की नौकरियों में विशेष अवसर देने के सिद्धांत को लागू करने का फैसला किया गया तो एक तरफ निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई और दूसरी तरफ अयोध्या में बाबरी मस्जिद की जगह पर हिन्दुत्व के आदर्श पुरुष राम के मंदिर के निर्माण

डा. भीमराव आम्बेडकर के

जातिप्रथा-उन्मूलन लेख का सार

- जातिप्रथा ने उत्पीड़न के अनेक तरीके ईजाद किये है।
- जातिप्रथा श्रम का नहीं, बल्कि श्रमिकों का विभाजन है।
- जातिप्रथा एक ही नस्ल के लोगों का सामाजिक विभाजन है।
- हरेक जाति एक निगमित बंद संस्था की तरह है।
- जातिप्रथा समाज सुधारकों को उत्पीड़ित करने का ढंग है।
- जातिप्रथा ने जनचेतना को नष्ट किया है।
- जन्म के आधार पर सामाजिक विभाजन फन्दे की तरह है।
- चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगठन की अपमानजनक पद्धति है।
- जातिप्रथा को नष्ट करना ही सुधार है।
- जातिप्रथा का कारगर उपचार अन्तर्जातीय विवाह है।
- शास्त्रों की सत्ता में डाइनामाइट लगाना होगा।

दलितों का उद्धार आर्थिक उन्नति में

दलित वर्गों का विचार है कि उत्थान का सर्वाधिक ठोस तरीका यह है कि उन्हें उच्च-शिक्षा और रोजगार मिले, और रोजी-रोटी कमाने के बेहतर अवसर प्राप्त हों। एक बार यदि वे सामाजिक जीवन के ढांचे में सुस्थापित हो जायेंगे तो उनका सम्मान होने लगेगा, एक बार यदि उनका सम्मान होने लगेगा तो निश्चय ही उनके प्रति रूढ़िवादियों के धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा यदि ऐसा नहीं भी होता, तो भी उससे उनके आर्थिक हित पर कोई आंच नहीं आ सकती।

डा. भीमराव आम्बेडकर (मंदिर-प्रवेश के प्रश्न पर वक्तव्य)

के अभियान को तेज किया गया। मर्यादा पुरुषोतत्म राम के मंदिर के निर्माण के अभियान के दौरान इस्लाम धर्म को मानने वालों पर हमले की घटनाएं हुई। इन कड़ियों को यदि जोड़ने की क्षमता से सामाजिक न्याय की व्याख्या चूक जाती है तो न्याय की दिशा कहां ले जाती है?

सामाजिक न्याय के दर्शन में राष्ट्रवाद का क्या स्वरूप है? डा. आम्बेडकर जब संघर्ष कर रहे थे तब राष्ट्रवाद आकार ले रहा था और उस राष्ट्रवाद में डा. आम्बेडकर को क्या डर लग रहा था? पूना पैक्ट की बाध्यता में वह दिखाई देता है। डा. आम्बेडकर उस हालात में जिस तरह का दबाव महसूस कर रहे थे क्या उनकी रचनावली की व्याख्या से बाहर की जा सकती है? दूसरी बात की डा. अम्बेडकर ने बाध्य होकर जिस लड़ाई को एक पड़ाव पर छोड़ा उसका विस्तार 1947 के बाद के भारत में क्यों नहीं करने पर जोर दिया गया। डा. आम्बेडकर के दर्शन का विस्तार आम्बेडकर के बाद के भारत में नहीं हुआ।

1990 के बाद जब निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई तो उस प्रक्रिया के गहरे संकट को आरक्षण के इर्द गिर्द ही प्रस्तुत किया गया। हम यदि बेहद तथ्यात्मक स्तर भी ये विचार करें कि क्या सत्ता के भीतर भी हम सामाजिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करा पाएं हैं? जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि विभिन्न स्तरों पर संघर्ष की कड़ियां ही न्याय की सतत प्रक्रिया की गारंटी कर सकती है। न्याय की सतत प्रक्रिया के बजाय संसदीय व्यवस्था में वर्ण ढांचे के काम आने तक ही यदि डा.आम्बेडकर के न्याय दर्शन को खर्च किया जाता है तो हम खुद को कैसे डा. आम्बेडकर का उत्तराधिकारी कह सकते हैं? राजनीतिक विरासत का अर्थ इसमें निहित है कि वह किसी भी दर्शन में ठहराव को भी तोड़ता है और दर्शन का एक आलोचनात्मक विकास भी सुनिश्चित करता है।

डा. आम्बेडकर के दर्शन की नई व्याख्या की जरूरत

संसदीय लोकतंत्र में चुनाव ही एक मात्र वह प्रक्रिया है जिसमें देश के सभी व्यस्क नागरिकों को सत्ता संचालन की प्रक्रिया में हिस्सेदारी का एहसास कराया जाता है। लेकिन संसदीय लोकतंत्र में दो तरह के समाज विकसित करने की प्रवृति दिखाई दे रही है। एक तरफ तो वह समाज जिसे केवल वोट देने का अधिकार होगा और दूसरी तरफ वह समाज जो सत्ता में फैसले लेने की प्रक्रिया में शामिल होने के लिए सक्षम माना जाता है। दुनिया के किसी भी समाज में यह देखने को मिल सकता है जिसमें सामाजिक और आर्थिक रूप से वर्चस्व रखने वाला वर्ग अपने मानदंड़ों से सत्ता संचालित करने की कोशिश करता है।

सच्चा लोकतंत्र

प्रजातंत्र सरकार का एक स्वरूप मात्र नहीं है। यह वस्तुत- साहचर्य की स्थिति में रहने का एक तरीका है। प्रजातंत्र का मूल है, अपने साथियों के प्रति आदर और मान की भावना।

लोकतंत्रात्मक शासन के लिए लोकतंत्रात्मक समाज का होना जरूरी होता है। प्रजातंत्र के औपचारिक ढांचे का कोई महत्त्व नहीं है और यदि सामाजिक लोकतंत्र नहीं है तो वह वास्तव में अनुपयुक्त होगा। राजनीतिक लोगों ने यह कभी भी महसूस नहीं किया कि लोकतंत्र शासन तंत्र नहीं है। यह वास्तव में समाज तंत्र है।

डा. भीमराव आम्बेडकर (18 जनवरी 1943 को महादेव गोबिन्द रानाडे की 101वीं जयन्ती पर दिए गए भाषण में 'रानाडे, गांधी और जिन्ना' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित है)

भारत में जब राजनीतिक तौर पर स्वतंत्र होने का दावा किया गया तो उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह बताई गई कि राजनीतिक तौर पर समान अधिकार रखने वाला यह दुनिया का एक मात्र सबसे बड़ा लोकतंत्र है। अमेरिका में भी उस समय राजनीतिक स्तर पर सभी नागरिकों को यह समानता हासिल नहीं थी। इसी राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता का इस्तेमाल सामाजिक और आर्थिक स्तर पर असमानता को खत्म करने के लिए करने की प्रतिज्ञा संविधान के द्वारा की गई थी।

संविधान सभा में अपने अंतिम भाषण में डा. आम्बेडकर ने यही कहा था कि राजनीतिक रूप से समान लेकिन आर्थिक और सामाजिक स्तर पर गहरी असमानता की स्थिति में यह संसदीय लोकतंत्र अपनी यात्रा शुरू कर रहा है। यदि राजनीतिक समानता का इस्तेमाल आर्थिक और सामाजिक समानता के लिए नहीं हो पाया तो यह राजनीतिक स्वतंत्रता भी खतरे में होगी।

हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक स्तर पर असमानता को बनाए रखने के जो विचार इस समाज में मौजूद थे वहीं राजनीतिक समानता को खत्म करने की स्थिति में पहुंच गए हैं? यह प्रश्न स्कूल में पढ़ाई नहीं कर पाने वाले लोगों को स्थानीय निकाय यानी पंचायत व नगर

पालिका के चुनाव में उम्मीदवार बनने पर रोक लगाने से भी जुड़ा है। हरियाणा से पहले राजस्थान की सरकार ने भी ऐसा ही फैसला किया था। अंग्रेजों की सत्ता के जाने के बाद संसदीय लोकतंत्र को चलाने के लिए शिक्षण संस्थाओं से डिग्री हासिल करने वालों की अहमियत को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। भारत में पढाई या शिक्षित होने के संदर्भ बदलते रहे हैं। वैदिक युग से लेकर आज के युग में शिक्षित होने का पैमाना बदलता रहा है। संविधान के लागू होने के बाद सरकार की यह जिम्मेदारी रही है कि वह देश में सभी बच्चों के लिए समानता आधारित शिक्षा की व्यवस्था करें। यानी सरकार ने साक्षर होने के जो मानदंड तय किए उन्हें नागरिकों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी सरकार की ही थी। लेकिन जिस तरह की आर्थिक और सामाजिक असमानताएं रही है उनमें समाज का बड़ा हिस्सा शिक्षित होने के मानदंडों को पूरा करने से या तो दूर रखा गया या फिर इसके आड़े आर्थिक व सामाजिक असमानता की स्थितियां खड़ी रहीं। कमजोर वर्ग के बच्चे स्कूल में जाने के बजाय खेतों और सड़कों पर मजदूरी करने के लिए बाध्य होते रहे हैं। यानी सरकार ने शिक्षित होने के जो मानदंड तय किए उन मानदंडों के अनुरूप अपने सभी नागरिकों के लिए विकसित करने में सरकार की व्यवस्थाएं विफल होती रही है।

आर्थिक और सामाजिक स्तर पर समानता की स्थिति बहाल नहीं कर पाने के हालात में राजनीतिक ढांचे के पास क्या विकल्प रह जाता है? क्या उसे राजनीतिक समानता की स्थिति को ही खत्म कर देने की तरफ जाना चाहिए? गौर करें तो राजनीतिक समानता में कटौती किसे प्रभावित करती है। क्या उसी वर्ग को नहीं जो आर्थिक और सामाजिक स्तर पर असमानता के शिकार रहे हैं?

इसके साथ यह भी समझना जरूरी लगता है कि राजनीतिक समानता को केवल वोट देने और वोट लेने के अधिकार तक नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि इसे स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान हासिल संपूर्ण राजनीतिक अधिकारों से जोड़कर देखा जाना चाहिए। क्या राजनीतिक समानता और अधिकारों में कटौती उसी दौर में नहीं होती है जब आर्थिक और सामाजिक असामनता की नीतियों पर जोर दिया जाता है और यह महसूस किया जाता है कि राजनीतिक समानता वाली संस्थाएं उन नीतियों के आड़े आती है?

संसदीय लोकतंत्र में स्थानीय निकायों को बुनियादी ढांचे के रूप में देखा जाता है। पंचायती राज व्यवस्था को लोकतंत्र को मजबूत करने के प्रयास

सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता का संघर्ष परस्पर पूरक

जो हमें करना आवश्यक है वह यह है कि हमें सिर्फ राजनीतिक लोकतंत्र से ही संतुष्ट नहीं रह जाना चाहिए। हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को एक सामाजिक लोकतंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक राजनीतिक लोकतंत्र की बुनियाद में सामाजिक लोकतंत्र स्थित नहीं होगा तब तक राजनीतिक लोकतंत्र की इमारत स्थिर और टिकाऊ नहीं हो सकती। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है एक ऐसा जीवन जीने का ढंग जो जीवन के आधारभूत सिद्धांतों के रूप में स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता को स्वीकार करता हो। स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता के ये तीन सिद्धांत त्रयी में विद्यमान तीन अलग-अलग शब्दों के रूप में तीन पृथक-पृथक तत्व नहीं माने जाने चाहिए। ये वास्तव में संयुक्त रूप से मिलकर एक एकीकृत त्रयी का निर्माण करते हैं, इस अर्थ में कि एक को दूसरे से पृथक करना लोकतंत्र के ही उद्देश्य को ही पराजित करना हो जाता है। स्वतंत्रता को समानता से पृथक नहीं किया जा सकता। समानता को स्वतंत्रता से पृथक नहीं किया जा सकता है। समानता के बिना स्वतंत्रता बहुजनों पर अल्पजनों की प्रभुता उत्पन्न करेगी। और स्वतंत्रता के बिना समानता वैयक्तिक पहल को नष्ट कर देगी। बन्धुता के बिना तो स्वतंत्रता तथा समानता एक स्वाभाविक प्रक्रिया-जन्य चीजें नहीं बन सकतीं। तब तो स्वतंत्रता और समानता को लागू कराने के लिए पुलिस के इस्तेमाल का सहारा लेना पड़ेगा। ''हमें इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए ही अपनी शुरूआत करनी चाहिए कि भारतीय समाज में दो चीजों का घोर अभाव है। उसमें से एक चीज है समानता का अभाव। सामाजिक धरातल पर भारत में हमारे यहां एक ऐसा समाज है जो 'क्रमिक असमानता' यानी सीढ़ीनुमा गैर बराबरी पर आधारित हैं, जिनका अर्थ है थोड़े से लोगों का उत्कर्ष और अधिसंख्य लोगों का अपकर्ष। आर्थिक धरातल पर हमारे यहां एक ऐसा समाज है जिसमें एक ओर जहां बेशुमार लोगों की जिन्दगी की गुजर-बसर गरीबी और कंगाली में जैसे-तैसे होती है तो वहीं दूसरी ओर मुट्ठी भर कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी मुट्ठी में अकूत दौलत कैद है। *(सं. प्रदीप गायकवाड़ (अनु.-मा.रामगोपाल आजाद); डा. बाबा साहेब आम्बेडकर के महत्त्वपूर्ण भाषण एवं लेख; समता प्रकाशन, नागपुर; पृ.-118)*

पूंजीवादी पद्धति के संसदीय प्रजातंत्र की व्यवस्था में दो खतरनाक बातें दिखाई देती हैं। एक ओर जो मेहनत करते हैं, उनके यहां गरीबी, और दूसरी ओर जो काम या मेहनत नहीं करते, उनके पास अथाह सम्पति। एक ओर राजनीतिक समता है, तो दूसरी ओर आर्थिक विषमता। जब तक मजदूर को रहने के लिए घर, पहनने को कपड़े और निरोग जीवन नहीं मिलता, विशेषकर सम्मान से सिर ऊंचा करके निर्भय होकर जीना नहीं आता, तब तक इस आजादी का कोई अर्थ नहीं है। हर एक मजदूर को सुरक्षा और राष्ट्रीय सम्पति में सहभागी होने का आश्वासन मिलना चाहिए।

डा. भीमराव आम्बेडकर (9 सितम्बर 1943 को प्लेनरी लेबर परिषद के सामने विचार)

के रूप में पेश किया जाता रहा है। लेकिन उसी के साथ पंचायती राज व्यवस्था में फैसले लेने की हैसियत से समाज में असमानता के शिकार नागरिकों को वंचित रखने की कोशिश के पहलुओं को बेहद संवेदनशीलता से समझने की कोशिश करनी चाहिए। पढ़ाई का एक खास संदर्भ है। कबीर संस्थाओं से पढ़कर नहीं आए थे लेकिन उन्हें अच्छे बुरे की पहचान थी। इस दौर में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश कहते है कि शिक्षित होने का अर्थ अच्छे बुरे की पहचान करने की क्षमता हासिल करना होता है। जबकि अच्छा और बुरा का संदर्भ होता है। शिक्षित नागरिक दहेज लोभी, भ्रष्टाचारी, बलात्कारी यानी हर तरह की बुराईयों में शामिल पाया जाता है। अशिक्षित दशरथ मांझी ने पहाड़ काट दिया और हजारों ग्रामीणों के तकलीफों को अपने छैनी और हथौड़े से दूर कर दिया।

यह रिकार्ड में देखा जा सकता था कि चुनाव में हिस्सेदारी के लिए पढ़े-लिखे हों यह एक नारे के रूप में तब से जोर पकड़ने लगा है जब से संसदीय लोकतंत्र में समाज की उस आबादी का हिस्सा बढ़ता रहा है जो सत्ता में आकर फैसले को प्रभावित करने लगा। गौर करें कि संसदीय लोकतंत्र की संस्थाओं में पहले सबसे ज्यादा तादाद वकीलों की होती थी। लेकिन धीरे धीरे किसानों की संख्या बढ़ने लगी। ग्रामीणों की संख्या बढ़ने लगी। लेकिन नई संसद के आंकड़े बताते है कि पांच सौ चालीस से ज्यादा सदस्यों वाली लोकसभा में एक भी मजदूर और श्रमिक नहीं है। स्कूलों व शिक्षण संस्थाओं से निकलने वाले मध्यवर्गीय परिवारों के सदस्यों की तादाद राज्य और केन्द्रीय प्रतिनिधि संस्थाओं में बढ़ती चली गई है। संसदीय लोकतंत्र में फैसले लेने वालों की शक्ल बदलने का यह क्रम बढ़ते बढ़ते क्रमश स्थानीय निकाय तक पहुंचने लगा है। राज्य व केन्द्र स्तरीय संस्थाओं में प्रतिनिधि होने की क्षमता हासिल करने के लिए करोड़पति होना व्यवहारिक स्तर पर जरूरी हो गया है। लोकतंत्र में सारी व्यवस्थाएं नियमों के जरिये ही नहीं की जाती है बल्कि अघोषित ढांचे ज्यादा कारगर होते हैं। इससे लोकतंत्र का वास्तविक चेहरा छुपा लिया जाता है। सबसे हैरान करने वाली बात तो यह है कि राजनीतिक समानता के अधिकारों को छीनने वाले कानून निर्वाचित संस्थाओं द्वारा बनाए जा रहे हैं। यानी ऊपर की संस्थाओं में आर्थिक व सामाजिक रूप वर्चस्व रखने की विचारधारा मजबूत हो चुकी है। राज्य सभा को राज्यों की प्रतिनिधि सभा के बजाय अमीरों की प्रतिनिधि सभा बनाने के नियम बनाए जा चुके हैं। राज्य सभा में पहले देश के प्रत्येक राज्य के मूल निवासियों को बतौर प्रतिनिधि होने का अधिकार था लेकिन नियम बदलकर यह कर दिया गया कि किसी भी राज्य से किसी भी राज्य का नागरिक उसके प्रतिनिधि के रूप में चुना जा सकता है। गरीब यानी असमानता की मार झेल रहे राज्यों से दूसरे राज्यों के अमीर उम्मीदवार चुने जाने लगे हैं। देश के गणतांत्रिक स्वरूप पर प्रश्न तब भी खड़ा हुआ था।

लगता है कि हालात यह बनाने की कोशिश हो रही है कि मतदाताओं को जबरन उस लोकतंत्र पर मुहर लगाना होगा जिसके लिए उम्मीदवार आर्थिक और सामाजिक स्तर पर संपन्न समूह तय करेगा। जो अनिवार्य मतदान के समर्थक है वही विचार राजनीतिक समानता को खत्म करने के हर पहलू में दिखाई देता है। दरअसल जब राजनीतिक संस्थाएं आर्थिक और सामाजिक स्तर पर संपन्न लोगों के अधीन हो जाता है तो राजनीतिक समानता और आम राजनीतिक अधिकारों की कटौती स्वभाविक हो जाती है। डा. आम्बेडकर ने जो आर्थिक और सामाजिक असमानता को पाटने की चुनौती संसदीय लोकतंत्र के सामने खड़ी थी, वह डा. अम्बेडकर के विचार व दर्शन की नई व्याख्या की जरूरत पेश कर रहा है।

(मासिक शोध पत्रिका जन मीडिया (हिन्दी) और मास मीडिया (अंग्रेजी) के संपादक है।)

■

हिन्दू समाज उस बहुमंजिली मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है, न दरवाजा। जो जिस मंजिल में पैदा हो जाता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।

दलितों की आत्मछवि में क्रांतिकारी बदलाव

रामफल दयोरा

आज देश में दलित शब्द बहुत चर्चा में रहता है। मीडिया से लेकर राजनीतिक गलियारों तक में दलितों की खूब चर्चा हो रही है। राजनीतिक दलों में तो पूरी होड़ लगी है। यह साबित करने में कि मैं आपका सच्चा शुभचिंतक हूं। सभी को सुबह उठते ही यह जानने की उत्सुकता रहती है कि आज दलितों के साथ कोई घटना हुई हो और मैं वहां सबसे पहले पहुंच कर राजनीतिक प्रशंसा बटोर लूं। कई नेताओं को घटना पर सही प्रतिक्रिया ना कर पाने का अफसोस रहता है और कईयों को तो पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण उनके प्रति अपनी असली धारणा का जुबान पर आने के कारण कड़ी आलोनाओं का शिकार भी होना पड़ता है।

मीडिया को भी दलितों से संबंधित मामलों से अच्छी (TRP) टी.आर.पी. मिल रही है। हर एक न्यूज चैनल के संवाददाता इस (दलित) शब्द पर पूरा जोर देकर बोलते हैं। परन्तु सोचनीय प्रश्न ये है कि क्या हकीकत में मीडिया, राजनीतिक दल एवं धार्मिक व सामाजिक सुधारक संगठन दलितों के कभी सच्चे या सही मायने में हितैषी रहे हैं? क्या दलितों में आया राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन इनका कोई योगदान रहा है?

मेरे विचार से बिल्कुल नहीं, क्योंकि दलितों की स्थिति में आज जो क्रांतिकारी परिवर्तन व चेतना आई है, वो उनके अपने बलबूते पर और उनके संघर्ष से आई है।

आज अनुसूचित जातियों (तथाकथित दलितों) के सामाजिक न्याय के साथ-साथ सरकारी नौकरियों में दिए गए प्रतिनिधित्व (आरक्षण) का मुद्दा भी खूब चर्चा में रहता है।

अनुसूचित जातियों/जनजातियों (दलितों) की आबादी देश में लगभग 25 प्रतिशत है, जिसके हिसाब से उनको उनका प्रतिनिधित्व हर सरकारी क्षेत्र व पदों पर देना तय किया गया है। आंकड़ों बताते हैं कि सरकारी नौकरियों में वांछित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है।

दलितों के प्रति उनका दृष्टिकोण कितना बदला है। पुलिस रिकार्ड के अनुसार हर तीसरे दिन किसी दलित महिला की आबरू लूटी जाती है। ऐसा क्यों होता है कि जब भी देश में दलितों के खिलाफ हिंसा होती है तो उसके विरोध में सिर्फ दलित ही सामने आते हैं। दलितों से जुड़े मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दे क्यों नहीं बनते।

देश में किसी भी एक समूह की अवनति का प्रभाव अन्य समूहों पर जरूर पड़ता है अर्थात् सम्पूर्ण देश पर पड़ता हे। समाज या देश एक नौका के समान है। जिस तरह नौका में बैठकर यात्रा करने वाले मुसाफिर ने हानि पहुंचाने के उद्देश्य से नौका में छेद कर दिया तो अन्यों के साथ उसे भी डूबना पड़ेगा।

दलित समाज की देश में हमेशा रचनात्मक भूमिका रही है और इनका संघर्ष भी हमेशा प्रगतिशीलता व रचनात्मकता पर आधारित रहा है। इतिहास में कभी भी इन्होंने देश के जन व धन को नुक्सान नहीं पहुंचाया है। दलितों के उद्धारकों के संघर्ष व लड़ाई का उद्देश्य स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा व जुल्म के खिलाफ आवाज उठाना रहा है।

दलित समाज ने अपने बलबूते पर श्रम आधारित वर्ण-व्यवस्था को चुनौती लेकर तोड़ा है। आज हर क्षेत्रों में निपुण व योग्य कार्यकर्त्ता के रूप में देखे जाते हैं। भले ही दलितों के प्रति उच्च वर्ग का नजरिया कम ही बदला है। दलितों के साथ कदम-कदम पर भेदभाव व अत्याचार होता है, लेकिन खुशी की बात ये है कि दलित का खुद के प्रति नजरिए में क्रांतिकारी बदलाव आया है। इन्होंने मानसिक गुलामी को तोड़ना शुरू कर दिया है। जुल्म के खिलाफ खुलकर समूह में खड़े होने लगे हैं। दबकर जीना अब इनको मन्जूर नहीं है। मेरा विश्वास है कि देश-दुनिया के हर वर्ग या समूह के दलित होने का धब्बा बहुत जल्दी मिट जाएगा।

मो. 9466544638

■

ऐ भारत के गरीबो, दलितो ! तुम्हारा उद्धार इस बात में है कि तुम अपने हितों की रक्षा करने वाले काम करो न कि इस बात में कि तुम तीर्थयात्रा करते रहो या व्रत और पूजा में अपना समय गंवाते रहो। धर्मग्रंथों के समक्ष माथा टेकते रहने से या उनके अखंड पाठ करते रहने से तुम्हारे बंधन, तुम्हारी आवश्यकताएं तथा तुम्हारी निर्धनता कभी दूर नहीं हो सकती। तुम्हारे बुजुर्ग इन कामों को सदियों से करते आ रहे हैं पर क्या तुम्हारी निर्धनता पर इसका कुछ भी असर पड़ा।

डा. आम्बेडकर

रागनी

बीरबल

बात उस वक्त की है, जब बाबा साहेब लंदन से पीएच.डी करने के बाद वायदे के मुताबिक सियाजी राव के राज्य बड़ौदा में नौकरी करने चले जाते हैं, वहां मनुवादियों ने बाबा साहेब को टिकने नहीं दिया, वो बड़ी मुश्किल से 11 दिन ही रह पाए। बाबा साहेब बड़ौदा के 11 दिनों के बारे में क्या बताते हैं-

सियाजी राव ने जो बात कही थी, पूरा राख्या ख्याल मनैं।
11 दिन उडै क्यूकर काटे आज सुणादू हाल तनैं।। टेक

पहले दिन का जिकर करूं मनैं दफ्तर के म्हं पैर धर्‌या
मनै देख एक बामण बोल्या या शुद्र किततै आण मर्‌या
सियाजी राव भी पागल होग्या न इज्जत का ध्यान कर्‌या
शुद्र को मेरा अफसर लाया बामण का अपमान कर्‌या
उल्टी गंगा पहाड़ चढ़ाकै मेरा भेज दिया काळ उन्हैं....।

दफ्तर के मैं पहुंच गया मनै दर्द भतेरा आवै था
चपड़ासी पै नजर गई वो आज गलीचा ढावै था
टूटी-फूटी मेज पड़ी थी वो बैठण खातिर ल्यावै था
शुद्र आग्या शुद्र आग्या कहकै शोर मचावै था
छाती के मैं चोट लगी था आंखें करली लाल उन्हैं....।

काम कारण का शौक घणा था कुछ डियुटी सरकारी थी
चपड़ासी पै फाईल मांगी, उन्हें फैंक कै मारी थी
पीणे खातर पाणी मांग्या कोन्या बात बिचारी थी
न्यारा गलास धर्‌या अफसर का न्यारी धरदी झारी थी
दे दे ताने और उल्हाणें करी आत्मा घाय्ल उन्हैं...।।।

ना रहणे नै जगह उड़ै थी न कोय ठहराणा चाहवै था
शुद्र का जब नाम सुणै भाज खाण नै आवै था
पारसीयों की सराय उड़ै थी उसमें रहणा चाहवै था
चाल्या जा ना मार्‌या ज्यागा वो पारसी भी धमकावै था
बीरबल नै भी ना दई रजाई ना मिली उधारी शाल मनैं...।।

सम्पर्क सूत्र-94164-60997

दयाचंद मायना

तेरै नहीं लगैगी छींट, भींट का तै सब झगड़ा झूठा सै

उसनै ब्राह्मण मत समझो, जो भीतरले में पाप राखै
अछूत और चण्डाल कहै, ऊपर तै मन साफ राखै
दुनियां नै भकावै पापी, झूठे हर के जाप राखै
अन्धे माणस, मूर्खां कै, बन्ध आँखों कै पट्टी जा सै
हर के घर से एक आवैं, याड़ै जात बाँटी जा सै
जैसा काम वैसा नाम, गत कर्मा की छाँटी जा सै
सै एक जात, एक बात, एक बेल-बूटा सै

उनकी मुक्ति ना होती, जो झूठी बात घड़्या करैं
पाप के कमाणे आळे, नरक बीच मैं पड़्या करैं
ब्राह्मण नै ऊँचा बतलावै, जब मूर्ख माणस चड़्या करैं
जो पापियाँ की संगत करै, वोहे पाप के बीच हो सैं
यम के दूत पकड़ कै खींचै, जहां नरक की कीच हो सै
कर्म ही सै ऊंचा होज्या, कर्म ही से नीच हो सै
उस परमेश्वर के घर पै, सबका एक ठाण खूंटा सै

सच्चा कहणा, सच्चा सुणना, यो माणस का धर्म हो सै
अछूत और चण्डाल जाण, जीव आत्मा ब्रह्म हो सै
मूर्खां नै बेरा कोन्या, ऊंचा अपणा कर्म हो सै
जो ईश्वर के भजन करै ना, उसनै सत्संगी कहै कौण
लिए-दिए तै काम चालज्या घर मैं तंगी कहै कौण
जो सच्चा भगत प्रेमी हर का, उसनै भंगी कहै कौण
कहकै इस दुनियाँ का प्यार-यार, मित्र खाऊ-लूटा सै

सतगुरु मुन्शी कृपा करकै, चेले नै बताओ ज्ञान
धर्म की कमाई करै, वोहे हो सै बुद्धिमान
ऊंच-नीच का ना बेरा जिसनै, उसनै समझो मूढ़ नादान
साची बात घड़्या करै सै, जो सतगुरु का मुण्डा हो सै
हर के घर पै, दर पै जाकै, सबका एक कुण्डा हो सै
देसां की बदमास ऊत बता, माणस का के भूण्डा हो सै
दयानन्द साच्चे करै सै विचार, धार रस अमृत का घूंटा सै

(रोहतक जिले के मायना गांव में 10 मार्च 1915 को जन्म। सन् 1941 से 47 साल तक फौज में रहे। सन् 1952 में सीओडी दिल्ली कैंट में नौकरी। 16 किस्सों और 100 से अधिक रागनियों की रचना। 20 जनवरी 1993 को देहावसान)

पेरिस महासम्मेलन धरती पर ग्रह का भविष्य

डा. महावीर शर्मा

30 नवम्बर 2015 से शुरू होकर लगभग 2 सप्ताह तक पूरी दुनिया के 195 देशों के प्रतिनिधियों ने जलवायु परिवर्तन पर गंभीर चिंतन करके भविष्य के लिए एक कार्य योजना का प्रारूप तय किया। इस सम्मेलन में सभी देशों के राष्ट्रीयध्यक्षों के अलावा वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री व सामाजिक चिंतक भी मौजूद थे, जबकि पर्यावरण पर लंबे अरसे से गंभीर कार्य करने वाले संगठनों ने वहीं पर समानांतर सम्मेलन किया। रोजाना विरोध-प्रदर्शन आयोजित किए व कार्ययोजना के प्रारूप पर गंभीर आपत्तियां जताई। दोनों पक्षों के विचारों की सच्चाई जानना, मानव जाति के भविष्य के लिए बेहद जरूरी है।

पेरिस के बंद कमरों में जैसे ही प्रतिनिधि, 'गरम होती धरती' व 'जलवायु बदलाव' पर चर्चा शुरू करते थे, तभी उनके आजू-बाजू आतंकवाद व शरणार्थी संकट के प्रेत आकर खड़े हो जाते थे। अपनी नियत अवधि से ज्यादा समय तक सम्मेलन चला। सहमति-असहमतियों पर अलग-अलग देशों से रात-दिन गंभीर चर्चाएं हुई, पर इन दोनों प्रेतों ने प्रतिनिधियों का पीछा नहीं छोड़ा। प्रतिनिधियों के दिमागों के दरवाजे इस कद्र बंद थे कि उनको सूझा ही नहीं कि शरणार्थी संकट आतंकवाद व जलवायु परिवर्तन एक ही पिता की संतान है और उसका नाम है बाजारवाद (मार्कटिज्म)।

ये कोई छुपा हुआ तथ्य नहीं है पिछले दो दशकों में अनेकों चिंतकों व इक्का-दुक्का राजनीतिज्ञों ने महत्वपूर्ण तथ्य को उजागर किया है। अमरीका के बर्नीसैण्डर इस टीम के सबसे नए सदस्य हैं। नवम्बर 2015 में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार अभियान के दौरान इन्होंने कहा कि सिरिया के गृह युद्ध का कारण वहां पड़ा अकाल है। अमरीका के ही मौसम विज्ञानी टीटले कहते हैं कि जलवायु बदलावों में अब इतनी क्षमता पैदा हो गई है कि ये पूरे-पूरे देशों को अस्थिरता व गरीबी में धकेल सकते हैं, धकेल रहे हैं और परिणामस्वरूप बड़े पैमाने का जन-विस्थापन व आतंकवाद पैदा कर रहे हैं। अमरीकी सरकार की कई रिपोर्ट इसी बात पर सहमति जताती दिखती हैं, पर इस भयानक संकट को पैदा करने में अपनी भूमिका को नकारती है। मुख्यधारा का मीडिया व बुद्धिजीवी-वर्ग इस महासंकट को पैदा करने में अमरीका, रूस, चीन जैसे महाशक्तियों की भूमिका चर्चा भी नहीं करना चाहता।

समानांतर चल रहे सम्मेलन में नाईजीरिया के सामाजिक कार्यकर्त्ता केनहेनशा ने विस्तार से चर्चा करके सिद्ध किया कि 'बोकोहरम आतंकी समूह' की पैदाइश के लिए अमरीकी तेल कम्पनी इक्शनमोबिल जिम्मेवार है। इस कम्पनी ने पिछले दस सालों में, अपनी जैविक इंधन दोहन गतिविधियों से नाईजर डेल्टा में चाड़ झील का 5वां हिस्सा सुखा दिया है। धरती व पशु दोनों बांझ हो गए हैं। परिणामस्वरूप पैदा हुआ है लोगों का पलायन और आतंकवाद का प्रेत। अब ये सब करने को 'इक्शन-मोबिल' को कौन मजबूर करता है? सीधे-सीधे उसका मुनाफा कमाने का जुनून। पेरिस महासम्मेलन के फैसले इस खेल पर कोई रोक लगा पाएंगे? आईए, इन फैसलों की थोड़े विस्तार से चर्चा करें।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जलवायुक अन्याय को स्वीकारते हुए पेरिस सम्मेलन के फैसले का आर्टिकल 3 'समान लेकिन विभेदीय जिम्मेवारी (CBDR) की बात करता है। इसमें विकसित व विकासशील देशों की अलग-अलग भूमिका की चर्चा करके अलग-अलग फैसलों की भी बात की है। भारत इसी बात को ही अपनी उपलब्धि बता रहा है। इसके तहत विकसित देश विकासशील देशों को तकनीक, धन व क्षमता-निर्माण के साधन उपलब्ध करवाएंगे। ऐसा इसलिए किया गया है कि औद्योगिक क्रांति के बाद से यही देश अपने हिस्से से कई हजार गुणा कार्बनडाईक्साईड वातावरण में छोड़ते रहे हैं, जिसके ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण ही धरती का तापमान बढ़ा है। सुनने में तो यह बहुत ही अच्छा लगता है, लेकिन एक तो धन की मात्रा बहुत ही थोड़ी है, मात्र सौ बिलियन डालर सालाना और वो भी सन् 2020 से।

दूसरे, यह सब लागू करने के लिए कोई कानूनी प्रतिबद्धता नहीं रखी

गई है। उल्टे इसकी भाषा से लगता है कि कभी भी आगे, भविष्य में इस सबका 'रिविव' करते हुए किसी भी देश को विकासशील से विकसित घोषित किया जा सकता है। यह एक ऐसा कदम है, जो यूरोप व अमरीका की ऐतिहासिक प्रदूषक की भूमिका को एकदम से नकार देगा साथ ही जिम्मेवारी मुक्त भी कर देगा।

यह ऐतिहासिक भूमिका कैसी रही है, जरा देखिए, मानव जाति को अपने प्रारंभ से लेकर 1750 तक कार्बन उत्सर्जन का स्तर 280 पी पी एम आने तक दसियों हजार साल लगे, लेकिन औद्योगिक क्रांति (1750) से 2005 तक 280 से 380 पी पी एम आने तक सिर्फ 250 साल ये है वो यूरोप व अमरीका की ऐतिहासिक प्रदूषणकर्त्ता की भूमिका जिससे वे बिना कुछ लिए दिए मुक्त होना चाहते हैं। 2005 के बाद से विकासशील देशों (खासकर चीन, कोरिया, जापान व भारत, ब्राजील, अफ्रीका, रूस आदि) की भूमिका शुरू होती है। हालांकि क्योटो प्रोटोकोल (1997) के बाद भी विकसित देशों ने अपनी नीतियों में कोई बड़ा बदलाव नहीं किया है। आज भी एक-एक हेज फण्ड का यूरोपीय या अमरीकी मालिक अपनी गर्मियों की छुट्टियों के दौरान इतना कार्बन उत्सर्जन कर देता है, जितना मालेद्वीव जैसे छोटे देश पूरे साल में करते हैं। 2005 के बाद से 2015 तक पी पी एम का स्तर पहुंचा है। यह 20 पीपीएम की बढ़ोतरी ही भारत और चीन को भी अमरीका व यूरोप के बराबर खड़ा कर रही है। यही है क्लाईमेटिक इनजस्टीस।

व्यवहार में 400 पी पी एम का अर्थ क्या है? इसका सीधा सा अर्थ है अगर सब कुछ इसी गति से चलता है तो 2037 से भी पहले 450 पीपीएम की सीमा रेखा (डेंजर लाईन) का पार हो जाना यानी पृथ्वी के औसतन तापमान में 5 डिग्री सैल्सियस की बढ़ौतरी। नतीजा ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्र का जलस्तर बढ़ना, तटीय शहरों व द्वीप समूह, मालद्वीव जैसे देशों का समुद्र में समा जाना, मानसून का उल्टा-पुलटा होना, अकाल भूखमरी, बीमारी, चक्रवात-तूफान। पेरिस महासम्मेलन के फैसले इसको 5 डिग्री सैल्सियस की बजाए 3 डिग्री सैल्सियस तक रख सकते हैं। बशर्ते वे कड़ाई से लागू हों। ऐसी भी कोई संभावना वहां नजर नहीं आती, क्योंकि उसमें सिर्फ सद्इच्छा है। 2 डिग्री सैल्सियस से नीचे 105 डिग्री सैल्सियस तक की। लेकिन व्यवहार में है, अलग-अलग देशों के स्तर पर गैर-अनिवार्य स्वयं द्वारा निश्चित योगदान। किस बात का योगदान? अलग-अलग देश 2020 में अपनी मर्जी ये तय करेंगे कि हम अपना कार्बन उत्सर्जन एक स्तर से (चरम स्तर से) आगे नहीं जाने देंगे। उसको बनाए रखने व कम करने के लिए नई ऊर्जा नीति, साफ बिजली (सौर ऊर्जा), साइकिल और न जाने क्या-क्या। सारी सद्इच्छाए हैं। अच्छी-अच्छी बातें हैं।

पर्यावरण कार्यकर्त्ताओं, संस्थाओं में से कुछ ने तो साफ-साफ कहना शुरू कर दिया है कि पहले तो इस बाजारवादी व्यवस्था ने अपने मुनाफे की हवस के कारण ये संकट पैदा किया है और अब ये सब मिलकर इस संकट से मुनाफा कमाएंगे।

पेरिस महासम्मेलन के पूरे करार में कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है जो उम्मीद जगाता हो। इसकी सफलता की गारंटी की जिम्मेवारी अलग-अलग देशों की सद्इच्छा, ईमानदारी, समझदारी व उनके पुनर्विचार के सहारे छोड़ दी गई है। जलवायु परिवर्तनों के दुष्प्रभावों से जानमाल का जो भी नुक्सान होगा, उसकी भरपाई व दोषी देशों की जिम्मेवारी की चर्चा करार के दोनों हिस्सों में है, लेकिन यह भी साफ-साफ लिखा है कि इसे कानूनी जिम्मेवारी से नहीं जोड़ा जा सकता, यानी कि मालदीव, अमरीका या यूरोप पर मुकद्दमा दर्ज नहीं करा सकता। अब ये सब दोषी देशों की दयालुता और सद्इच्छा पर ही निर्भर होगा कि वे गरीब देशों के नुक्सान की भरपाई करें या न करें। यही बात आर्टिकल 2 में भी है कि विकासशील देश अपने कार्बन उत्सर्जन का चरम स्तर खुद ही तय करेंगे। यह भी बहुत डराने वाली बात है। चीन, भारत, अफ्रीका व ब्राजील जिस गति से ऊर्जा निर्माण (न्यूक्लीयर समेत) की योजनाएं लागू कर रहे हैं व भविष्य में और ज्यादा विस्तार की योजनाएं घोषित कर रहे हैं।

पेरिस करार में शेष रह गए 'कार्बन स्पेस' के इस्तेमाल में न्याय की बात की गई है। इसको बराबरी के आधार पर तय किया जाएगा। यह आधार क्या है। अगर यह प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन न होकर पूरे देश का कुल कार्बन उत्सर्जन हुआ तो फिर चीन व भारत तो अमरीका यूरोप से आगे निकल जाएंगे। सब कुछ उलझा हुआ है। अगर प्रति व्यक्ति भी है, तो भी भारत जैसा विशाल देश बचे हुए कार्बन स्पेस का विकास के इसी माडल में किस तरह इस्तेमाल करेगा कि भारत की आबादी का आधे से भी ज्यादा हिस्सा (70 करोड़ लोग) न्यूनतम सुविधाओं के साथ जिंदगी जी सकें। इस हिस्से की भारत के कुल कार्बन उत्सर्जन में न के बराबर भूमिका है और ये ही नारकीय जीवन जीने पर मजबूर हैं। पिछले दस सालों का विकास, इनके जीवन स्तर को सुधार नहीं पाया, बल्कि

उसे और अधिक नारकीय बनाया है। अगर राष्ट्रों के बीच क्लाईमेटिक अन्याय मौजूद है, तो राष्ट्र के अंदर उससे भी बड़ा क्लाईमेटिक अन्याय मौजूद है। अगर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्याय में अमरीका-यूरोप अपनी ऐतिहासिक भूमिका को स्वीकारना नहीं चाहते, तो राष्ट्रीय अन्याय में भी शासक वर्ग अपनी भूमिका स्वीकारना नहीं चाहता। उसका बुद्धिजीवी वर्ग व मीडिया अगर चर्चा करता है तो एक राजनीतिक पार्टी से दूसरी राजनीतिक पार्टी पर दोषारोपण तक रह जाता है।

ठीक है कि दिल्ली व अन्य महानगरों-नगरों की जहरीली हवा के संकट ने (खासकर सर्दियों में) भारत में पर्यावरणीय संकट पर आम चेतना को जगाया है। लेकिन व्यवहार में, फैसलों में, कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि ये चक्र रूकेगा। नीतियों में कोई बड़ा बदलाव होगा। आने वाली भारी विपदाओं के समय आमजन की मुसीबत का कोई स्थायी हल होगा। एक रोजगार ऊजाड़ विकास माडल से तो अस्थायी हल की भी संभावना नजर नहीं आती। आखिर हल क्या है?

हल है उपभोक्तावादी विलासिता पूर्ण जीवन शैली की जगह प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलित संबंधों वाली तार्किक, वैज्ञानिक, न्याय संगत आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था। दूसरे शब्दों में ऊंच-नीच, भेदभावभरी बाजारवादी व्यवस्था का अंत। लेकिन पेरिस महासम्मेलन ने न तो इस विकास माडल को जिम्मेवार ठहराया है और न ही इसमें कोई बड़े बदलाव की बात की है। पेरिस महासम्मेलन ने पृथ्वी ग्रह के अंधकारमय भविष्य के लिए रोशनी की कोई छोटी सी किरण भी नहीं दिखाई है।

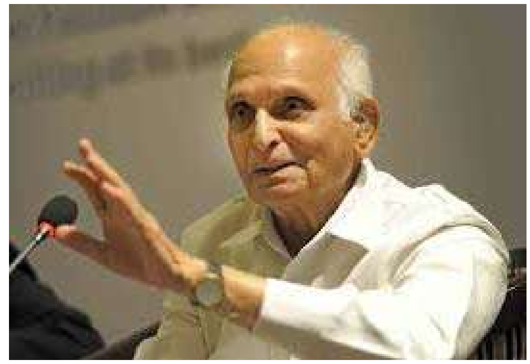
मो : 9253240576

■

हिन्दी व उर्दू के बीच पुल

इंतजार हुसैन की याद में

गुरबख्श सिंह मोंगा



उदार, सहज और सरल व्यक्तित्व के धनी इंतजार हुसैन 2 फरवरी, 2016 को 92 वर्ष की आयु में हमसे सदा के लिये रूखसत हो गये । इंतजार हुसैन बुलंद शहर (उत्तर प्रदेश) के डिबाई कस्बें में पैदा हुए। उन्होने मेरठ कॉलेज से उर्दू साहित्य में 1946 ई0 में स्नातकोत्तर की परीक्षा पास की। बाद में उन्होंने अंग्रेजी विषय में भी एम.ए. किया । नवम्बर 1947 में जब दंगे लगभग समाप्त हो चुके थे, तब उन्होंने मेरठ से पाकिस्तान जा रही स्पैशल ट्रेन पकड़ी और लाहौर जा पहुंचे। उनका कहना था कि उन्हें इस बात का गुमान नहीं था कि वे हमेशा के लिए पाकिस्तान जा रहे हैं और बाद में भारत आने-जाने के लिए पासपोर्ट, वीजा जैसी औपचारिकताओं की जरूरत भी पड़ेगी । वे ताउम्र अपने लेखन में उस रंग को भरते रहे जो उन्हें इस कस्बे ने दिया। उनका कहना था कि किरदार वही हैं, जो डिबाई के लोग थे । पाकिस्तान में रहते हुये भी उनका दिल भारत में लगा रहा । उनका कहना था कि ''विभाजन के दर्द की वजह से ही मेरी कलम चल पाई वर्ना मैं लिख नहीं पाता।''

उर्दू अदब में उनकी जगह बहुत ऊंची मानी जाती है। पाकिस्तान के अलावा भारत सहित दुनिया भर में उनका लेखन चर्चा में रहा । उन्होंने 5 उपन्यास व 6 कहानी सग्रहों की रचना की । 'बस्ती', 'हिन्दूस्तान से एक खत', 'आगे समन्दर है', 'शहर-ए-अफसोस', 'जातक दास्तां', 'जन्म कहानी' और 'वो जो खो गये' खूब चर्चित रहीं । इंतजार हुसैन को पाकिस्तान का 'सितारा-ए-इम्तियॉज' पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ। सितम्बर 2014 में उन्हें फ्रांस की सरकार ने 'आफिसर ऑफ दि आर्डर डेज् आर्टस' उपाधि से अलंकृत किया।

इंतजार हुसैन ने कई वर्षो तक लाहौर से छपने वाले उर्दू अखबार 'इमरोज' को अपनी सेवाएं दी और बाद में उर्दू दैनिक 'मशरिक' को भी वर्षों तक समृद्ध किया । पिछले दिनों तक कराची से छपने वाले अंग्रेजी साप्ताहिक 'डॉन' के लिये नियमित रूप से एक कॉलम लिखते रहे।

मुनव्वर राणा के शब्दो में, 'जितना प्यार इंतजार हुसैन को हिन्दुस्तान के लोग करते हैं शायद पाकिस्तान के भी ना करते हों'।

वे पत्रकार, उपन्यासकार के इलावा एक बेहतरीन इन्सान भी थे। हिन्दुस्तान में अक्सर आते थे। बीमार और कमजोर होने पर भी उन्होंने कभी लाचारी नहीं दिखाई उन्हें फरवरी में भारत आना था। कृष्णा सोबती के साथ उनकी एक बातचीत तय हो चुकी थी।

हमारे पास उनके ना होने पर भी जो लेखन के रूप में उपलब्ध है, वो हमेशा उनके होने का एहसास दिलाता रहेगा । सात दशकों तक उर्दू-हिन्दी साहित्य को निरन्तर समृद्ध करने वाली शख्सियत को शत-शत् नमन !

सेवानिवृत्त उप-प्रबन्धक, भारतीय स्टेट बैंक, सिरसा। मो: 9996684988

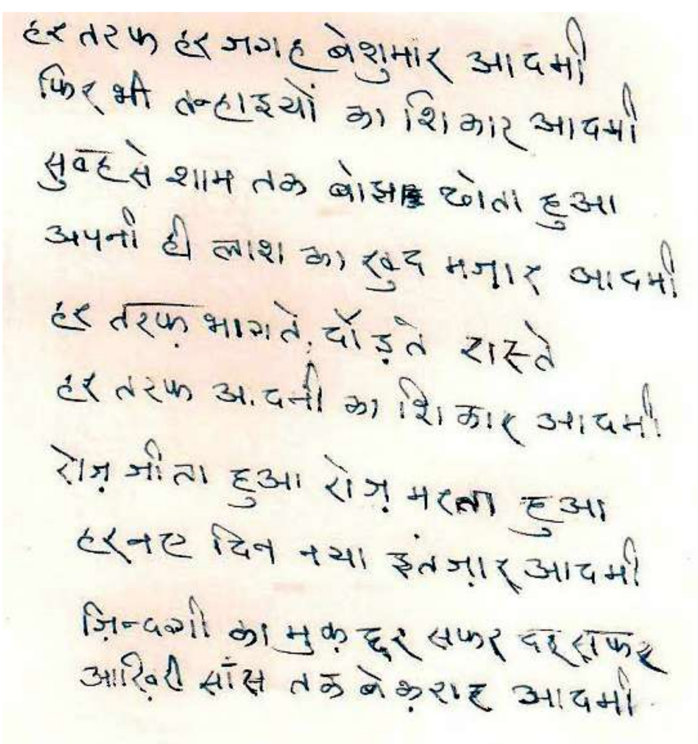


चाहने वालों की सांसों में जीवित रहेंगे
निदा फाजली

-विपुला

निदा फाजली का असली नाम मुक्तदा हसन था। निदा लेखन का नाम था। निदा यानी आवाज। फाजली, फाजिला से बना था, जहां से निदा के पुरखे आकर दिल्ली में बस गए थे। निदा यानी आवाज, वह आवाज, जो न तो माता-पिता के सामने दबी और न ही किसी और के सामने। तभी तो जब देश में दंगे फैलने के बाद उनके माता-पिता मुर्तजा हसन व जमील फातिमा ने पाकिस्तान जाने का निर्णय लिया, तो निदा बगावती हो गए। दादाजी के साथ भारत में ही रहे। पढ़ाई ग्वालियर में की। फिर मुंबई पहुंच कर धर्मयुग, सारिका जैसी पत्रिकाओं में लिखा। उन्होंने सूर, कबीर, तुलसी, बाबा फरीद जैसे कवियों को पढ़ा। सीधी-सादी भाषा में लिखते थे। सरल भाषा उनकी अपनी शैली बन गई। 1998 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उन्होंने पिता की मृत्यु पर कुछ पंक्तियां लिखी थी कि कोई पिता कभी मरता नहीं, वह अपनी संतान की सांसों में जीवित रहता है। निदा साहब अपने अंसख्य चाहने वालों की सांसों में जीवित रहेंगे। 8 फरवरी 2014 को मशहूर शायर की 77 साल की आयु में निधन हो गया।

निदा फाजली की कलम से



हर तरफ हर जगह बेशुमार आदमी
फिर भी तन्हाइयों का शिकार आदमी
सुबह से शाम तक बोझ ढोता हुआ
अपनी ही लाश का खुद मज़ार आदमी
हर तरफ़ भागते, दौड़ते रास्ते
हर तरफ आदमी का शिकार आदमी
रोज़ जीता हुआ रोज़ मरता हुआ
हर नए दिन नया इंतज़ार आदमी
ज़िन्दगी का मुक़द्दर सफ़र दर सफ़र
आख़िरी साँस तक बेक़रार आदमी

निदा फ़ाज़ली के कुछ दोहे

सबकी पूजा एक सी, अलग-अलग हर रीत
मस्जिद जाए मौलवी, कोयल गाए गीत

पूजा-घर में मूरती, मीरा के संग श्याम
जितनी जिसकी चाकरी, उतने उसके दाम

सात समुन्दर पार से कोई करे व्यापार
पहले भेजे सरहदें, फिर भेजे हथियार

चाकू काटे बांस को, बंसी खोले भेद
उतने ही सुर जानिए, जितने उसमें छेद

बच्चा बोला देखकर, मस्जिद आलीशान
अल्ला तेरे एक को, इतना बड़ा मकान

मैं रोया परदेश में, भींगा माँ का प्यार
दुःख ने दुःख से बात की, बिन चिट्ठी बिन तार

सातों दिन भगवान के क्या मंगल क्या पीर
जिस दिन सोये देर तक भूखा रहे फ़कीर

सीधा-सादा डाकिया जादू करे महान
एक ही थैले में भरे, आँसू और मुस्कान

सम्पति कर द्वारा सामाजिक असमानता दूर करने के उपाय

डा. अशोक चौहान

पिछले दिनों फेसबुक के मालिक मार्क जकरबर्ग ने अपनी बेटी के जन्म पर अपनी सम्पति के 99 प्रतिशत हिस्सेदारी को सामाजिक कार्यों के लिए समर्पित करने की प्रतिज्ञा की। यह धन एक निजी कम्पनी के माध्यम से विभिन्न गैर सरकारी संस्थाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य तथा मूल शोध कार्यों के लिए दिया जाएगा। इससे पहले माईक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेटस भी अपनी सम्पति के अधिकांश भाग को गरीबी दूर करने के लिए दान देने की घोषणा कर चुके हैं भारत में विप्रो के चेयरमैन अजीम प्रेम जी भी अपनी मूल सम्पति का आधा भाग शिक्षा हेतु देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इन्फोसिस के मालिक श्री नारायण मूर्ति तो अधिकांश लाभांश अपने मुलाजिमों में ही बांट देते हैं। टाटा संस घराने के पास सभी टाटा फर्मों के मात्र 2 प्रतिशत ही शेयर हैं। ये सभी स्वागत योग्य उदाहरण हैं तथा गांधी जी के समाजवाद के अनुरूप हैं, जिसमें उद्योगपति को सामाजिक पूंजी का ट्रस्टी माना जाता है। गांधी जी मानते थे कि यदि सम्पति निजी हाथों में भी रहे तो भी समाजवाद आ सकता है, बशर्ते कि उद्योगपतियों का हृदय परिवर्तित हो जाए। हम नहीं जानते हैं कि इस शर्त को सच होने में कितना समय लगेगा। भारत में पूंजी सामाजिक हित में कार्य करना कैसे शुरू करे, यही विचार करने के लिए यह लिखा गया है।

हमारे सामने प्रश्न है कि एक लोकतांत्रिक, राजनीतिक, बाजार-आधारित मिश्रित अर्थ प्रणाली किस प्रकार जनपरक बनाई जा सकती है। यह कहना आवश्यक होगा कि 'सर्वहारा का अधिनायकवाद' तभी सफल होगा, यदि उत्पादन के साधन, प्रणाली तथा संबंध सभी समाजवादी होते। यदि उत्पादन की प्रणाली पूंजीवादी हो तो वह धीरे-धीरे सबंधों व साधनों को भी पूंजीवादी में बदल देगी। चीन तथा रूस में ऐसा ही हुआ है, क्योंकि हमारे यहां उत्पादन प्रणाली पूंजीवादी है। अत: हम यह मान कर चलें कि किसी भी प्रकार का अधिनायकवाद हमारे यहां भी सफल नहीं होगा। इतिहास लोकतांत्रिक प्रणाली के अनेक लाभ सिद्ध कर चुका है। सन् 2008 के वित्तीय संकट ने यह भी सिद्ध कर दिया कि एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था अधिक टिकाऊ है।

वर्तमान भारत की पूंजीवादी व्यवस्था, कर प्रणाली तथा वित्तीय ढांचा पूंजी को श्रम से अधिक महत्व देता है। उसका नतीजा यह है कि कुल आय में पूंजी का भाग बढ़ता जा रहा है तथा श्रम का हिस्सा घट रहा है। सन् 1978-79 में पूंजी का आय में भाग 52 प्रतिशत से बढ़कर अब 2013-14 में 76 प्रतिशत हो गया है तथा श्रम का हिस्सा 48 प्रतिशत से घट कर 24 प्रतिशत रह गया है। यह तब है जब श्रम के भाग में हम सभी वेतन तथा दैनिक मजदूरी को गिनते हैं। यदि केवल दैनिक मजदूरी को ही श्रम का भाग माना जाए तो पता लगेगा कि 90 प्रतिशत आय पूंजीपतियों या प्रोफेशनल के पास दी जा रही है। पिछले छतीस वर्षों में संगठित क्षेत्र में रोजगार की दर एक प्रतिशत से भी कम रही है। अभी भी 93 प्रतिशत रोजगार असंगठित क्षेत्र में है। (संगठित क्षेत्र का अर्थ है कि वे संस्थान जहां दस या उससे अधिक लोग काम करते हैं) उदारीकरण के बाद रोजगार तथा श्रम की हिस्सेदारी तेजी से घटी है। उद्योगों में तकनीकी समावेश की गति बढ़ने से निजी क्षेत्र कामगारों से छुटकारा पाने में लगा हुआ है। सरकारी क्षेत्र में भी अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए कर्मिकों की संख्या नहीं बढ़ा रहा है। मिलीभगत के पूंजीवाद की वजह से राष्ट्रीय सम्पतियां जैसे कि जमीन, कोयला, गैस, तेल, स्पेक्ट्रम निजी क्षेत्र को हस्तांतरित किए जा रहे हैं। पानी के दोहन की तो कोई नीति ही नहीं है। मिट्टी, पत्थर, रेत, बजरी आदि का माफियाओं द्वारा खनन किया जा रहा है। सरकारी विभागों में तालमेल न होने की वजह से परियोजनाएं अधूरी है, जिसका खामियाजा उद्योगों तथा बैंकों को भुगतना पड़ रहा है। महंगाई को काबू में करने के लिए रिजर्व बैंक ऋण सस्ता नहीं कर रहा है। अत: साफ है कि उद्योगपतियों के पास निवेश न करने के तमाम बहाने मौजूद हैं। अत: यह स्पष्ट है कि रोजगार बढ़ाने का काम अब औद्योगिक क्षेत्रों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। रोजगार तो

लघु कथा

राष्ट्र का सेवक

प्रेमचंद

राष्ट्र के सेवक ने कहा - देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीच नहीं, कोई ऊँच नहीं।

दुनिया ने जय-जयकार की - कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय! उसकी सुंदर लड़की इंदिरा ने सुना और चिंता के सागर में डूब गई।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जाति के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा - यह फरिश्ता है, पैगंबर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है। इंदिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जाति के नौजवान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराए और कहा - हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।

दुनिया ने कहा - कैसे शुद्ध अंत:करण का आदमी है! कैसा ज्ञानी!

इंदिरा ने देखा और मुसकराई।

इंदिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली - श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा - मोहन कौन है?

इंदिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा - मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

सरकार को ही बढ़ाना होगा, परन्तु कैसे?

हम देखते हैं कि अक्सर सरकारों के पास एक ही बहाना है कि धन नहीं है, वेतन कहां से दें? अभी हाल ही में एक अंतर्राष्ट्रीय एजेंसी के अनुसार देश से हर वर्ष 3.4 लाख करोड़ रुपए का काला धन बाहर भेजा जा रहा है। ऐसा भी माना जाता है कि लगभग आधी सकल आय के बराबर काला धन हर साल अर्जित किया जा जाता है- अर्थात् लगभग 70 लाख करोड़ रुपए। इस पर यदि 10 प्रतिशत भी आयकर मिल जाए तो 7 करोड़ रुपए राजस्व बढ़ेगा। यदि काला धन को छोड़ भी दें, तो वे कर जोकि राज्य को उद्योगों से लेने थे, परन्तु लिया नहीं गया, 44 लाख करोड़ रुपए है। इतने धन से देश की गरीबी स्तर से नीचे के सारे लोग 80 वर्ष तक गरीबी से बाहर रखे जा सकते हैं। अधिकांश काला धन सम्पति में छुआ हुआ है।

सामान्य बात है कि कोई भी काले धन को नकद रूप में नहीं रखना चाहेगा, क्योंकि मुद्रास्फीति के कारण नकदी का मूल्य अपने आप घटता रहता है। काले धन को लोग या तो जमीन-प्लाट-दुकान आदि खरीदने में लगाते हैं या सोना या बाहर भेज देते हैं। देश में केवल 3 प्रतिशह जनता ही आयकर देती है। काला धन भी इन्हीं के पास है। इनमें मुख्य: उद्योगपति, राजनेता तथा बड़े नौकरशाह हैं। अधिकतर काला धन निर्यातकों तथा आयातकों द्वारा क्रय-विक्रय बिलों में गड़बड़ी करके बाहर भेजा जाता है।

अब एक उद्योगपति की नजर से देखें। एक फर्म को लगभग 33 प्रतिशत आयकर देना पड़ता है तथा बची हुई आय जब मालिकों के पास पहुंचती है, उन्हें भी 33 प्रतिशत आयकर देना पड़ेगा। यदि इसमें अप्रत्यक्ष कर (लगभग 14 प्रतिशत) भी जोड़ दें, तो उद्योगपति को ऐसा लगेगा कि उसकी आय का 80 प्रतिशत भाग सरकार के पास चला गया है। अत: कम्पनी का भाग घोषित करने की अपेक्षा अपने पास नकद ही रखना पसंद करेगी, उससे उसके ऊपर का मूल्य भी बाजार में बढ़ेगा। स्पष्ट है कि फर्म और उसके मालिक के पास करों से बचने/चोरी करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन उपलब्ध हैं।

अनेक राजनेता अपना धन या तो कृषि में या निजी शिक्षण संस्थानों में लगा रहे हैं। क्योंकि वहां आयकर से आसानी से बचा जा सकता है। अचल सम्पतियों की कीमत इतनी बढ़ चुकी है कि नया उद्योग या काम-धंधा शुरू करना ही कठिन हो चुका है। इन सभी समस्याओं का एक ही इलाज है सभी प्रकार की अचल सम्पतियों के स्वामित्व पर ही कर होना चाहिए।

यदि भारत विश्व में न्यूनतम स्तर पर आयकर रखे (शून्य रखे) तो काले धन का बाहर जाना बंद हो जाएगा। यदि निजी व कार्पोरेट दोनों प्रकार की अचल सम्पतियों पर मात्र एक प्रतिशत कर उसके बाजार मूल्य पर लगाया जाए तो वह लगभग 10 प्रतिशत आयकर के बराबर होगा तथा कोई भी कर बंचना नहीं कर पाएगा, क्योंकि कोई भी मकान-दुकान-प्लाट तथा औद्योगिक भूमि छुपाई नहीं जा सकती। चाहे वह बेनामी ही क्यों न हो। आमतौर पर तर्क दिया जाता है कि जो सम्पतियां कुछ आय अर्जित नहीं कर पा रही हैं, उनसे कर क्यों लें। इसका जवाब है कि समस्या तो उन्हीं सम्पतियों से है, जो कुछ आय अर्जित नहीं कर पा रही है। काला धन उसी में छुपा होता है। यदि वे कुछ आय नहीं कमा रही हैं, तो उनके मालिक या तो कर देंगे या उनको बेच देंगे। इस तरह अचल सम्पतियों की कीमत गिरनी शुरू हो

जाएगी, जो लोग घर बनाना चाहते हैं, उनकी प्लाट तक पहुंच बढ़ जाएगी तथा गृह निर्माण उद्योग चल पड़ेगा, जोकि लाखों अकुशल लोगों को रोजगार देगा। जो लोग दुकान खोलना चाहते हैं, उनको दुकान कम कीमत पर मिल जाएगी तथा उसमें लाभ कमाने की संभावना भी अधिक होगी। नए उद्योग लगाने के लिए भी जमीन अधिक आसानी से उपलब्ध होगी। यदि सभी प्रकार की अचल सम्पतियों का एक राष्ट्रीय डाटाबेस बनाया जाए, तो यह एक क्रांतिकारी कदम होगा।

हमारे देश में भौतिक, वित्तीक तथा बौद्धिक-कोई भी पूंजी सुरक्षित नहीं है। सभी भौतिक सम्पतियों का राष्ट्रीय डाटाबेस जहां एक तरफ पूंजी की सुरक्षा करेगा, दूसरी तरफ उन पर कर संग्रहण को भी सरल कर देगा। पूंजी पर कर लगाने से पहले उसकी सुरक्षा ज्यादा जरूरी है। परन्तु जब तक डाटाबेस न बने, तब तक अधिकारियों को स्वयं जाकर ही सम्पति कर में गणना व संग्रहण को कार्य करना होगा।

आय, व्यय, उपभोग व उत्पादन पर कर की बजाय सम्पति पर कर अधिक उचित है। याद रखिये कि आय की असमानता सम्पतियों के असमान वितरण की वजह से है। सम्पति पर कर लगाना राजनीतिक रूप से कठिन कार्य है, परन्तु करना ही होगा। केवल कुछ ही लोगों तथा कम्पनियों को काबू करना पड़ेगा।

सभी पब्लिक लिमिटिड कम्पनियों की संख्या आठ हजार से कम है, जिनमें से केवल 4000 जमा ही स्टाक मार्किट में सूचिबद्ध हैं। इनमें कुल मालिकों की संख्या आठ सौ से कम परिवार हैं। सभी आयातक-निर्यातक भी यही लोग हैं। देश की 38 प्रतिशत से अधिक कार्पोरेट सम्पति इन आठ सौ परिवारों में ही केंद्रित है। उद्योगों से जन्म लेने वाला अधिकतर काला धन इन्हीं के पास है। इस पहली श्रेणी के बाद लगभग 5 लाख लोग राजनीति में सम्बद्ध है, जिसमें सांसद, विधायक, राज्य-सभा के सदस्य आदि हैं। तीसरे श्रेणी में बड़े भ्रष्ट नौकरशाह आते हैं, जोकि लगभग 20 लाख होंगे।

यदि व्यक्तियों की सम्पति पर कर लगाया जाए, तो वे उसे कार्पोरेट सम्पति में बदलेंगे। अतः शुरूआत करनी चाहिए हिन्दू संयुक्त परिवार फर्मों व उनके मालिकों से। फिर पब्लिक लिमिटिड कम्पनी व उनके मुख्य शेयर धारकों पर शिकंजा कसना चाहिए। उसके बाद प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी व उनमें मालिकों का नंबर आना चाहिए। इसके बाद भविष्य में सरकार बड़े जमींदारों को कर दायरे में लाने के बारे में सोच सकती है। यदि शुरू में ही कृषि-भूमि पर कर लगाने की बात की गई तो राजनेता लोग छोटे किसानों को बहका कर अनावश्यक आंदोलन खड़ा कर देंगे। यदि उचित कर संग्रह किया गया तो सरकार का घाटा कम होगा, जिससे रुपया मजबूत होगा तथा विदेशी निवेश अपने आप आएगा। प्रधानमंत्री जी को विदेशी दौरे नहीं करने पड़ेंगे।

आमतौर पर कहा जाता है कि रुपए का अवमूल्यन करने से निर्यातकों को प्रोत्साहन मिलता है। मेरे विचार में निर्यातकों को जरूरत से ज्यादा ही प्रोत्साहन दिया जा रहा है तथा देश को कोई लाभ नहीं हो पा रहा है। हमें रुपए का विनिमय मूल्य स्थिर कर देना चाहिए। एक अर्थव्यवस्था जिसमें ब्याज की दर बाजार आधारित हो तथा लगभग पूर्ण परिवर्तनीय पूंजी खाते मान्य हों, स्थिर मुद्रा विनिमय का भार वहन कर सकती है। भारत में ब्याज की दर अंतर्राष्ट्रीय दर से अधिक होने के कारण स्थिर मुद्रा विनिमय दर से विदेशी पूंजी अपने-आप आएगी। यदि न भी आए, सरकार के पास अपनी कर उगाही ही इतनी हो जाएगी कि विदेशी पूंजी की जरूरत नहीं पड़ेगी।

अधिक धन तो सेवा व उद्योग क्षेत्रों तथा इनमें काम करने वाले व इन कम्पनियों के मालिकों के पास ही है। भारत में कृषि वैसे भी ऋणात्मक सब्सिडी की शिकार है तथा घरेलू सकल आय में उसका योगदान 15 प्रतिशत से कम है। अतः अचल सम्पतियों पर कर लगाने के लिए हमें ध्यान उद्योगों व सेवा कम्पनियों के मालिकों, सरकारी नौकरशाहों व राजनीतिकों पर ही केंद्रित करना चाहिए। कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

-आयकर विश्व में न्यूनतम रखा जाए, परन्तु पूरा खत्म न किया जाए, क्योंकि बिना आयकर तथा उसकी राहतों के बीमा कम्पनियों का बाजार रुक जाएगा।

- जैसे आयकर प्रणाली में कुछ निम्न आय तक कर में छूट है, इसी प्रकार कुछ न्यूनतम सम्पति पर कर छूट रखी जा सकती है।

- अर्थव्यवस्था में सम्पतियों की एक श्रेणी ऐसी भी होनी चाहिए, जिस पर कोई कर न हो। भारत में यह श्रेणी पेपर गोल्ड हो सकता है, ताकि कुछ काला धन वहां छुपा रह सके तथा बाहर न जाए।

- निजी उपयुक्त सम्पतियों पर कार्पोरेट सम्पति से कुछ अधिक कर लगाया जा सकता है, ताकि निजी सम्पति को कार्पोरेट उत्पादक सम्पति में बदलने का प्रोत्साहन रहे।

- उत्पादन प्लांट व मशीनों पर कर न लगाया जाए।

- किसी प्रकार की वित्तीक निवेश सम्पतियों पर कर न लगाया जाए। इस प्रकार के करों से स्टॉक मार्किट गिर सकती है तथा वास्तविक निवेश बाधिक होगा

– बैंक डिपाजिट पर कर लगाया जाए, क्योंकि यह आय भी बिना परिश्रम द्वारा अर्जित की गई है। नकदी मुद्रास्फीति के कारण कर आप ही दंडित होता रहता है।

– बौद्धिक सम्पतियों पर कोई कर न लगाया जाए, क्योंकि उनमें सामाजिक लाभ निजी लाभों से अधिक होते हैं।

– सभी पब्लिक लिमिटिड कम्पनी, सरकारी कम्पनियों व विभागों की सम्पति पर भी कर लगाया जाए या उसको बेचा जाए। हो सके तो सरकार सभी को किराए पर लेकर काम करे, अपनी सम्पति रखे ही न।

–प्रत्येक आवासीय भवन से कर लिया जाए।

–कोई भी धंधा बिना रजिस्ट्रेशन के न हो, उसे जीएसटी के दायरे में लाया जाए। जीएसटी सभी प्रकार की आय जैसे कि ब्याज, भाड़ा, लाभ व मजदूरी पर लगने वाला कर है। अतः यह भी श्रम व रोजगार को निरूत्साहित करता है। जीएसटी कर मजदूरी काटने के बाद लगाया जाए, तो बेहतर होगा।

– कर-प्रशासन अपने विभागों में नियुक्ति प्रारंभ करे तथा उनके भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सतर्कता विभाग में ज्यादा अधिकारी कर्मचारी रखे। कर संग्रहण बढ़ने के बाद सरकार अन्य विभागों में नियुक्ति आसानी से बढ़ा सकती है।

भारत में भूमि सुधार लागू कर कठिन कार्य है। भूमि अधिग्रहण बिल की जो हालत हुई है, वह सर्वविदित ही है। भूमिहीन किसानों के हालात अत्यंत दयनीय हैं। छोटे और मझोले किसान भी संकट में है, परन्तु अनेक जमींदार जो खुद खेती नहीं करते तथा केवल लगान लेते हैं, कृषि पर बोझ हैं। जो खेती नहीं करते तथा खेती पर निर्भर हैं, उन्हें खेती से कैसे निकाला जाए, एक बड़ी समस्या है। ऐसे लगान खोरों को बिना जमीन छीने भी दंडित किया जा सकता है।

– एक उचित सम्पति कर प्रणाली पेश की प्रत्येक जमीन के टुकड़े, मकान, भवन, प्लाट तथा दुकान को एक सशक्त उत्पादन यंत्र में बदल देगी।

अर्मत्य सेन के अनुसार एक न्यूनतम शिक्षा, न्यूनतम कार्यक्रम, कुछ न्यूनतम कौशल तथा प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच गरीबी को पूर्णतः मिटाने में सक्षम है। गरीब लोग सेवा व उद्योग नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के साथ अधिक सुविधा से काम कर सकते हैं। सभी राष्ट्रीय वन, झीलें, नदियां तथा जोहड़ कुछ कठोर नियमों के साथ गरीब लोगों के हवाले किए जा सकते हैं तथा उनसे भी सम्पति कर लिया जा सकता है। इस प्रकार वन एवं पर्यावरण विभाग का बोझ तो कम होगा ही, प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर लोग दीर्घकाल तक उनकी रक्षा को भी प्रतिबद्ध हो जाएंगे तथा भू व खनन माफिया से भी छुटकारा पाया जा सकेगा। खुशी की बात है कि संयुक्त वन प्रबंधन व उसमें जनता की सहभागिता के लिए सारे कानून बन चुके हैं, केवल सम्पतियों तथा उनमें लाभों को वन्य जन जातियों के हवाले करना शेष है। जंगलों से प्राप्त गैर-टिम्बर वन्य उत्पाद का 10 प्रतिशत ही वन्य जनजातियों तक पहुंच पाता है।

हमने देखा है कि समाज नई प्रकार की सम्पतियों का भी निर्माण करता रहता है। इन नई सम्पतियों को इन लोगों को दिया जा सकता है, जो पहले भूमिहीन हैं या गरीब हों। उदाहरण के लिए हम पाते हैं कि निजी सुरक्षा एजेंसियों में सुरक्षा कर्मियों की मांग बढ़ रही है। अतः हथियारों के लाईसेंस भूमिहीन सम्पति विहीन लोगों को दिए जाने चाहिएं। लाईसेंस नामक सम्पति पर कर लगाया जा सकता है। निर्माण करने में प्रयुक्त होने वाली बहुउद्देशीय मशीनरी में रजिस्ट्रेशन भूमिहीन सम्पतिहीन लोगों को दी जा सकती है।

सरकार एक कानून बनाए कि प्रत्येक स्वच्छता से जुड़ा कार्य मशीन द्वारा किया जाए तथा उन मशीनों का पंजीकरण गरीब जाति के लोगों के नाम पर ही होगा। सभी स्वच्छता कर्मचारियों को अधिकार दिया जाए कि वे प्रदूषण फैलाने वालों पर, ठोस कूड़ा निपटाने के नियमों का पालन न करने वालों पर, पानी का अपव्यय करने वालों पर जुर्माना कर सके। प्रत्येक शहर में ठोस कूड़ा प्रबंधन हेतु जमीन आबंटित की जाए तथा बिजली व खाद बनाया जाए। इस उपक्रम पर भी सम्पति कर लगाया जाए। समाज की एक पूरी की पूरी जाति सम्मान से जीने लायक बन जाएगी, बल्कि अन्य जातियों में भी स्वच्छता कार्य की नौकरियां पाने की होड़ पैदा हो जाएगी।

इस प्रकार सम्पतियों पर कर लगाने से प्राप्त धन से सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, ऊर्जा, पानी, सड़क, सुरक्षा आदि क्षेत्रों में रोजगार पैदा कर सकती है। बिना पर्याप्त सूचनाओं के सरकार का काम नहीं चलता। अनेक कार्य अध्यापकों को करने पड़ते हैं। यदि प्रत्येक गांव में एक सर्वेक्षण कर्मचारी भी रखा जाए। लाखों लोगों को तुरंत रोजगार मिल जाएगा। यह सर्वेक्षण अधिकारी सभी कर योग्य सम्पतियों की पहचान भी कर सकता है।

मेरे लेख का स्पष्ट आशय है कि कर होना चाहिए असमानता, प्रदूषण व अर्कमण्य पर न कि आय, उत्पादन या मजदूरी पर। तब ही पूंजी के मुकाबले श्रम की महता स्थापित हो सकेगी।

(अर्थ शास्त्र विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
मो : 9729541007)

■

भूले बिसरे

पीर बुद्धू शाह

सुरेन्द्रपाल सिंह

हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले में यमुना नदी के किनारे एक शहर की स्थापना दसवें पातशाह साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा हुई थी। इस शहर को पांवटा साहिब के नाम से जाना जाता है, जिसका कारण गुरु जी के पांव/चरणों का उस स्थान पर पड़ना था। गुरुद्वारा पांवटा साहब के नाम से वहां पर एक एतिहासिक और भव्य गुरुद्वारा सुशोभित है।

पांवटा साहिब से करीब 10 किलोमीटर की दूरी पर एक और ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, भंगाणी साहिब। भंगाणी उस स्थान का नाम है, जहां सन् 1686 में पहाड़ी राजाओं के गठजोड़ और गुरु गोबिन्द सिंह के बीच एक लड़ाई हुई थी, जिसमें गुरु गोबिन्द सिंह जी अपने करीब चार हजार अनुयायियों के साथ पहाड़ी राजाओं की करीब तीस हजार की फौज पर भारी पड़े थे।

सन् 1666 में जन्में गुरु गोबिन्द सिंह जी मात्र 9 वर्ष के थे, जब उन्होंने अपने पिता नौवें गुरु तेग बहादुहर की शहादत का 1675 में अहसास किया। तदुपरांत आनन्दपुर साहिब में उनकी बढ़ती लोकप्रियता और गतिविधियां इस इलाके के राजा भीमचंद को रास नहीं आ रही थी। दूसरे पहाड़ी राजा भी राजा भीमचंद की तरह खतरा महसूस करने लगे थे, क्योंकि गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी फौज तैयार करनी शुरू कर दी थी, जिनमें 500 पठान भी शामिल थे। पहाड़ी हिन्दू राजपूत राजाओं को दूसरी बड़ी चिढ़ इस बात की थी कि निम्न जाति के लोग तेजी से गुरु गोबिन्द सिंह के जातिविहीन समुदाय की ओर आकर्षित होने लगे थे और इस प्रकार उनका सिर उठाकर जीने का प्रयास उन राजाओं को फूटी आंख भी नहीं सुहा रहा था। जब अनेक प्रकार की धमकियों का कोई असर नहीं हुआ तो उन राजाओं ने सामूहिक रूप से मिलकर पहले गुरु गोबिन्द सिंह से जुड़े हुए अधिकतर पठान सिपाहियों को खरीदा और फिर हमला कर दिया। उल्लेखनीय है कि इस हमले से पहले गुरु गोबिन्द सिंह के कैंप में रहने वाले अधिकतर उदासी अनुयायी भी उन्हें छोड़ कर चले गए थे। ये भंगाणी की लड़ाई थी, जिसमें गुरु गोबिन्द सिंह को जीत हासिल हुई।

इस लड़ाई का एक दिलचस्प अध्याय है-पीर बुद्धू शाह। सिख इतिहास पर लिखी गई अनेक पुस्तकों व सढौरा में स्थित गुरु द्वारा जन्म स्थान पीर बुद्धू शाह द्वारा प्रकाशित पुस्तक से हमें इस संबंध में रोचक व ज्ञानवर्धक जानकारियां मिलती हैं।

कहा जाता है कि पीर बुद्धू शाह सैयद खानदान में पैदा हुए थे, जिस खानदान में हजरत मोहम्मद की सबसे छोटी बेटी की शादी हुई थी। गुरु नानक देव जी की मक्का मदीना व बगदाद की उदासी (यात्रा) के दौरान उनसे प्रभावित होकर करीब 200 परिवार वहां से पंजाब में आकर बस गए थे। इन्हीं परिवारों में वक्त के साथ साईं मियां मीर (जिनके हाथों स्वर्ण मंदिर अमृतसर की नींव रखी गई थी), पीर भूरे शाह, शाह हुसैन और पीर बुद्धू शाह जैसे लोकप्रिय सूफी फकीर हुए।

पीर बुद्धू शाह का असली नाम बदरूदीन था, जिनके बुजुर्ग शाह कयूम कादरी 15वीं शताब्दी में बगदाद से आकर सढोरा में बस गए थे। सन् 1647 में पैदा हुई बदरूदीन पटियाला जिले में स्थित घड़ाम के पीर भीखण शाह के शागिर्द बन गए और इन दोनों का 9वें गुरु तेग बहादर जी से काफी मेलजोल था। जब गुरु गोबिन्द सिंह पांवटा साहिब आए, तो पीर बुद्धू शाह और गुरु गोबिन्द सिंह का मेलजोल बढ़ गया और पीर बुद्धू शाह की सिफारिश पर गुरु गोबिन्द सिंह ने 500 पठानों के दस्ते को अपने साथ मिलाया था। इन पठानों के सरदार औरंगजेब की नाराजगी के शिकार इन पठानों को कोई भी राजा या नवाब अपनी फौज में मिलाने की हिम्मत नहीं कर रहा था।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोबिन्द सिंह जी पर हमला करने से पहले अधिकतर पठानों को धन और लूट के बहाने अपने साथ मिला लिया था। जब पीर बुद्धू शाह को पठानों के पासा पलटने की खबर मिली तो वे तुरन्त अपने चार पुत्रों, दो भाइयों और 700 अनुयायियों के साथ सढोरा से चलकर गुरु गोबिन्द सिंह के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। इस लड़ाई में गुरु की फौज को जीत तो हासिल हुई, लेकिन पीर बुद्धू शाह के दो पुत्र अशरफ शाह और मोहम्मद शाह व भाई भूरे शाह शहीद सहित 500 अनुयायी शहीद हुए।

लड़ाई के उपरांत तोहफे के तौर पर पीर बुद्धू शाह की मांग पर गुरु गोबिन्द सिंह ने उन्हें अपनी पगड़ी, एक छुरी और केश फंसे हुए अपना कंघा भेंट किया।

भाई काहन सिंह नाभा ने 'महान कोष' में लिखा है कि नाभा के महाराजा भरपूर सिंह (1840-1860) ने कीमती तोहफे व जागीर देकर ये निशानियां पीर बुद्धू शाह के वंशजों से लेकर नाभा रियासत के गुरुद्वारा सिरोपाव में गुरु गोबिन्द सिंह की अन्य निशानियों के साथ सम्मानपूर्वक टिका ली गई।

सन् 1701-04 के दौरान आनन्दपुर साहिब में पहाड़ी राजाओं व मुगल फौजों के साथ गुरु गोबिन्द सिंह का तनाव बढ़ा तो सरहन्द के सुबेदार वजीर खां के हुक्म से सढौरा के दरोगा उस्मान खां ने 1704 में पीर बुद्धू शाह की सारी जायदाद को आग लगा दी व छतबीड़ के जंगलों में ले जाकर पीर के शरीर के पुर्जे-पुर्जे करके उन्हें मार डाला गया। सन् 1709 में पीर बुद्धू शाह की मौत का बदला बंदा सिंह बहादुर ने उस्मान खां को मारकर व सढोरा को तहस-नहस करके लिया।

राजपूत राजाओं द्वारा गुरु गोबिन्द सिंह का विरोध, पीर बुद्धू शाह द्वारा अपने बेटों, भाई, अनुयायियों और आखिर में अपनी जान को गुरु गोबिन्द सिंह के लिए कुर्बान कर देना आदि कुछ ऐसे पहलू हैं जो किसी न किसी वजह से अनछुए रहते हैं। शायद इसका मुख्य कारण लगातार इतिहास को एक पक्षीय रंग देने का प्रयास रहा है।

संदर्भ :

1. ए हिस्ट्री ऑफ सिखस्, खुशवंत सिंह
2. संक्षित इतिहास गुरुद्वारा जन्म स्थान पीर बुद्धूशाह जी सढोरा साहिब (गुरुद्वारा द्वारा प्रकाशित पुस्तिका)
3. बंदा सिंह बहादुर एंड सिख सोवरेंटी, सम्पादन हरबंस कौर
4. द सिखस् देयर जर्नी ऑफ फाईव हंडरड ईयर, राजपूत सिंह
5. द सिखस् इन्साईक्लोपेडिया
6. महान कोष द्वारा भाई कहान सिंह नाभा
7. साहब-ए-कमाल गुरु गोबिन्द सिंह, लेखक दौलत राय

मो : 9872890401

रपट

वैज्ञानिक चेतना व साहित्य का कारवां



1 से 7 फरवरी तक तर्कशील सोसाईटी पंजाब की साहित्य वैन वैज्ञानिक चेतना पैदा करने के लिए हरियाणा जिला सिरसा के विभिन्न स्कूलों में पहुंची। तर्कशील सो.पंजाब की इकाई कालांवाली (सिरसा) के सहयोग से वैन से विद्यार्थियों ने बड़ी मात्रा में साहित्य खरीदा।

सबसे पहले गांव सकता खेड़ा के हाई स्कूल में प्रोग्राम पेश किया गया । मास्टर शमशेर सिंह द्वारा तर्कशील संस्था का निर्माण व उदेश्य के बारे जानकारी दी। उन्होंने प्रसिद्ध वैज्ञानिक वैचारिक इब्राहिम टी. कवूर के जीवन व उनके द्वारा किये गये चमत्कारों के पर्दाफाश व उन द्वारा दैवीय शक्तिओं के चमत्कारों को पेश करने पर दी गई चुनौती को विस्तार से बताया।

वैन संचालक जसवीर सिंह व मा.अजायब जलालाना द्वारा जादू के ट्रिक दिखा कर उनके पीछे छुपे हुए रहस्यों के बारे जानकारी दी। बहुत सारे पाखण्डी लोग घरों तथा धार्मिक स्थलों पर जादूई चमत्कार दिखा कर भ्रमित करके लोगों का मानसिक, शारीरक और आर्थिक शोषण करते हैं। तर्कशील संस्थाएं लोगों को मानसिक स्वास्थ्य सबंधी भी जागरूक करती है।

बच्चों के लिए साहित्य वैन की खिड़कियाँ खोल दी जाती हैं। और वे आराम से पुस्तकों का अवलोकन करके खरीदारी करते हैं। सकताखेड़ा गांव में शहीद भगत सिंह लाईब्रेरी के मेम्बरों ने इस प्रोग्राम पूर्ण सहयोग किया प्रधान हरदीप सिंह गगनदीप सिंह व स्कूल मुख्य अध्यापक ने विशेष भूमिका निभाई। गांव गंगा के सी.सै.स्कूल में वहां के प्रिंसिपल व अध्यापकों ने साहित्य वैन का स्वागत किया गया और बच्चों ने प्रोग्राम पूरी दिलचस्पी ली।

दूसरे दिन गोरीवाला स्कूल के विद्यार्थियों ने कहा हमारे स्कूल में ऐसा वैज्ञानिक चेतना वाला प्रोग्राम पहली बार हुआ हमें बहुत सीखने को मिला। फिर नुहिंयांवाली तथा बाद में आरोही माडल स्कूल जलालाना के स्कूल में साहित्य वैन पहुंची वहां विद्यार्थियों ने बहुत सारे प्रश्न उठाये। बच्चों ने साहित्य की खरीद की। अगले दिन गांव सुखचैन, देसु मलकाना, फग्गू व रोड़ी गांव के स्कूलों में प्रोग्राम पेश किया जिसमें प्रिंसिपल सिकन्दर सिंह,जगदीश सिंह, वकील सिंह, बलजीत सिंह ने सहयोग किया। रविवार छुट्टी होने पर गांव सुरतिया की चौपाल में प्रोग्राम पेश किया गया।

पूरे सात दिन तक तर्कशील साहित्य वैन ने साहित्य से लोगों को परिचित करवाया। इन पुस्तकों की कीमत बहुत ही कम थी। आज के इलेक्ट्रोनिक व प्रिंट मीडिया में अन्धविश्वास परोसा जा रहा है। और इससे आमजन किस्मतवाद, पुनर्जन्म, भाग्य, हाथ की रेखाओं में विश्वास करके अपने वास्तविक जीवन के हालात और समस्याओं के समाधान नहीं खोज पा रहा।

अजायब जलालाना मो : 94167-24331

धमाचौकड़ी

मुर्गे की शादी

मुर्गी जी से शादी करने,
मुर्गे जी लाए बारात।

कौआ, तोता, बुलबुल, मैना,
सबको लाए अपने साथ।

कौआ राजा, मैना रानी,
आए कोट पहन कर काला।

तोता हरे सूट में आया,
पहने लाल गले में माला।

मुर्गा जी भी दूल्हा बनकर,
सीना अपना खूब फुलाए।

उजला पीला सूट पहन कर
पगड़ी लाल सजाकर आए।

जन्म दिन

मोर-मोरनी नाच रहे हैं,
भालू ढपली बजा रहा।

पत्तों की झंडी से तोता
सारा जंगल सजा रहा।

बंदर लेकर केले आया,
बकरी ले कर आई बेर।

कौआ लाकर केक कह रहा
काटो जल्दी होती देर।

चुहिया का है आज जन्म दिन
हाथी खड़ा हिलाए कान।

मेंढक जी ने ढोल बजाया
कोयल जी ने गाया गान।

खिचड़ी

बगुला चावल लेकर आया,
चिड़िया रानी लाई दाल।

तोते जी ने आगे बढ़कर
काटे चार टमाटर लाल।

ले आई अचार गौरेया,
मैना चटनी पीस रही।

मुर्गा देसी घी ले आया
कौआ लेकर चला दही।

सबने मिलकर पलभर में ही
खिचड़ी भी कर ली तैयार।

घी के साथ मिलाकर खाई,
खिचड़ी चटनी दही आचार।

सुनाओ वही कहानी

नानी-नानी मेरी नानी
मुझे सुनाओ वही कहानी

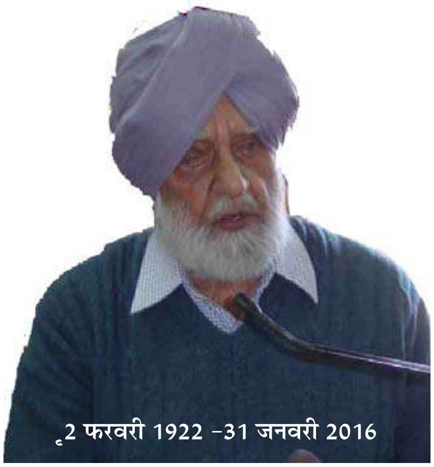
जिसमें कोयल गाती है,
मैना ढोल बजाती है।

मोर नाचता रहता है,
हिरन दौड़ता रहता है।

हाथी कान हिलाता है,
भालू नाच दिखाता है।

भौंरा गुन-गुन गाता है,
बगुला चुप-चुप रहता है।

नानी-नानी मेरी नानी
मुझे सुनाओ वही कहानी।


2 फरवरी 1922 -31 जनवरी 2016

एक बायो-डाटा के एवज में

रणधीर सिंह, अनुवाद : विनीत तिवारी

प्रो. रणधीर सिंह द्वारा लिखे गए एक लेख को उनके परिचय की तरह प्रस्तुत कर रहे हैं, जो न केवल उनकी अपनी जिंदगी की दास्तां हैं, बल्कि उस दौर के बारे में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

मेरे पास अपने बारे में बताने के लिए कोई बड़े प्रमाण-पत्र नहीं हैं, बस एक जिंदगी है, जो थोड़ी फर्क किस्म से मैंने जी है।

लोग कहते हैं, जिंदगी में बचपन बहुत खास होता है। मेरे बचपन पर शहीद भगतसिंह की बहादुरी की बहुत बड़ी तस्वीर फैली हुई है, वो सुबह अभी भी मेरी याददाश्त में बिल्कुल साफ चमकती है, जब मुझे स्कूल जाते हुए, रास्ते में लाहौर सेन्ट्रल जेल के पास रोक दिया गया था। चारों तरफ फौज और पुलिस, इंसानियत का उमड़ता सैलाब, हर आंख में आंसू और हर चेहरे पर फख्र, हर तरफ शहीदों की तस्वीरें और कभी न खत्म होती लगती, 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की ललकार। उस सुबह ने मुझे एक ख्वाब दिया, जो आज तक सदा किसी न किसी शक्ल में मेरे साथ रहा।

इस तरह मैं बड़ा हुआ। और दूसरी बड़ी जंग (विश्व युद्ध) छिड़ने के ऐन पहले मैं फिर लाहौर आया। इस दफा अपनी कॉलेज की पढ़ाई करने के लिए। मेरे पिता ने इस मौके पर अपने इकलौते लड़के को यह सलाह दी थी कि 'बाहर रहकर और कुछ भी करना, लेकिन किसी भी गैर कानूनी संगठन से ताल्लुक मत रखना।' लाहौर पहुंच कर मैंने सबसे पहला काम यही किया और कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गया। मैंने अपने पिता को खत में लिखा कि 'मैंने अपना असल खानदान पा लिया है।' उस दौर में कम्युनिस्ट पार्टी यही मायना रखती थी और कम्युनिस्ट होना अपने-आप में एक फख्र की बात थी। पांच दशक गुजर जाने के बाद भी उस फख्र का थोड़ा अहसास कायम है।

बाद के कई बरस स्टूडेंट मूवमेंट की काफी खलबली वाली गतिविधियों और कम्युनिस्ट पार्टी के साथ काम करने के रहे, जिसमें सारी छुट्टियां लाहौर से दूर फैक्टरी मजदूरों के साथ या गावों में किसानों के साथ गुजरती रहीं।

हमारी गिनती यूनिवर्सिटी के आला दिमाग लड़कों में थी। मैं मेडिकल कालेज में चुन लिया गया था, लेकिन जाहिर बात यह थी कि लगातार बढ़ते सियासी काम की मांग के चलते मेडिकल की पढ़ाई नामुमकिन ही होगी। सो सलाह मानकर पॉलिटिकल साइंस में मास्टर डिग्री करने का आसान रास्ता चुन लिया। बाद में मैंने जाना कि यह सोशल साइंसेज के बाकी विषयों में सबसे गरीब विषय है। इसकी एक खास वजह मुझे ये लगती है कि यह मार्क्सवाद के लिए या तो अपनी आंखें बंद रखता है, या फिर दुश्मनी का रवैया अपनाता है। हालांकि पिछले कुछ बरसों में मार्क्सवाद को एक 'राजनीतिक विचार' की तरह मान्यता देने में उतनी नफरत नहीं बरती जा रही है।

बहरहाल कम्युनिस्ट पार्टी में फुल-टाइम काम करने के लिए पॉलिटिकल साइंस की पढ़ाई भी कुछ बरसों बाद छोड़नी पड़ी और आजादी के बाद तक पंजाब के कस्बों और गांवों में लोगों को, बरास्ते आजादी की लड़ाई, मुल्क में समाजी इन्कलाब के लिए इकट्ठा करता रहा। जल्द ही अंग्रेज सरकार ने मुझे जेल में डाल दिया। इत्तफाक से जेल के कुछ महीने मैंने भगतसिंह के साथी किशोरीलाल और कुछ बचे हुए कॉमरेड्स के साथ उसी वार्ड में काटे, जिसे टेररिस्ट वार्ड कहा जाता था।

सालेक भर जेल काटने के बाद बाहर आया, तो मुझ पर भी कुछ वक्त सरकार की कई तरह की पाबंदियां लगा दी गई थीं। जलसों, आंदोलनों में नहीं जा सकता था, सो वक्त काटने के लिए पार्टी के पंजाबी साप्ताहिक 'जंग-ए-आजादी' के सम्पादकीय स्टाफ में काम किया।

फिर चालीस के दरम्यानी बरसों में लगभग इन्कलाबी लहर आई। वो वक्त अजीम (महान) और हरदिल अजीज (लोकप्रिय) लड़ाई का वक्त था। साम्राज्यवाद के साथ भावताव और समझौते किए गए, नतीजतन दंगे, बंटवारा, और दंगे, फिर और दंगे और हिन्दुस्तान की आजादी। एक यकीन किया गया था, जिसके साथ गद्दारी हुई। वो बरस शानदार थे, फिर भी एक तरह की बेइज्जती उन बरसों में शामिल थी। वो बरस एक साथ हिन्दुस्तान के लोगों की जीत और हार के बरस थे। ज्यादा साफ कहें तो यह कामयाबी, भले ही वह कितनी भी धुंधली हो, गांधी और बुर्जुआ अगुवाई वाली सियासत की यकीनी कामयाबी थी। और साथ ही हमारी कम्युनिस्ट सियासत की यकीनी शिकस्त, भले ही वह कितनी भी अस्थायी हो। इस नाकामयाबी में बी.टी. रणदिवे के जोखिम भरे तजुर्बों और तेलंगाना के बहादुरों की लड़ाई की नाकामयाबी शामिल थी। मैं इनका सांझेदार बना और इन सबके बीच लड़ते हुए जिंदा रहा। इनमें से कुछ तजुर्बे, जो बहुत निजी होने के साथ-साथ राजनीतिक और समाजी भी थे, मेरी एक पंजाबी नज्मों की किताब 'राहों की धूल' (1950) में अपने-आपको इजहार कर सके। इनमें से एक में मैंने लिखा था।

एक कारवां अपनी मंजिल तक पहुंचा
फिर भी अपना रास्ता कहीं खो बैठा

फिर कभी मैंने शायरी नहीं की- ये न पूछिये कि क्यों? जैसा पढ़ाई में हुआ, वैसा ही शायरी में भी। और शायद जिंदगी के और पहलुओं में भी, मैं सही मायनों में एक ऐसा इंसान हूं 'जो हो सकता था (A genuine might have been)।'

बंटवारे के बाद मैं दिल्ली आया। अपनी जड़ों से उखड़ा हुआ, एक रिफ्यूजी। 'वक्ती तौर पर' मैंने दिल्ली के एक कॉलेज में पढ़ाना शुरू कर दिया। वह कॉलेज तब कैंप कॉलेज कहलाता था, जो पंजाब यूनिवर्सिटी ने रिफ्यूजी विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए शुरू किया था। बाद में पता चला कि पढ़ाने का जो काम मैंने वक्ती तौर पर अपने लिए चुना था, वह जिंदगी भर मेरे साथ रहा। मेरे लिए इसका आरामदेह तर्क यह है कि 'इन्कलाब' आने के बाद हमारे समाज में पढ़ाने के काम में ही यह उम्मीद सबसे ज्यादा है कि आप एक कटी हुई जिंदगी न जी कर, लोगों के साथ जुड़े रह सकें। इस पेशे में, अगर आप चाहें और सिर्फ तब, जब आप चाहें, तो जिंदगी चलाने के लिए कमाने का काम, जिंदगी जीने के साथ-साथ किया जा सकता है। बाद में, मैं कैंप कॉलेज से दिल्ली कालेज में आ गया, जहां करीब 20 बरस पढ़ाया। फिर थोड़ा अरसा जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में गुजारने के बाद 1972 में, दिल्ली यूनिवर्सिटी से पॉलिटिकल थ्योरी के प्रोफेसर की हैसियत से जुड़ गया।

इस पूरे दौर में मेरे बायो-डाटा में ज्यादा कुछ नहीं जुड़ा। अकादमी से दूर रहा। कोई रिसर्च डिग्रियां नहीं, न मेरे 'अंडर' में काम कर रहे शोधार्थियों की कतार, न कोई फैलोशिप, न रिसर्च प्रोजेक्ट, न अध्ययन या अकादमिक अवकाश, न राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय किस्म की सेमीनारिंग, कुछ भी नहीं-यहां तक कि आजकल बड़ी विद्वता का सबूत मानी जाने लगी कोई विदेश यात्रा भी नहीं।

हाल ही में इंडियन कौंसिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च (ICSSR) ने शायद मदद करने का सोच कर एक आमंत्रण भेजा था, जिसमें एक विदेश यात्रा भी शामिल थी। पहले भी इस तरह के हर मौके से मैं बचता रहा था। फिर मैंने सोचा कि उसको उसूल ही क्यों न बना लिया जाए-और मैंने मना कर दिया। शायद मैं यह भी तस्दीक करना चाहता था कि इस देश में कम-से-कम एक प्रोफेसर तो ऐसा है, जो विदेश नहीं गया।

पढ़ाई और उससे जुड़े दीगर कामों के अलावा मैंने काफी वक्त शिक्षकों का आंदोलन खड़ा करने में बिताया। जनतांत्रिक हकों और यूनिवर्सिटी में सुधारों के लिए लड़ने में, कभी उप कुलपतियों के साथ, कभी उनके खिलाफ, मजदूरों, विद्यार्थियों, यूनिवर्सिटी से स्कूल शिक्षकों तक समाजवादी शिक्षा ले जाने में, मार्क्स क्लब चलाने में, पम्फलेट-बुलेटिन लिखने और छापने में, 'इन्क्वायरी', 'सोशलिस्ट-डाइजेस्ट', 'दि मार्किसस्ट रिव्यू' आदि जर्नल्स सम्पादित करने, निकालने और बांटने में, वियतनाम, चेकोस्लोवाकिया के मुद्दों पर मुहिम चलाने में, ईरानी छात्रों के लिए हस्ताक्षर इकट्ठे करने में और सभी तरह के जनता के मुद्दों पर लामबंद करने में, हर तरह की बदलाव की चाह भरी पहलकदमी में और इन्कलाबी जोखिमों में शामिल रहा, कैम्पस के भीतर भी और बाहर भी। इन सबके नतीजे के तौर पर कई बार मोहब्बत और नफरत के मिले-जुले रिश्ते भी बने।

पिछले 40 सालों से भी ज्यादा वक्त का ज्यादातर हिस्सा भी इसी तरह कटा। इन सबके अपने छोटे-मोटे खतरे भी रहे। मेरे लिए एक और तरह की

लड़ाई थी, जो पढ़ाने के पहले दिन से ही शुरू हो गई थी। बिल्कुल शुरू में ही मुझसे क्रांतिकारी विद्रोहों के बारे में पढ़ाने के लिए मना किया गया। बाद में उनकी बार-बार की कोशिशों ने मुझे एक खास कोर्स पढ़ाने से रोक दिया। लंबे अर्से तक उन्होंने मुझे केवल प्लेटो ही पढ़ाने दिया, मार्क्स नहीं। इस तरह मैंने बरास्ते प्लेटो, मार्क्स को पढ़ाना सीखा, जो न केवल मुमकिन हुआ, बल्कि कई मायनों में ज्यादा असरदार भी।

एक शिक्षक का किरदार मैंने ज्यादा खराब नहीं निभाया। कम-से-कम ऐसा मेरे विद्यार्थी, साथी और कई और लोग मुझसे कहते हैं। और मुझे उन पर यकीन करना अच्छा लगता है।

हमारे यहां पढ़ाने और शोध करने के जो ढांचे हैं और जिस तरह की भी 'काम करने की समझदारी' से ये चलाए जाते हैं, उनके चलते ज्यादातर शोधपरक लेखन मुश्किलों और जनता के लिए नहीं, बल्कि अभिजात्यों और नौकरशाही के रंग में रंग गए फिजूल अकादमिक पेशों में तरक्की और इज्जत पाने के लिए होता है। इससे सामाजिक विज्ञानों में फालतू और अक्सर लापरवाह विशेषज्ञता बढ़ती जा रही है, जिसके नतीजे में एक ऐसा मंजर बन रहा है जहां, कम-से-कम लोग, कम-से-कम चीजों के बारे में, ज्यादा-से-ज्यादा सुनते जा रहे हैं। ऐसे माहौल में अकादमिक स्कॉलरशिप की थोड़ी सी कमी, एक तरह से फायदेमंद भी हो सकती है।

मैं मानता हूं कि मेरी अर्थशास्त्र की समझ बहुत खराब है, जिसका मुझे हमेशा अफसोस भी रहा। लेकिन इस वजह से शायद मैं मार्क्सवाद के इंसानी, दार्शनिक और सबसे ऊपर राजनीतिक पहलुओं के लिए ज्यादा संवेदनशील हो सका। इस मुल्क की पॉलिटिकल साइंस की कक्षाओं में और इसके कोर्स में, या यूनिवर्सिटी में या सोशल साइंसेज की अन्य संस्थाओं में जो भी चलता है, उसका हिन्दुस्तान के लोगों के बेहतर कल के लिए होने वाली लड़ाई की मुश्किलों और बाकी पहलुओं के लिए बहुत कम प्रासंगिकता है। मेरे लिए राजनीति इंकलाब का मायना रखती है। मार्क्सवाद में 'राजनीति उसी तरह से बीचों बीच है, जिस तरह इन्कलाब, कम-से-कम उस मार्क्सवाद में जिस पर कार्ल मार्क्स खुद चला था। एंगेल्स ने कहा था 'मार्क्स और कुछ भी होने से पहले इन्कलाब में यकीन रखने वाला इंसान था।' मेरा यकीन इसी में है।

(Mainstream (1988) में प्रकाशित आत्म वृत्तात्मक लेख In Lieu of a Bio-Data का संक्षिप्त, सम्पादित व अनुदित अंश।)

■

सत्यवीर नाहड़िया की कुण्डलियां

1

तू बी चिमटा गाड़ दे, तू बी चोल्ला धार।
लंबर वन सै इब दिखे, बाब्बां का ब्योपार।
बाब्बां का ब्योपार, सार सै इतना भाई।
भरकै न्यारा भेस, करैं वै खूब कमाई।
नाहड़िया कबिराय, रोग तू सारे निमटा।
गड़े चुगरदे खूब, गाड़ दे तू बी चिमटा।।

2

पाखंडी ना मानते, करैं नये नित फंड।
पाखंडी करते सदा, पग-पग पै पाखंड।
पग-पग पै पाखंड, मंड दे सभ पै गार्या।
उबर सकै ना कोय, कदे बी इनका मार्या।
नाहड़िया कबिराय, बढ़ी जा इनकी मंडी।
मूस्सळ ठाओ हाथ, मिटैंगे ज्यब पाखंडी।।

3

खेत्ती ना आसान इब, खेत्ती टेढ़ी खीर।
खेत्ती काढ़ै ज्यान सै, खेत्ती इब सै पीर,
खेत्ती इब सै पीर, चीर कै धरती सीन्ना,
जमींदार का देख, सूकता नहीं पसीन्ना।
नाहड़िया कबिराय, गात नै करकै रेत्ती।
छह रुत बारा मास, खड़ी ड्यूटी सै खेत्ती।।

4

जगरात्ता इब होंवता, नये ढाळ तै आज।
बोत्तल पी कै गांवते, साथ कसूत्ते साज।
साथ कसूत्ते साज, काज यो होवै न्यारा।
खूब ठवावैं हाथ, नाचता कुणबा सारा।
नाहड़िया कबिराय, चढ़ावा चोक्खा आत्ता।
दारू म्हं धुत भगत, हुवै न्यारा जगरात्ता।।

5

डीज्जे गेल्यां होंवता, आजकाल हर भोज।
डीज्जे का रौळा घणा, गाम-नगर म्हं रोज।
गाम-नगर म्हं रोज, पोज डीज्जे पै न्यारा।
बेट्टे-बापू गैल, कूदता कुणबा सारा।
कितै जलेबी-डांस, करैं साळी अर जीज्जे।
जड़ रौळा की देख, कानफोडू यो डीज्जे।

257, सेक्टर-1, रेवाड़ी, मो : 9416711141

पुस्तक समीक्षा

तेरी-मेरी सबकी बात 'रोज वाली स्त्री'

दीप्ति नोडियाल

कुछ किताबों को पढ़कर अच्छा लगता है। कुछ किताबों को पढ़कर मन करता है काश। हमारी जिंदगी भी इन्हीं कहानियों जैसी मजेदार होती, लेकिन कुछ किताबें पढ़कर लगता है कि यह हमारी ही कहानी हैं, सारी घटनाएं, सारे पात्र हमारी ही जिन्दगी के हैं। कुछ ऐसा ही अनुभव होता है सपना चमड़िया की 'रोज वाली स्त्री' पढ़ते हुए। यह एक आम औरत की डायरी है, जिसमें वह दूध, धोबी, राशन के हिसाब-किताब के साथ-साथ अपनी जिंदगी का भी हिसाब रखती है। किताबों में स्मरणों, किस्सों, रोजमर्रा की घटनाओं के साथ-साथ कुछ कविताएं भी हैं, जो एक औरत के दु:ख उसके अकेलेपन, लाचारी और इससे मुक्त होने की छटपटाहट को दिखाती हैं।

किताब का पहला लेख 'वक्त की चोरी' बताता है कि औरतों की क्षमताओं को कैसे खत्म कर दिया जाता है और अगर क्षमता बचती भी है तो घर के थका देने वाले कामों के बाद उसके पास समय ही नहीं बच पाता, जिससे वह अपनी उन क्षमताओं का कुछ उपयोग कर सके।

यह किसी एक उम्र समूह या पेशेवाली स्त्री तक सीमित नहीं है। लेखिका कहती है-'वक्त बिल्कुल नहीं है मेरे पास, पेशे से मैं एक बेगार औरत हूं। मेरी उम्र 36 से 60 साल कुछ भी हो सकती है। 25 साल तक मुझे बकायदा सिलसिलेवार तरीके से बेगार की ट्रेनिंग दी गई और फिर एक बड़े से समारोह में मुझे मेरे मालिक को सौंप दिया गया।

कैसे सदियों से औरतें, एक ही तरह का घरेलू काम कर रही हैं। बेगार सदियों से यही काम करते-करते उन्हें इस काम की आदत भी हो गई है।

'औरतें कितनी ही दु:खी कितनी ही तकलीफ में क्यों न हों, उनका काम, बेगार चलता रहता है। वे बताती हैं और इस काम को (बेगार) करने के लिए किसी को कोई शर्म या गुलामी का एहसास तक नहीं होता।' मुझे शर्म आती है यह सोचकर कि मैं खुद कितनी उतावली थी, इस बेगार की परम्परा में आने के लिए।'

औरतों के गले में जब से इस बेगार के पट्टे को डाला गया, उसकी जिन्दगी से दिन-रात का भेद मिट गया है तो एक अजूबा बन गई हूं। 'जो सुबह-सुबह उठती है, तो रात गए तक कुछ न कुछ काम करती रही है, जिसका समाज में कोई मूल्य भी नहीं लगाता' लेखिका आगे लिखती है- 'जल्दी सुबह उठती हूं, मुर्गे की तरह काम में मुझे गधा या बैल समझो, खाने में कुत्ता समझ लीजिए, सीधेपन में गाय और रात होते ही मुझे खूबसूरत परी में तबदील हो जाना पड़ता है।

'रोज वाली स्त्री' किसी एक औरत की कहानी नहीं कहती। सभी औरतों की दिनचर्या यही होती है। औरतें पहले अपने दु:खों को छुपाने की कोशिश करती हैं। बताती हैं, वह कितनी खुश हैं, उन्हें उतना दु:ख नहीं है, जितना दूसरी और औरतों को है। पर धीरे-धीरे जब अपने मन को टटोलती हैं, तो वो समझ जाती हैं कि औरतों की जिंदगी एक जैसी ही है। उनके दु:ख सांझे हैं।

औरतें बेगार करने की इस परम्परा से छुटकारा पाने को तड़प रही हैं। वे चाहती हैं कुछ करना, कुछ खास, बड़ा करना जो उन्हें घर की चारदिवारी से बाहर निकाल सके, जो उनका अपना हो। और जैसे ही औरतें घरों से बाहर निकल कुछ खास, कुछ अपना करने की सोचती हैं कि वर्षों की परम्परा और समाज उसे घर, बच्चों, उनके कपड़ों, सोफों, बर्तनों और उनके लाखों कामों से इतना प्यार करना सिखाने लगता है कि उन्हें छोड़ के जाना औरत को मुश्किल लगने लगता है और अगर औरत उन्हें छोड़ के आगे बढ़ भी जाती है तो उसे समाज से अलग-थलग हो जाना पड़ता है।

किताब कहती है कि कैसे औरतों का घरों से बाहर जाकर काम करना भी उसे घरवाली औरत के साथ-साथ काम करने वाली औरत भी बना देता है। लेकिन एक पूरा इन्सान नहीं बनने देता। कैसे खुद को प्रगतिशील और औरतों के साथ होने के दम भरने वाले पुरुष भी उनकी योग्यताओं को खत्म करने का काम करते हें और औरत को और ज्यादा औरत में बदलते रहते हैं।

किताब के सारे ही लेख आज की मध्यवर्गीय महिलाओं की रोज के दु:खों को सांझा करते हैं और बताते हैं कि सभी के दु:ख एक जैसे ही हैं और अगर सब के दु:ख-सुख एक हें, सपने एक हैं तो उन्हें हासिल करने की लड़ाई भी साथ-साथ मिल-जुल कर ही लड़नी होगी।

किताब एक पुरानी लोक कथा के साथ खत्म होती है, जो कहती है कि हम समझदारी से एक साथ कदम बढ़ाकर ही अपनी मंजिल को हासिल कर सकते हैं।

तो बूढ़े कबूतर ने कहा-'दोस्तो घबराओ मत, हिम्मत मत हारो, जब मैं करूंगा इशारा तो सब के सब साथ पूरी ताकत से जाल लेकर उड़ जाना और कबूतरों ने अंतिम हार कबूलने से पहले आखिरी ताकत जुटाई और जाल लेके उड़ गए।

पुस्तक : 'रोज वाली स्त्री' लेखक : सपना चमड़िया, प्रकाशक : संभव प्रकाशन, पृष्ठ 88, मूल्य 80

■

दायित्व बोध पैदा करती कहानियां

मनीषा झा

जमाने के जिस दौर में हम जी रहे हैं, उसमें लगातार सार्थक जीए जाने में साहित्य की एक बड़ी भूमिका है। इस समय विभिन्न तरह के साहित्य पाठकों को उपलब्ध है, जिसे अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार वो स्वीकार करता है। इसी संदर्भ में 'देस हरियाणा' जो अभी लगभग बिल्कुल नयी पत्रिका है, में छपी दो कहानियों ने भीतर तक के मन को झकझोरा है। इन कहानियों के बारे में कुछ न कुछ लिखना आवश्यक लगता है।

मलखान सिंह की कहानी 'प्रश्नचिन्ह'

1. राधेश्याम का चरित्र प्रतीक रूप में उपस्थित है जैसा कि अन्ना आंदोलन के समय हुआ था। कुछ लोगों ने अपने लाभ के लिए रोटियां सेंकी थी और बाद में उन्हें बड़ा लाभ मिला भी।

2. देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई में आम जनता बल्कि समाज का जो सबसे निचला तबका है, वह भी अपनी रोजी-रोटी की चिंता छोड़ कर शामिल हो जाता है, क्योंकि समाज के यही वर्ग भ्रष्टाचार से सबसे अधिक पीड़ित हैं। जिसके पांच बच्चे हैं ओर बड़ी मुश्किल से अपने परिवार को चला रहा है, जब उसे सिंदर अनशन पर बैठने से रोकता है, तब उसका जवाब विचारणीय है, 'आ गोच्चे, तेना के पता देश का बारा मा, थान्ना या तो गोबर ठाया या लोग्यां ता गाळ दई आ। थाम के जाना भ्रष्टाचार के चीज ओवा।'

पूरा देश जिस भ्रष्टाचार की मार से पीड़ित है, ऐसे समय में आंदोलन ने एक उम्मीद जगायी, देश की ग्रामीण जनता अपना सब कुछ खोकर भी किसी तरह इस भ्रष्टाचार से मुक्ति चाहती है, लेकिन राधेश्याम जैसे कुछ लोग जिनकी संख्या में लगातार बढ़ौतरी हो रही है, बड़ी चतुराई से इन सीधे-सीधे लोगों की भावनाओं को छलने में कामयाब हो रहे हैं। लेखक ने बड़ी चतुराई से कहानी के आरंभ में ही राधेश्याम के चरित्र को इन शब्दों में उद्घाटित कर दिया है, 'पंडित राधेश्याम ने समय की नब्ज को पहचान कर बच्चों को बेचने के लिए कुछ चीजें रख ली-जैसे चांद तारे, टोफियां, मुन्नी के तारे, बंटी और बबली आदि।' हालांकि लेखक ने इनके लिए स्पष्ट कर दिया है कि ये चीजों के नाम है, लेकिन पाठक वर्ग बखूबी इस बात को समझ लेते हैं कि इसके पीछे उनका आशय क्या है।

तीसरी बात कहानी के नायक बलराज को लेकर है 'बलराज' चूंकि युवा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में दर्शाया गया है, इस आंदोलन और अन्ना के प्रति उसकी निष्ठा भी है, लेकिन बलराज के चरित्र में कुछ कमियां रह गई हैं। पूरी कहानी में बलराज ने एक बार भी दृढ़ता से विरोध या आपत्ति नहीं जतायी है। कहानी में बलराज ने स्वयं कभी कुछ नहीं कहा है। पाठक को उसके संदर्भ में सभी सूचनाएं अन्य लोगों से प्राप्त होती हैं। नए जमाने का युवक है, क्रांतिकारी वृत्ति है, लेकिन कहीं तो वह वृत्ति दिखे भी। वह स्त्रियों को इशारे से आंदोलन का हिस्सा बनाने का प्रयास अवश्य करता है, लेकिन उनके शामिल नहीं होने से मलाल करता रह जाता है। कहानी के अंत में भी उसका चुपचाप चले जाना थोड़ा निराश करता है।

अन्ना आंदोलन एक जन आंदोलन था, जिसमें बिना किसी भेदभाव के सभी लोग एक साथ आए थे। अगर अन्ना-आंदोलन को आधार बनाकर यह कहानी लिखी गई, तो लेखक को सतर्कता बरतनी चाहिए थी कि 'दलित विमर्श' की बात जब अन्ना आंदोलन में की जाती है, तब यह जबरदस्ती थोपी हुई चीज लगती है।

कहानी एक बड़े उद्देश्य और संदेश के साथ उपस्थित होती है, लेकिन अंत तक आते-आते लेखक किसी हड़बड़ाहट का शिकार हो जाते हैं।

हरभगवान चावला 'किश्तियां'

मेरे विचार से 'किश्तियां' 'समस्यामूलक' कहानी कही जा सकती है। कहानी के लेखक हरभगवान चावला ने अपने अनुभव की कसौटी पर कसने के बाद ही बड़ी खूबी के साथ पंजाब तथा हरियाणा के कुछ हिस्से (फतेहाबाद, सिरसा) के भूमिहीन किसानों तथा निचले

तबकों के सामने जो एक विकट समस्या होती है, उसका बड़ी गहराई से निरीक्षण-परीक्षण किया है। समस्याएं तो इस कहानी में कई उठाई गई हैं, जिनका एक-एक कर विश्लेषण भी होगा, लेकिन लेखक बड़ी समस्याओं के बीच भी समाधान की एक छोटी सी गुंजाइश वो ढूंढ निकालते हैं।

'किश्तियां' कहानी पंजाब के मालवा क्षेत्र के साथ लगते हरियाणा के अधिकांश हिस्से के ग्रामीण इलाकों के भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की कहानी है। कहानी के आरंभ में ही एक 'निबंधात्मक आलेख' के माध्यम से लेखक ने कहानी में उपस्थित समाज का वर्तमान और 'भूगोल' दोनों सामने रख दिया है। इसके साथ ही उन्होंने 'नवीन विवाह संहिता' की बात की है, जोकि पारम्परिक 'पराशर विवाह संहिता' से सर्वथा भिन्न है। आमतौर पर वैवाहिक विज्ञापनों में जहां विवाह के लिए 'वधु' का उच्चकुलीन, गोरी, सुंदर, योग्य के साथ दहेज की मोटी रकम अपेक्षित होती है। वहीं 'भूमिहीन' खेतिहर मजदूर के लिए कुंवारी, परित्यक्ता, विधवा कैसी भी वधू चाहिए...।' जैसी पंक्तियां स्थिति की भयावहता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती हैं। 'कैसी भी वधू' पूरे समाज के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है।

कहानी के लेखक एक और जहां महिलाओं की कमी जैसी समस्या को उठाते हैं, वहीं कहानी में उपस्थित सभी स्त्री पात्रों को स्वतंत्र अस्तित्व के साथ पूरी मजबूती के साथ प्रस्तुत करते हैं। कहानी में तीन प्रमुख महिला पात्र हैं पहली दुल्हन (जिसका नाम नहीं दिया गया है), दूसरी 'राणो' जो विकलांग है तथा तीसरी 'सुक्खी' तीनों बारी-बारी से 'बल्ली' जो कहानी मुख्य पात्र के साथ ब्याही जाती हैं।

बल्ली की पहली शादी 'किरती पूरबन' (बिहार या उड़ीसा से मोल लायी हुई लड़की से होती है) जोकि बल्ली के बड़े भाई की हवस का शिकार हो जाती है। इस संदर्भ में लेखक ने दो बातें बड़ी स्पष्ट रूप से सामने रखी हैं, एक बल्ली की मोल लायी हुई स्त्री के प्रति 'सोच' और दूसरा उसकी दुल्हन की वह जिद्द और पंचायत के सामने उसका ये बयान कि 'वह अब अपनी जिंदगी उसी के साथ काटेगी, जिसको उसने अपना पति मानकर देह अर्पित है।' बहुत बड़ी बात है ये किसी मोल लायी हुई दुल्हन की ऐसी जिद्द... खैर...

बल्ली की दूसरी 'किश्ती' चतुर है और अबकी बार उसका ब्याह होता है 'राणो' नाम की 'विकलांग' लड़की से। बल्ली 'राणो' के नखरे उठाता है, उसकी मां उसकी सेवा में लगी रहती है। मतलब बल्ली को उसकी विकलांगता स्वीकार्य है, लेकिन उसके मन पर वज्रपात तब होता है, जब एक दिन 'राणो' अपने हाथ पर इबारत लिखती है। बल्ली स्वयं 'पढ़ा-लिखा नहीं है, पास की एक स्कूल जाने वाली लड़की को बुला लाता है, वह उस इबारत को जब पढ़कर सुनाती है, 'बीजा मैं तैनूं याद करनी हां।'.... बल्ली के पैरों के नीचे से जमीन खिसक जाती है, फिर वही 'राणो' का इबारत लिखना जारी रहता है और वह बल्ली की हिंसा का शिकार बनती है। पंचायत फिर एक बार अहम भूमिका निभाती है। बल्ली जब पूछता है-आखिर तूं चाहंदी की है।'

'तेरे तों मुकती' स्त्री विमर्श का लाख ढोल पीट लें, लेकिन ये बात दावे के साथ कही जा सकती है कि आज के समय में भी तथाकथित संभ्रात समाज की महिला भी रोज पिटने के बाद भी 'तेरे तों मुक्ति' का आगाज नहीं कर सकती।

बल्ली की तीसरी शादी सुक्खी से होती है, जो सही मायने में सफल कही जा सकती है। सुक्खी के आचरण पर भी समाज संदेह करता है, लेकिन अंत में उसके जीवन का रहस्य खुलने पर बेटी को उसकी मां के पास लाने का महान कार्य बल्ली करता है।

भाषाई आधार पर दोनों कहानियों में अपेक्षित कसावट और प्रवाह विद्यमान है। ग्रामीण भाषा का प्रयोग लोक प्रचलित 'गालियों' के प्रयोग से पाठक को सहजता महसूस हो सकती है। 'किश्तियां' कहानी में लेखक ने कुछ बिम्ब बहुत अच्छे प्रस्तुत किए हैं। जैसे अंधेरी रात थी, तीन कमरों के कच्चे मकान के आंगन में एक पीला बल्ब जल रहा था पर आंगन पर पूरे विस्तार में फैलाकर उसकी रोशनी जैसे हांफ रही थी।'....'पीले बल्ब की रोशनी'....का बिम्ब दरअसल प्रकाश के सीमित फैलाव को दर्शाता है। 'हरभगवान चावला जी की कहानियों में उनका 'अनुभव' बोलता है। वहीं मलखान सिंह अभी इसी दिशा में आगे बढ़ने का बेहतर प्रयास कर रहे हैं। 'देस हरियाणा' पत्रिका के अभी तक तीन अंक आए हैं, जिनमें से दो अंकों में ये कहानियां छपी हैं। दोनों कहानियां अपने-आप में समाज के प्रति पूर्ण दायित्व बोध को उजागर करती हैं।

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

मो : 9466274955

■

नया सोचने व सीखने का अवसर

मैं 'देस हरियाणा' पत्रिका के प्रथम अंक से पत्रिका से जुड़ी हूं। मैंने 'देस हरियाणा' पत्रिका के तीनों अंक बड़े ध्यान से पढ़े हैं, जिनसे मैं बहुत प्रभावित हुई हूं। सितम्बर-अक्तूबर में छपा प्रथम अंक जो भाषा से संबंधित था, को पढ़ कर मेरे अंदर पढ़ने के प्रति उत्साह व जिज्ञासा बढ़ी। मैंने भाषा के महत्व को पहली बार इतनी गहराई से जाना। इससे पहले मैं भाषा को केवल विचारों का आदान-प्रदान ही मानती थी। भाषा का व्यक्ति के व्यक्तित्व, सभ्यता, संस्कृति, देश, राष्ट्र आदि के विकास निर्माण में बहुत बड़ा योगदान है। डा. जोगा सिंह ने अपने लेख में मातृभाषा के महत्व को दर्शाया है कि जितनी सफलता शिक्षा में मातृभाषा के माध्यम से प्राप्त होती है, उतनी सफलता विदेशी भाषा माध्यम से नहीं हो सकती। बहुत से स्कूलों में बच्चों पर मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं को सीखने के लिए अधिक दबाव डाला जाता है, जिस कारण बहुत से विद्यार्थी अपनी योग्यताओं को विकसित करने में पीछे रह जाते हैं।

निर्मला के लेख 'भाषा और लैंगिक वर्चस्व' से पता चलता है व्याकरण में वाक्यों के निर्माण में भी लैंगिक भेदभाव साफ देखा जा सकता है। इसी भाषायी भेदभाव ने स्त्री-पुरुष के अस्तित्व और पहचान की लड़ाई से दो हिस्सों में बांट दिया है। जगदीप सिंह, दीपक राविश, मलखान सिंह की कविताएं बहुत प्रभावित करती हैं। मलखान सिंह की कविता 'बच्चे की जिद्द' बहुत ही प्रशंसनीय है।

दूसरे अंक में सुरेखा की कविताएं, ब्रजेश कृष्ण की कविताएं बहुत प्रभावित करती हैं। तीसरे अंक में 'हरभगवान चावला' द्वारा लिखी गई कहानी 'किश्तियां' में समाज में महिलाओं की स्थिति व महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया दर्शाया गया है। महिलाओं को स्वयं को स्थापित करने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'ज्ञान प्रकाश विवेक' की कहानी 'फासला' में आज की व्यवस्था में रिश्तों के बदलते स्वरूप को दिखाया गया है कि किस तरह से व्यवस्था ने इन्सान को खुद तक ही सीमित रहने पर विवश कर दिया है कि उसके पास किसी-दूसरे के लिए समय ही नहीं बचा।

सुनील पागल की सारी कविताएं बहुत प्रभावित करती हैं, किन्तु 'शरीफ लड़कियां' और 'पुरुषों का सौंदर्यशास्त्र' बहुत अच्छी लगी। 'शरीफ लड़कियां' कविता पढ़कर शरीफ लड़कियों के बारे में बिल्कुल नया सोचने व पढ़ने को मिलता है। जसबीर सिंह लाठरों की कविताएं भी बहुत प्रभावित करती हैं, जिसमें किसानों की बुरी दशा का वर्णन किया गया है।

इस पत्रिका के माध्यम से बहुत कुछ नया सीखने को मिला। मेरे अन्दर पढ़ने की रूचि इसी पत्रिका के माध्यम से बनी।

प्रवीन दीप कौर, गांव माजरी, गुहला (कैथल)

मैंने जनवरी-फरवरी 2016 में छपा 'देस हरियाणा' का तीसरा अंक पढ़ा। पत्रिका को पढ़कर बहुत अच्छा लगा। बहुत कुछ सीखने को मिला। मैं तो कहूंगा कि 'देस हरियाणा' में कहानी, कविताएं, आलेख, शिक्षा-विमर्श, लघुकथा, रागनी, लोकगीत तथा गजलें आदि इतना कुछ पढ़ने को मिला। जसबीर सिंह लाठरों की कविताएं 'किसान' तथा 'टैटू' एक अद्‌भुत नजारा पेश करती हैं। जसबीर सिंह लाठरों ने अपनी कविता 'किसान' में किसानों की जो स्थिति का वर्णन किया है, वो दिल को छू जाने वाला है। जसबीर सिंह लाठरों ने अपनी दूसरी कविता 'टैटू' में जो भगत सिंह तथा चंद्रशेखर का टैटू बनवाने की बात कही, वो एक सच्ची देशभक्ति की मिसाल पैदा करती है। संगीता बैनीवाल ने अपनी हरियाणवी कविताओं में हरियाणवी बोली का वर्णन बहुत ही सुंदर ढंग से किया है। हरभगवान चावला की कहानी 'किश्तियां' बहुत ही प्रभावित करती है। 'किश्तियां' में बताया कि किस तरह गांव का लड़का बल्ली तीन बार मोल की लुगाई लाता है और पहली दो पत्नी किसी कारण से बल्ली को छोड़नी पड़ती हैं, लेकिन तीसरी पत्नी सुक्खी पहली वाली दोनों पत्नियों से बिल्कुल अलग थी। सभी मोल की लुगाई एक जैसी नहीं होती। 'आवाजें' में बताया गया कि जो आवाजें पहले अटक जाती थी, अब उन आवाजों को जगह मिलने लगी है। 'सच' कविता रेखांकित करती है कि सच को चाहे कितना भी छुपा लो वह एक दिन बाहर आ ही जाता है। 'बाजार और हमारे बच्चे' नामक कविता में सुनील ने उन सभी कम्पनियों पर तीखा प्रहार किया है, जो बच्चों को तरह-तरह के लालच देकर पैसा कमा रहे हैं। 'शरीफ लड़कियां' नामक कविता की चार अंतिम पंक्तियों में बहुत बड़ी बात कह दी है कि लड़कियों को शरीफ होने से ज्यादा अपने लड़की होने तथा खुद को बचाये रखना ज्यादा जरूरी होता है।

कुलदीप सिंह, कक्षा 11वीं,
गांव रेवर, नरवाना (जींद)

छपते-छपते

ये कौन थे?

-नरेश कुमार

बेटा, हमें देश के बंटवारे के समय की याद आ गई। सप्ताह भर अपने घरों में बच्चों को लेकर दुबके बैठे रहे। दुकान फूंकने और लूटने वाले दंगाई विशेष समुदायों को निशाना बना रहे थे। आगजनी और लूटपाट करने वाले हाथों में लट्ठ, फरसे, छुरे और लोहे के पाईप लिए शहर में बेखौफ घूमते रहे। उन्हें कोई रोकने वाला नहीं था। पुलिस हमारी जान-माल को बचाने में कहीं नजर नहीं आ रही थी। घर में दुबक कर भगवान से बचाने की दुआ करते रहे। बाहर सड़क पर दंगाइयों के झुंड दनदनाते घूमते रहे। हमारे घर के गेट को लोहे की राड़ों से तोड़ने की कोशिश की गई। काफी देर तक कोशिश करने के बाद दंगाई कामयाब नहीं हुए। हमारी आंखों के सामने मौत मुंह बाए खड़ी थी। हमें मां-बहन की गालियां दी जा रही थी। अपनी बेटी, बहू व बच्चों को पिछले कमरे में बंद करके मैं गेट के छोटे से सुराख से लूटपाट कर रहे दंगाईयों को देख रही थी। मोबाइल की दुकानें तोड़ कर जेबों में ठूसे जा रहे थे। जूतों व कपड़ों के शो रूमों से गठरियों में सामान बांध कर ट्रालियों में डाला जा रहा था। हम पूरी तरह डर से सहमें हुए थे। तीन दिन तक सो भी नहीं पाए।

16 फरवरी को छिटपुट घटनाएं शुरू हुई। रास्ते रोकने की खबरें आने लगी। कानून व्यवस्था चरमराने लगी। पुलिस-फौज की उपस्थिति में लूट और हिंसा का मंजर चलता रहा। अफवाहें चलती रही। आसपास से जेली, गंडासे, फरसे, लाठियों से लैस झुंड शहर में बेखौफ तबाही को अंजाम देते रहे। शासन और विपक्ष अपने लाभ-हानि को शहर से दूर बैठा देखता रहा। आगजनी और लूटपाट करने वाली भीड़ के हिंसक तेवरों के सामने हर कोई असहाय नजर आ रहा था। बेटा, हमने 'पंजाबी' की निशानदेही वाली तमाम पहचानों वाली चीजें अपने घर व दुकान से हटा ली, फिर भी तेरे चाचा की पूरी जिंदगी की खून-पसीने की कमाई से तैयार की गई यह 20 गज की दुकान लूट कर जला दी गई। बड़े लोगों को तो मुआवजा मिल जाएगा, हम गरीबों की कौन सुनेगा। 'जान बची लाखों पाए' शुक्र है कि हमारे घर का गेट नहीं टूट पाया। दिन-रात रिश्तेदारों के फोन आते रहे कि घर-बार छोड़ कर आ जाओ। क्या करते शहर का मंजर इतना भयानक था कि हमारा पूरा समुदाय आतंक से सहमा हुआ था।

अच्छा बेटा, एक बात बता-चार-पांच दिन तक लूट और हिंसा का तांडव चलता रहा। कहीं कोई पुलिस बचाव के लिए नहीं दिखी। रात को एक समुदाय अफवाहों के चलते दूसरे समुदाय से भयभीत रहा। ये कौन थे? सामाजिक ताने-बाने में जातिवादी जहर घोलने वाली इस मुहिम के दोषियों को पहचान कर दंडित किया जाए। दोबारा से हमें आपसी सद्भाव व एकता के लिए जुटना होगा

सम्पर्क : 94162-67986

अंधेरे को चीरती एक लेखक व खिलाड़ी की ईमानदार आवाज, हजारों मील दूर से आई इस आवाज ने समाज की आत्मा को चेताया।

24 फरवरी, 2016, दैनिक भास्कर

अम्बाला महानगर, बुधवार, 24 फरवरी, 2016 2

उपद्रव से आहत चैस चैंपियन की पोस्ट

लाहौर मै आग ना लगाई तमनै अपने घरां मै आग लाई है



रोहतक के खेड़ी महम गांव की 30 वर्षीय बेटी अनुराधा बेनीवाल राष्ट्रीय शतरंज प्रतियोगिता में विजेता रही हैं। वे फिलहाल लंदन में शतरंज कोच हैं और कैम्ब्रिज के लिए खुद भी शतरंज खेलती हैं। यायावरी आवरगी नामक पुस्तक श्रृंखला में उनकी पहली पुस्तक आजादी मेरा ब्रांड पहली किताब प्रकाशित हो चुकी है। उन्होंने जाट आरक्षण को लेकर हुए उपद्रव से आहत होकर फेसबुक अकाउंट पर एक वीडियो पोस्ट की है।

नमस्कार... राम..राम
मैं अनुराधा बेनीवाल।
नेशनल चैस चैंपियन।

मेरा पहला कोच था ठाकुर, दूसरा पंड़ित। खेली किनकै... सुनारा कै। महावीर सर्राफ..सोनी..इननै सिखाई चैस। न्यू करके नी सिखाई अक जाटां की है या कुम्हारां की है या फेर धानकां की अक बानियां की है। छोरी है, म्हारी है हरियाणे की है। हम सिखावेंगे।

इब तमनै सारा फूंक दिया। तम सबके खिलाफ होगे। सैणियां नै न्यू कह दिया। ठाकुरां नै न्यू कह दिया। कह दिया तो के अपणी-अपणी धरती मैं आग लगा दयोगे।

मनै किमे कह दिया तो तम आपणे घर मैं आग लगा दयोगे। अपणा घर फूंका है, अमेरिका का ना फूका।पाकिस्तान का किमे ना बिगड़ा। म्हारे पेड़ कटै हैं। सांघी के पेड़ कटगे। महम जल ग्या। आई बात समझ मै। लाहौर मै आग ना लगाई तमनै। अपने घरां मै आग लाई है। के करोगे इस आरक्षण का। इस रिजर्वेशन का। जब स्कूल ही न रवैहंगे। जब थारे स्कूलां में पढ़ाण खातर टीचर ए नी आवैंगे। कॉलेजों में बढ़िया फैकल्टी ए नी रवैगी।

जब कोई बाहर की कंपनी ल्याण की कोशिश करैगा तो आण की कौण करेगा थारे देश मैं आण की हिम्मत। तम तो पहुंच ज्याओगे लठ ले कै फूकण तई। सरकारी नौकरी मै गुजारा ना सै। माहौल बणाना पड़ैगा विकास का। अर यो विकास का माहौल नी दिखता मनै।

हम कुछ भी कर सकैं हैं। ओलंपिक मै मैडल माहरे, फौजी माहरे, खेत माहरे, जवान माहरे। फेर क्यूं बदनाम कर रहे हो देश नै, म्हारे हरियाणा नै। इसमै कोई फायदा नहीं सै किसे का। कतई नुकसान, निरा नुकसान। अर किसे ओर का नहीं है म्हारा है कतई अपणा।

पोस्ट पर ये भी कमेंट

जागो हरियाणवी जागो, तुम्हारा ही नुकसान हो रहा। सारी दुनिया तमाशा देख रही है। -चंदन मल्हारा

आरक्षण के बीज किसी ने बोए और काटने किसी को पड़े। आरक्षण है इंडिया की सबसे बड़ी टैंशन। -श्याम सिंह

अनुराधा बैनिवाल द्वारा फेसबुक पर पोस्ट की गई वीडियो पर देर रात तक 30 लाख से ज्यादा लोगों ने लाइक किया है।